वर्ष 44, अंक 4, जुलाई-अगस्त 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

75 स्वाधीन भारत

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्

75 आज़ादी का अमृत महोत्सव

जयंती स्मरण

मुंशी प्रेमचंद

31 जुलाई 1880

"जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हम में गति और शक्ति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य प्रेम न जागृत हो, जो हम में संकल्प और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।"

– मुंशी प्रेमचंद

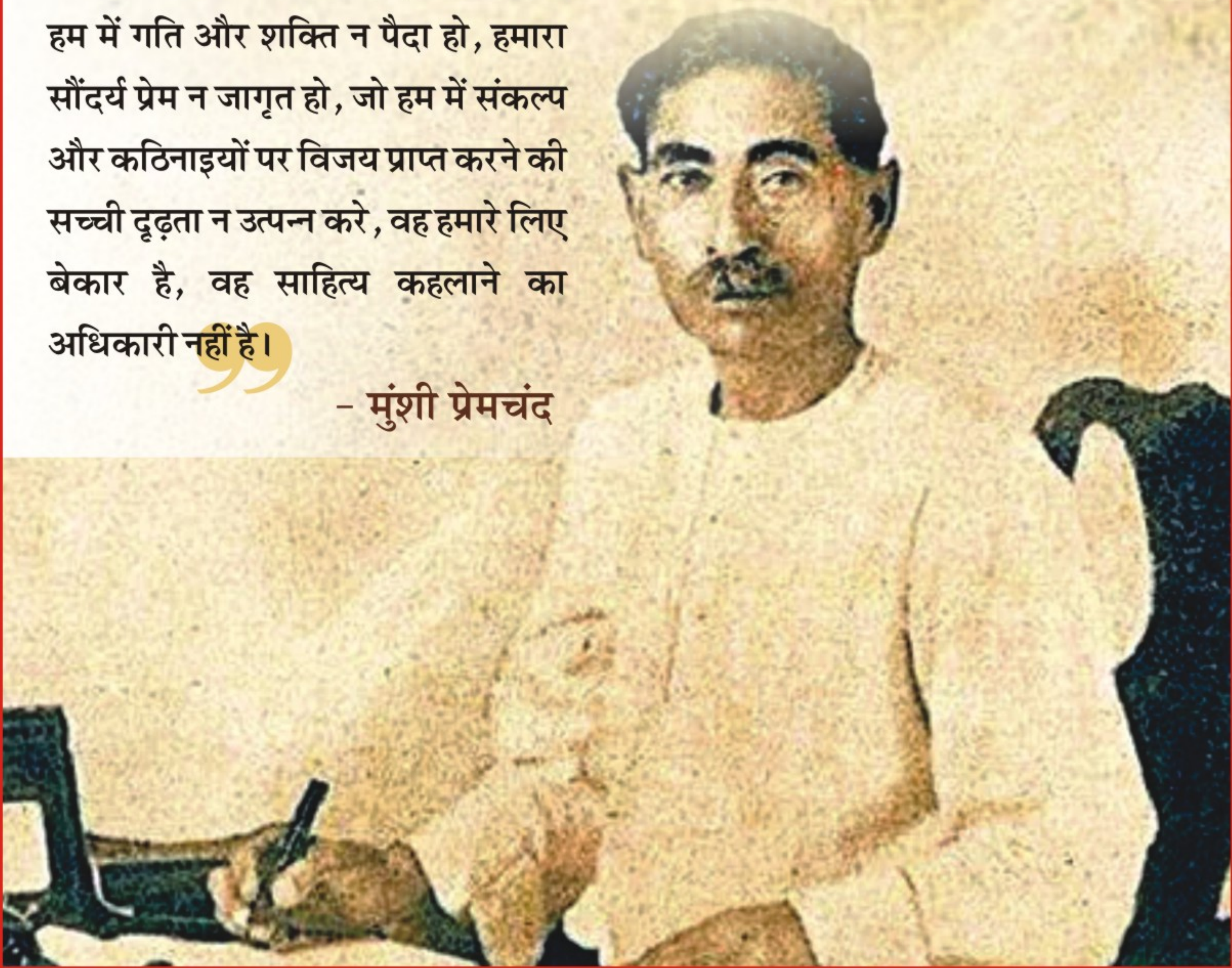

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक :		₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक :		₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष 44, अंक 4, जुलाई-अगस्त 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

धर्म संकट

तुम्हारी गुड़िया

तकनीकी समुन्नयन और हिंदी

भक्ति साहित्य और यूरोपीय समीक्षक

हिंदी गीतिकाव्य परंपरा और तुलसीदास

महात्मा गाँधी का वैष्णव मन और भारत बोध

भूख की महागाथा के रूप में 'कफन' की सार्थकता

कोरोना जेल और संवाद के साधन के तौर पर टेलीफोन

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 44, अंक 4, जुलाई-अगस्त 2021

गगनांचल

प्रकाशकीय

3 हिंदी का क्षितिज
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

4 लोकतंत्र में लोक-शुचिता का प्रश्न
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-बोध

7 महात्मा गाँधी का वैष्णव मन और भारत बोध
प्रो. चंदन कुमार

संस्कृति-सभ्यता

10 रोमानी संस्कृतिः एक भारतीय धरोहर
मो. जमीर अनवर

लोक-संस्कृति

14 श्री गुरू तेग बहादुर की वाणी में लोकमंगल की भावना
डॉ. गुरमीत सिंह

कथा-सागर

18 तुम्हारी गुड़िया
अंजु रंजन (साउथ अफ्रिका)

23 धर्म संकट
कादंबरी मेहरा (इंग्लैंड)

27 और सुबह हो गयी
डॉ. वंदना सहाय

दृष्टि-सृष्टि

31 कोरोना, जेल और संवाद के साधन के तौर पर टेलीफोन
डॉ. वर्तिका नंदा

ज्ञान-कलश

35 सांस्कृतिक संक्रमण के युग में भारतीय दर्शन की उपादेयताः धर्म तथा नैतिकता के संदर्भ में
डॉ. श्रुति मिश्रा

चिंतन-मंथन

39 हिंदी गीतिकाव्य परंपरा और तुलसीदास
प्रो. अनिल राय

46 भूख की महागाथा के रूप में 'कफन' की सार्थकता
डॉ. मनीष

शोध संसार

49 समुद्र से व्यक्तित्व के धनीः सुब्रमण्यम भारती
डॉ. प्रताप राव कदम

53 भक्ति साहित्य और यूरोपीय समीक्षक
डॉ. ऋचा मिश्रा

57 सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और गुरु गोबिंद सिंह जी का साहित्य
डॉ. शोभा कौर

61 पुष्पिता अवस्थी कृत 'छिन्नमूल' उपन्यास में गिरमिटिया कृषकों की वेदना
अकरम हुसैन

64 कवि केदानाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि
डॉ. अभिषेक शर्मा

व्यक्ति-विशेष

67 वैश्विक समस्याओं का हलः पंडित दीनदयाल का दर्शन
डॉ. सूर्य प्रकाश पाण्डेय

सांस्कृतिक-वैविध्य

71 राष्ट्र गौरव और कृषि करुणा के कवि-मैथिलीशरण गुप्त
डॉ. संजीव दुबे

भाषा-विकास

75 तकनीकी समुन्नयन और हिंदी
कोमल

पुस्तक-समीक्षा

80 डॉ. विजया सती
81 द्विजेन्द्र द्विज

लघुकथा-कलश

82 उषा अग्रवाल पारस
83 अशोक वाधवाणी

काव्य-मधुवन

84 श्री अशोक भाटी
85 नंदा पाण्डेय
86 सुशील 'साहिल'
87 इंदु बैरेट (इंग्लैंड)
88 डॉ. राम प्रवेश 'रजक'
89 वशिष्ठ अनूप
90 मनोज अबोध
91 आकर्ष बंसल (इंग्लैंड)

92 **गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.**

प्रकाशकीय

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

हिंदी का क्षितिज

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। वर्तमान संदर्भ में हिंदी भाषा के रूप में सिर्फ भारत में ही स्वीकृत नहीं है अपितु आज विश्व भाषा का आकार ले चुकी है। हिंदी अपनी भाषिक विशेषतओं, शाब्दिक उदारता और साहित्यिक समृद्धि के चलते भारत की भौगोलिक सीमाओं के बाहर निरंतर लोकप्रियता प्राप्त कर रही है। हिंदी ने समृद्ध भाषिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना की सम वाहिनी के रूप में भारतीय भावनाओं को वैश्विक पटल पर प्रदर्शित किया है।

हिंदी का स्वरूप समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा। पहले खड़ी बोली में ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी के शब्दों का मिलन हुआ। जब देश में मुगलों का शासन आया तो इसमें फारसी और अरबी के शब्द इतने घुल मिल गए कि हिंदी से अलग करना इनको मुश्किल हो गया। भारत में पुर्तगाली और अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हुई तो पुर्तगाली और अंग्रेजी के अनेक शब्द हमारी भाषा में घुल मिल गए। इसलिए कहा जाता है कि भाषा बहता नीर है इसे बाँधना नहीं चाहिए अन्यथा यह उपयोग के लायक नहीं रह जाएगी। यहाँ एक बात बहुत महत्वपूर्ण है कि भाषा की रचना सिर्फ भाषा विज्ञानी नहीं करते बल्कि उस भाषा को बोलने वाले मजदूर, किसान, धर्म स्थलों, पर्यटकों, दुकानदारों आदि के द्वारा आम बोलचाल में इस्तेमाल किए जाने वाली भाषा उसकी संरचना के लिए एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्थापित हो जाता है। इसी तरह समाज में, फिल्मों में बोली जाने वाली भाषा के साथ-साथ समाचार पत्रों और मीडिया की भाषा भी उस के बदलते स्वरूप को निर्धारित करती है।

आज हिंदी विश्व भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई है और एक न एक दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनने में भी सफल होगी। वस्तुत: प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन जिसका आयोजन 1975 में नागपुर में किया गया था ऐतिहासिक सम्मेलन रहा। इसी सम्मेलन के माध्यम से हिंदी की वैश्विक परिस्थितियों का प्रथम आकलन शुरू हुआ और हिंदी के हित में कई कीर्तिमान भी स्थापित किए गए। पहला, देश-विदेश में ऐसे अनेक सम्मेलनों की शृंखला का सूत्रपात हो गया जिसके अंतर्गत अभी तक 11 विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन हो चुका है। दूसरा, नागपुर सम्मेलन में ही पहली बार हिंदी को राष्ट्रसंघ में स्थापित करने के लिए जोरदार मांग उठी जो अब तक के सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में दोहराई गई है। तीसरी और महत्वपूर्ण बात यह है कि हिंदी जो अपनी शक्ति, लोकप्रियता और व्यापकता के बल पर विश्व भाषा बन चुकी थी उस पर 30 देशों की पुष्टि की मुहर लग गई जिससे उसकी व्यापकता और भाषाई ताकत की पहचान वैश्विक हो गई ।

हम कह सकते हैं कि सभी भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण उपस्थिति के बीच में हिंदी हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदेश वाहिका के रूप में आज विश्व में स्थापित हो चुकी है।

आज विश्व पटल पर हिंदी भाषा बोलने, समझने और पढ़ने वाले देशों की संख्या पर्याप्त है। विश्व के अनेक गिरमिटिया देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में भी हिंदी अपनी उपस्थिति और उपयोगिता को निरंतर सिद्ध करती आ रही है। वस्तुत: हिंदी का अंतरराष्ट्रीय क्षितिज दिन-प्रतिदिन व्यापक और विस्तृत होता जा रहा है।

दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

लोकतंत्र में लोक-शुचिता के प्रश्न

आज हम धर्म की व्याख्या नहीं करेंगे और न ही अध्यात्म की गहराइयों को नापने का प्रयत्न करेंगे बल्कि आज उस धर्म की हम बात करेंगे जो हमारे राष्ट्र गौरव, राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय स्वाभिमान आदि को समेट कर अपनी 75 वर्ष की यात्रा 2022 पूर्ण करने जा रहा है। अर्थात हम स्वाधीनता के 75 वें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। एक ओर स्वाधीनता के पश्चात देश अनेक भौगोलिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक, सामरिक और अध्यात्मिक उत्कर्ष के पुन: स्थापना के लिए संघर्ष कर रहा था वहीं दूसरी ओर देश को औद्योगिकरण की भी जबरदस्त आवश्यकता थी। काल के सापेक्ष जो राष्ट्र अपने प्रौद्योगिकी और उद्योगों को समय के अनुरूप नहीं बदलता है या स्थापित नहीं करता है वह विकासशील राष्ट्र के रूप में निरंतर संघर्ष करता रहता है। काल के सापेक्ष शैक्षणिक एवं औद्योगिकरण के महत्व को जिन राष्ट्रों ने समझा वह विकासशील से विकसित देश की यात्रा को करने में संभव हो गए। शैक्षणिक उत्कर्ष ही राष्ट्र की मानसिक संपत्ति होती है, बौद्धिक संपत्ति होती है। वही औद्योगिकरण, प्रौद्योगिकीकरण टेक्नोलॉजी का विस्तार और सामाजिक समरसता का निर्माण राष्ट्र के आत्मनिर्भरता के मानक को परिभाषित करती है।

भारत की स्वाधीनता के 74 वर्ष हो चुके हैं। इन 74 वर्षों में अनेक मोर्चों पर हमने लड़ाइयाँ लड़ी है और उसे सफलतापूर्वक विजय भी किया है। परंतु फिर भी भारत जैसे विशाल और विविधता से भरे देश में अनेक मौलिक समस्याएँ आज भी धरातल पर संघर्ष करती हुई नजर आ रही हैं। यहाँ मैं पिछले सरकारों द्वारा किए गए प्रयासों को मूल्यांकन करने का कार्य नहीं करूँगा। स्वाधीनता के पश्चात सभी सत्ताधारी दलों अथवा सरकारों ने अपनी-अपनी नीयत और नीति के अनुसार कुछ न कुछ देश को दिया है। हाँ मैं यह जरूर कह सकता हूँ कि लोकतंत्र के लोकप्रहरी के रूप में जितना देना चाहिए था भारतीय लोकतंत्र को, जितना मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पाया। एक ओर सत्ता में बने रहने के लिए राजनीतिक दल येन केन प्रकारेण अपने विचारों के साथ राष्ट्रीय हितों के साथ समझौता करते रहे वहीं तथाकथित बुद्धिजीवी वर्गों के द्वारा तत्कालीन सरकारों को दिग्भ्रमित भी किया गया और मति भ्रमित भी किया गया। यही कारण है कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में जो लगभग हमारे साथ ही स्वाधीन हुए थे, के उत्कर्ष में और हमारे उत्कर्ष में जमीन आसमान का फर्क है। ऐसा नहीं है कि हमारे पास बताने को उपलब्धियाँ नहीं हैं, कौशल नहीं है, शर्म नहीं है परंतु हम आज भी अपने सामाजिक समरसता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, शैक्षणिक व्यवस्था को ठीक करने के लिए संघर्षरत हैं, लोकतंत्र में लोकशुचिता लाने में असफल रहे हैं। राष्ट्र के प्रति निष्ठा और कर्तव्य भाव उत्पन्न करने में भी कहीं न कहीं बहुत बड़ी चूक हो गई है। इसके अनेक कारण हैं लेकिन जो प्रमुख कारण दृष्टिगोचर होता है वह निश्चित रूप से स्वाधीन भारत की शिक्षा व्यवस्था की ओर ही जाकर ठहर जाता है। 70 और 80 के दशक में शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी होड़ मची कि जिसे अंग्रेजी नहीं आती है वह कोई महत्वपूर्ण पद पर नहीं पहुँच सकता। प्रशासनिक अधिकारी नहीं बन सकता। इंजीनियरिंग अथवा मेडिकल में उसका स्थान सुरक्षित नहीं हो सकता। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि स्वाधीनता के 25 वर्षों के उपरांत भी कोई भाषाई एकरूपता की बात किसी भी सरकार ने गंभीरता से नहीं की। एक राष्ट्र एक भाषा की परिकल्पना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों का अपनी मातृभाषा से लगाव घटने लगा और अंग्रेजी के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा।

कमोबेश आज भी ऐसी ही स्थिति बनी हुई है। यही वह समय था जब हमारी मातृभाषा में और भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में उन विचारधाराओं का प्रवेश हुआ जो हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय भावनाओं के विपरीत था। सत्ता के अभिमान में लोकतंत्र के प्रहरी इतने आकंठ डूबे हुए थे कि उन्होंने भाषाई समस्या को हाशिए पर रखा या फिर जानबूझकर छोड़ दिया ताकि उनकी राजनीति चमकती रहे। लगभग 4 दशकों तक प्रगतिशीलता अथवा सर्वहारा समाज के उत्थान के नाम पर ऐसा सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सामरिक और साहित्यिक वर्ग बनाए गए जिसमें हमारी ज्ञान संपदा, ज्ञान परंपरा, लोक निवृत्ति, लोक चिति, लोक व्यवहार, लोककल्याण और लोकतंत्र सभी सनातन परंपराएँ अपने पथ से विपथ हो गईं।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत में मतभिन्नता के स्थान पर मन में भिन्नता आ गई। सबने अपनी डफली अपना राग बजाना शुरू कर दिया। संपूर्ण राष्ट्र की परिकल्पना को त्याग कर राजनीतिक दल सत्ता केंद्रित हो गये। पार्टियाँ अपने लाभ के अनुरूप नीतियों का निर्धारण करने लगीं। ज्यादातर राजनीतिक दलों ने यह भी ध्यान नहीं रखा कि उनकी विचार से सहमति नहीं रखने वाले इसी देश के अन्य राष्ट्र निवासियों को किस तरह के संकटों से जूझना पड़ेगा और उनकी विचारधारा के साथ सहमति रखने वाले लोग किस तरह का व्यवहार समाज में करेंगे ?

वामपंथ के नाम पर, समाजवाद के नाम पर, दलित उत्कर्ष के नाम पर, प्रगतिशीलता के नाम पर, राष्ट्रवाद के नाम पर हम सब अलग-अलग खाँचों में बँट गए और एक ऐसे भारत को विश्व के सामने लाकर खड़ा कर दिया जिसकी भौगोलिक सीमाएँ तो सुरक्षित हैं परंतु जिससे बौद्धिक पलायन को हम नहीं रोक पाए। सर्वजनहिताय हासिये पर रह गया और भारतीय सनातन संस्कृति, ज्ञान परंपरा, ज्ञान व्यवहार पुस्तकों में परतंत्र रह गए।

21 वीं शताब्दी के पहले दो दशक में बाजारवाद का प्रभाव पूरे विश्व पर था। भारत भी उससे बचा नहीं। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि बाजारवाद का जितना प्रभाव भारतीय लोक चेतना, लोक आस्था, लोक संस्कृति, एवं लोक निर्माण पर पड़ा है शायद ही किसी और देश में बाजारवाद का इतना प्रभाव देखने को मिलता होगा।

हम लोग पूर्ण रूप से व्यवसायिक हो गए। हर विचार को, हर बात को अपने लाभ के लिए तोल-मोल कर देखने लगे। शिक्षा से लेकर संस्कृति के उत्कर्ष तक में हमने पावर और पैकेज देखा। हम डिग्रीधारी तो बन गए पर समाज को शिक्षित नहीं कर पाए। हमने सैकड़ों विश्वविद्यालय तो बना दिए परंतु राष्ट्रीय सोच की निर्मिति नहीं कर पाए। लोक आस्था, लोक परंपरा की बातें तो हमने खूब की परंतु लोकतंत्र को सही अर्थों में परिभाषित नहीं कर पाए। रामराज्य की परिकल्पना वाले देश में हर कोने पर भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया परंतु हम देश की नई पीढ़ी में नैतिक चेतना का संचार नहीं कर पाए। 'वसुधैव कुटुंबकम' जैसे वैश्विक सूत्र का प्रतिपादन करने वाला भारतवर्ष का लोकतंत्र भी परिवारों के विघटन को रोक न सका। एक पंक्ति में कहूँ तो यह कहा जा सकता है कि हमने "मूल्यों" पर आधारित जीवन को छोड़कर "मूल्य" आधारित जीवन को अपनाना अधिक उपयुक्त समझा। हर चीज का हमने मोल लगाया। संज्ञा से विशेषण तक को हमने बाजार बना दिया।

सृष्टि जीवन से चलता है इसमें कोई दो मत नहीं है। इस बात पर भी कोई संशय नहीं है इस सृष्टि में मनुष्य से अधिक विकसित और कोई प्राणी नहीं है। सरल और सहज भाषा में कहें तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य एक अतिविकसित प्राणी है। उसकी मानवीय प्रतिष्ठा सृष्टि के समस्त जीवों के बीच उसे श्रेष्ठ बनाती है, वहीं उसकी वैज्ञानिक उपलब्धि सृष्टि के अन्य उपलब्धियों और विकास यात्रा को निरूपित करने का कार्य करती है। मनुष्य अंदर एवं बाहर तथा आत्मनिष्ठता एवं वस्तुनिष्ठता की दृष्टि से संज्ञानात्मक क्रियावृत्तिक एवं संवेदनात्मक प्रवृत्ति युक्त है। मनुष्य अपने अनुभव ज्ञान एवं विचार को सहज रूप से किसी भी भाषिक संरचना में अभिव्यक्त करने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त एक और तथ्य है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से अपनी स्वतंत्र चेतना एवं प्रदत्त सांस्कृतिक संस्कार के आधार पर अलग-अलग प्रवृत्ति ग्रहण कर दार्शनिक विचारों की श्रेष्ठता अथवा अपने मत से संसार को अवगत कराता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार दर्शन, शब्द दृष्टि का देखना ही सिर्फ नहीं होता है बल्कि इससे यह भी बोध होता है कि दर्शन का अभिधेय अन्तःचक्षुओं द्वारा देखना या मनन द्वारा निष्कर्षित तथ्य से है। इस प्रकार भारतीय दृष्टि में दर्शन का तात्पर्य तांत्रिक साक्षात्कार से है। प्राथमिक साक्षात्कार में बौद्धिक युक्तियुक्तता के साथ अनुभूतिजन्य सत्य के माध्यम से समग्र निष्कर्ष पर पहुँचना होता है। इस प्रकार सामान्य भाषा में यदि कहा जाए तो गूढ़-गंभीर चिंतन की विधा दर्शन कहलाती है।

दर्शन के इसी निहितार्थ के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा में धर्म और अध्यात्म को विवेचित किया गया है। इन्हीं छह आयामों के आधार पर 6 दर्शन ग्रंथों की रचना की गई जिन्हें "षड् दर्शन" के नाम से जाना जाता है। एक बात हम सब को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि धर्म का अर्थ न तो ईश्वर उपासना है और न ही आज के प्रचलित रिलीजन, मजहब या संप्रदाय आदि भावार्थों में निहित है। भारतीय दर्शन परंपरा के अंतर्गत धर्म का अर्थ इन सब से बिल्कुल पृथक है और अत्यंत गूढ़ भी। उदाहरण के लिए

महर्षि कणाद अपने "वैशेषिक ग्रंथ" के दूसरे ही सूत्र में धर्म की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि "यतो अभ्युदयनि: श्रेयससिद्धि स: धर्म:।" अर्थात जिसमें मनुष्य की लौकिक उन्नति और पारलौकिक हित हो उसे ही धर्म कहते हैं। यहाँ यह देखना भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि धर्म मनुष्य के लौकिक पारलौकिक दोनों ही प्रकार की सिद्धियों का कारण है। सरल शब्दों में हम कहें तो धर्म को इस तरह से कहा जा सकता है कि प्राणियों द्वारा धारण किया जाने वाला नैसर्गिक व्यवहार ही धर्म है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 22वें सूक्त के 18 वें मंत्र में इसका संकेत "अतो धार्माणि धारयन" कहकर किया गया है। सामान्य अर्थों में समस्त मानव द्वारा अनिवार्य रूप से अपेक्षित पालनीय कर्तव्यों को उसके व्यक्तित्व-कृतित्व का ऊर्ध्वारोहन हो सके उसे ही धर्म कहा गया है।

सृष्टि की संरचना से संबंधित किसी भी बोधगम्य अनुभूति या अभिव्यक्ति-निष्पन्नता का आधार अर्थजनित शब्द या इसके समुच्चय से बनी बोली अथवा भाषा ही होती है (अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते-भर्तृहरिकृत वाक्यपदीयम्) और इस अर्थजनित भाषा अथवा बोलियों का स्वरूप ध्वनि-वर्ण-पद-वाक्य के माध्यम से ही निखरता है (ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम्-वाक्यपदीयम्)। इस प्रकार ध्वनि ही भाषा अथवा बोलियों का उद्‌गम बिंदु सिद्ध होती है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल (163/1) में वर्णित "यदक्रन्द: प्रथमं जायमान:" का संदर्भ जहाँ ध्वनिस्फोट की प्रथम घटना को सृष्टि के प्रसव के साथ ही जोड़ता है, वहीं नि:ध्वान् के क्रम से सर्वत्र व्याप्त हो गई अव्याकृत ध्वनियाँ ही अनन्तर के व्याघातों से स्वर-वर्ण आदि श्रोतव्य पदों के उपर्युक्त चार विभिन्न स्तरों से गुजरने के पश्चात् अर्थजनित भावों को प्रकट करने वाली भाषा अथवा बोलियों के रूप में प्रकट होने लगती है। नई शिक्षा नीति इन्हीं उद्देश्यों को क्रियान्वित, प्रचलित एवं प्रतिष्ठित करने के लिए बनाई गई है। आइये इस विषय पर संक्षिप्त चर्चा कर लेते हैं।

ज्ञान केंद्रित समाज के निर्माण में नयी शिक्षा नीति की भूमिका को अगर हम समग्र रूप से समझना चाहें तो नयी शिक्षा नीति में 'ज्ञान' शब्द एक व्यापक अर्थ रखता है। केवल सूचना, जानकारी और रटन्त विद्या से कहीं अधिक इस नीति में यह शब्द बालक के सर्वांगीण विकास, संवेदनात्मक संतुलन और सांवेगिक बुद्धि से जोड़ा गया है। ज्ञान शब्द के इसी व्यापक संप्रत्यय को ध्यान में रखकर ही यह नीति ज्ञान केंद्रित समाज के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हुई प्रतीत होती है। इस दृष्टि से ज्ञान केंद्रित समाज वह समाज है जो भौतिक उन्नति के साथ-साथ आत्मिक और सांस्कृतिक उन्नति की ओर संतुलन लिए अग्रसर हो। जो बालकों/युवापीढ़ी को आत्मनिर्भर के साथ-साथ परदुखकातर (दूसरे के दुख में दुखी होने वाला) भी बनाता हो। स्वयं के विकास के साथ-साथ विश्व मानव और मानवता के विकास के उदात्त लक्ष्य जिसके प्रमुख लक्ष्य हों। मातृभाषा का संस्कार, अन्य भाषाओं की समझ और उनका सम्मान, मूल्यपरक जीवन दृष्टि, तकनीकी ज्ञान, डिजिटल शिक्षा, आत्मनिर्भरता, मानसिक स्वास्थ्य, कला और संस्कृति की शिक्षा, रचनात्मकता का विकास, नैतिक शिक्षा, सर्वांगीण विकास, संवेदनशीलता, संवेगों का संतुलन इस नीति की प्रमुख ऐसी बातें हैं जो ज्ञान केंद्रित समाज के निर्माण में सहायक हैं। यह शिक्षा नीति अपनी इस भूमिका के निर्वहन में अवश्य ही सफल होगी, बस आवश्यकता इस बात की है कि हम नीति में अंतर्निहित 'नीयत' का मान रखते हुए अपनी संपूर्ण शक्ति से, उपलब्ध संसाधनों का उचित दिशा में अभिनिवेश कर सकें।

ज्ञान केंद्रित समाज के निर्माण में नई शिक्षा नीति की कुछ प्रमुख उल्लेखनीय बाते हैं-

शिक्षा का सार्वभौमीकरण और वैश्वीकरण इस शिक्षा नीति के दो प्रमुख उद्देश्य हैं। सार्वभौमीकरण का अभिप्राय है अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति और वर्ग तक शिक्षा की पहुँच। और यदि हम इस उद्देश्य को पूरा कर पाते हैं तो ज्ञान केंद्रित समाज के निर्माण से हम दूर नहीं होंगे। आवश्यकता इस बात की है कि उपलब्ध संसाधनों का शुचितापूर्ण उपयोग सकारात्मक दिशा में किया जाए। वैश्वीकरण के अंतर्गत यह उद्देश्य निहित है कि भारतीय शिक्षा को वैश्विक पटल पर स्थान दिलाया जाए, इसका प्रत्यक्ष लाभ यह होगा कि विश्व के ज्ञानात्मक अनुशासनों के अनुभवों का लाभ भारतीय जनमानस को मिल सकेगा और ज्ञान केंद्रित समाज के निर्माण की दिशा में हम एक मजबूत कदम रखकर आगे बढ़ सकेंगे।

स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाओं के साथ!

डॉ. आशीष कंधवे
मोबाइल : +91-9811184393
ई-मेल : editor.gaganachal@gmail.com

महात्मा गाँधी का वैष्णव मन और भारत बोध

प्रो. चंदन कुमार

20वीं शताब्दी में गाँधी एक ऐसे प्रतीक बन कर सामने आते हैं जिनका भरपूर 'डॉक्यूमेंटेसन' हुआ है। 30 जनवरी 1948 को सायंकाल 5 बजकर 27 मिनट में गांधी का प्रयाण होता है और उस दिन की पूर्वाह्न तक की डायरी मौजूद है। जिस गाँधी को हम जानते हैं उनका निर्माण 1893 से 1948 के बीच हुआ। 1893 यानी अफ्रीका जाना और 1948 यानी नश्वर शरीर से जाना। यानी 55 वर्ष। इसमें से 21 वर्ष दक्षिण अफ्रीका के हैं और 33-34 वर्ष भारत के हैं। बाकी स्वातंत्र्योत्तर भारत में उनके नाम की गाथा है। मेरे सामने एक प्रश्न है कि सौराष्ट्र, लन्दन, प्रिटोरिया, जोहानसबर्ग से लेकर चंपारण चौरी व चौरा, दांडी से बिरला हाउस और उसके बाद गाँधी के नाम का डंका- इस यात्रा को मैं कैसे पढ़ूं?गाँधी के कई संस्करण है- रामराज्य के, समाजवाद के, पंथनिरपेक्षता के। गाँधी के कई विरोधी पाठ उपलब्ध हैं। शायद बड़े होने की पहचान भी यही होगी कि विरोधी मत और विरोधी संदर्भों के लिए भी आप प्रासंगिक हो उठें। यह प्रासंगिकता पुनर्नवता से बनती है। मेरा संकेत है कि जिस तत्व को गाँधीतत्व कहा गया जैसे अहिंसा, त्याग, अपरिग्रह, परदुःखकातरता, वैष्णव सांस्कृतिक बोध से निकले शब्द हैं।

स्वतंत्रता के 75 वर्ष होने को हैं। भारत अपने होने को और अपने होने के कारणों को पहचान रहा है। याद कर रहा है। कृतज्ञ राष्ट्र अपने शक्ति के श्रोतों के साथ संवाद कर रहा है। कृतज्ञता आध्यात्मिक गुण है। कृतज्ञता चाहे व्यक्ति के प्रति हो, घटना के प्रति हो या अनुभवों के प्रति हो। हमारी संस्कृति, इतिहास या परम्परा के याद आने वाले चिह्न हमारे अनुभव के घनीभूत क्षण होते हैं। हमें भी अपना पूरा जीवन याद नहीं रहता। कुछ घटनाएँ और कुछ अनुभव याद रहते हैं। ऐसे अनुभव जिन्हें हमने शिद्दत से जिया है और ईमानदारी से महसूस किया है। गाँधी ऐसे ही अनुभव हैं। गाँधी- मोहनदास करमचंद गाँधी के धरती पर आने के 150 वर्ष पूरे हो गये।

2 अक्टूबर 1869 को वर्तमान गुजरात, जो तत्कालीन मुंबई प्रेसीडेंसी का सौराष्ट्र वाला हिस्सा था, के पोरबंदर से शुरू हुई मोहनदास की यात्रा 30 जनवरी 1948 तक महात्मा होने की यात्रा है। आत्मावलोकन का कोई भी क्षण इतिहास और परम्परा के मूल्यांकन का भी क्षण होता है। दुःख अपने कठिनतम समय में इतिहास को टटोलता है। यह टटोलना, यह खोज अपनी स्मृति परम्परा की भी खोज है। अपनी शक्ति के श्रोतों की पहचान है। यही पहचान आज हमें महात्मा गांधी तक लेकर आई है। ये गाँधी सत्य की जिद हैं। ये गाँधी अहिंसा और अपरिग्रह हैं। ये गाँधी स्वच्छता का मूल्यबोध हैं। ये गाँधी आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन हैं। ये गाँधी एक कठिन समय में मनुष्य होने की जिद को बचाए रखने की इच्छा है। ऐसा होना मानुषभाव का होना है।

मैं जब ऐसा कह रहा हूँ तो मेरे सामने भी एक प्रश्न है कि हम गाँधी को समझें कैसे?गाँधी क्या हैं?गांधीवाद क्या है?एक चलताऊ शब्द का प्रयोग करूँ तो यह कि किन मूल्यों को गाँधीगिरी कहा जाता है?उस दिन दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के अफ्रीकी अध्ययन विभाग और विटवाटरस्ट्रैंड यूनिवर्सिटी, दक्षिण अफ्रीका के शिक्षा संकाय द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय ई-संगोष्ठी में बोल रहा था। दक्षिण अफ्रीका के पूर्व मंत्री डॉ यूसूप पहद जी भी कार्यक्रम में मुख्य अतिथि थे। उन्होंने हम भारतीयों को इंगित करते हुए एक बात कही कि आपलोगों ने लॉयर भेजा हमने उन्हें महात्मा बना कर भेजा। जे. टी. एफ. जॉर्डन्स अपनी पुस्तक 'गांधी रिलीजन : अ होम स्पन शॉल' में गांधीजी के दक्षिण अफ्रिका प्रसंग को 'मेकिंग ऑफ महात्मा' की संज्ञा दी है। पोरबंदर में एक पुरोहित हुआ करते थे जिनका नाम था मावजी दवे जोशी। वे गाँधीजी के पिता करमचंद उत्तमचंद गाँधी के मित्र थे। उन्होंने सलाह दी कि गाँधी जी को लन्दन कानून पढ़ने जाना चाहिए। गाँधी जी के भाई लक्ष्मीदास भी वकील थे। 10 अगस्त 1888 को 18 वर्ष की उम्र में वे पोरबंदर से लन्दन जाने के लिए निकले। पहले मुंबई, तब के बम्बई पहुंचे और 4 सितम्बर को पानी के जहाज से लन्दन के लिए रवाना हुए। यूनिवर्सिटी कॉलेज, लन्दन जो यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन की एक प्रतिष्ठित संस्था है, वहाँ से कानून की पढ़ाई करने के बाद सन 1891 में 22 वर्ष की उम्र में वापिस भारत आ गए। एक नाम लेना चाहूँगा दादा अब्दुल्लाह का। दादा अब्दुल्लाह दक्षिण अफ्रीका में गुजराती मूल के जहाजी कारोबारी थे- शिपिंग मैगनेट। उनके एक भतीजे जोहानसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में रहते थे।

उनको मुकदमा लड़ने के लिए एक वकील की जरूरत थी पर शर्त यह थी कि वकील काठियावाड़ी मूल का होना चाहिए। सौराष्ट्र को काठियावाड़ कहते हैं क्योंकि यह काठिया राजपूतों द्वारा शासित रहा और इस शर्त पर गांधीजी खरे उतरे। पंडित मावजी दवे जोशी जो आचार व्यवहार में शुद्ध वैष्णव ब्राह्मण थे उन्होंने दादा अब्दुल्लाह को मोहनदास का नाम सुझाया, और गांधीजी अफ्रीका पहुंचे। आपको ज्ञात है कि गाँधी का लगभग 21 वर्ष का कालखंड दक्षिण अफ्रीका में गुजरा। लन्दन में कानून की पढ़ाई के उपरांत अपने गृहनगर पोरबंदर में वकालत जमाने के लिए संघर्ष कर रहे गाँधी को दादा अब्दुल्ला का प्रस्ताव ना मिला होता और दादा अब्दुल्ला का मुकदमा लड़ने के लिए वे प्रिटोरिया की ट्रेन न पकड़े होते तो जिस गाँधी को हम जानते हैं वे गाँधी हमारे सामने नहीं होते। गाँधी 9 जनवरी 1915 को दक्षिण अफ्रीका से भारत आते हैं। 30 जनवरी 1948 को प्रयाण होता है। भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य पर गाँधी की सदेह उपस्थिति 33 वर्षों की है। इन 33 वर्षों में चार बड़े आन्दोलन होते हैं- चंपारण सत्याग्रह, असहयोग,सविनय अवज्ञा और भारत छोडो। गाँधी ने चार अखबार भी निकाले- हरिजन, इंडियन ओपिनियन, यंग इंडिया, नवजीवन। इनमें से तीन तो दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के दौरान ही शुरू हो गये थे। भारत आने के बाद सन् 1921 में अहमदाबाद से साप्ताहिक 'नवजीवन' का प्रकाशन शुरू किया। पहले अंग्रेजी में, फिर हिंदी में। ''भारत में गांधी जैसा कोई शौकिया पत्रकार नहीं हुआ, जिसने अपने राष्ट्र की धड़कनों और संघर्षों एवं सरोकारों को अपने समाचार-पत्रों का मूलाधार बनाकर राष्ट्रीय जागरण किया।'' इसके आलाव गाँधी का रोज का पत्र-लेखन है। मैं यह सबकुछ एक उद्देश्य से बता रहा हूँ आपको। जो कह रहा हूँ वो 'डॉक्यूमेंटेड' है। लिखित है।

20वीं शताब्दी में गाँधी एक ऐसे प्रतीक बन कर सामने आते हैं जिनका भरपूर 'डॉक्यूमेंटेसन' हुआ है। 30 जनवरी 1948 को सायंकाल 5 बजकर 27 मिनट में गांधी का प्रयाण होता है और उस दिन की पूर्वाह्न तक की डायरी मौजूद है। जिस गाँधी को हम जानते हैं उनका निर्माण 1893 से 1948 के बीच हुआ। 1893 यानी अफ्रीका जाना और 1948 यानी नश्वर शरीर से जाना। यानी 55 वर्ष। इसमें से 21 वर्ष दक्षिण अफ्रीका के हैं और 33-34 वर्ष भारत के हैं। बाकी स्वातंत्र्योत्तर भारत में उनके नाम की गाथा है। मेरे सामने एक प्रश्न है कि सौराष्ट्र, लन्दन, प्रिटोरिया, जोहानसबर्ग से लेकर चंपारण चौरी-चौरा, दांडी से बिरला हाउस और उसके बाद गाँधी के नाम का डंका- इस यात्रा को मैं कैसे पढ़ूं? गाँधी के कई संस्करण है- रामराज्य के, समाजवाद के, पंथनिरपेक्षता के। गाँधी के कई विरोधी पाठ उपलब्ध हैं। शायद बड़े होने की पहचान भी यही होगी कि विरोधी मत और विरोधी संदर्भों के लिए भी आप प्रासंगिक हो उठे। यह प्रासंगिकता पुनर्नवता से बनती है। मेरा संकेत है कि जिस तत्व को गाँधीतत्व कहा गया जैसे अहिंसा, त्याग, अपरिग्रह, परदु:खकातरता, वैष्णव सांस्कृतिक बोध से निकले शब्द हैं। इसलिए मैं गाँधी के किसी भी सैद्धांतिकी को भारतबोध की केन्द्रीयता में पढ़ने का पक्षधर हूँ। यह एक वैष्णव मन है- 'वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे'। यह 15वीं सदी के गुजराती भक्त कवि नरसी मेहता का पद है। माता पुतलीबाई घर में गाती थीं। यह पद गांधी के व्यक्तित्व के केंद्र में है। यही उन्हें एक आत्मावलोकन का विवेक भी देता है - एक क्रूर आत्मावलोकन। ''मुझे जो करना है, तीस वर्षो से मैं जिसकी आतुर भाषा में रट लगाए हुए हूँ, वह तो आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरे सारे काम इसी दृष्टि से होते हैं, मेरा लेखन भी इसी दृष्टि से होता है और राजनीति के क्षेत्र में मेरा पड़ना भी इसी वस्तु के अधीन है।'' यह विवेक गांधीवादी मूल्यबोध का भी विवेक है। अपने हर किये गये कार्य का और बोले हुए शब्द का, शब्द के अर्थ का फिर-फिर मूल्यांकन। यह आत्ममूल्यांकन व्यक्ति को सुधारता है। उसे अपनी गलतियों को स्वीकारने का साहस देता है। यह भाव देता है कि मनुष्य में सुधार की और विकास की संभावना बराबर बनी रहती है। असहयोग आन्दोलन के दौरान 5 फरवरी 1922 को हुए चौरी-चौरा के घटना के उपरांत जनभावना के विरुद्ध जाकर आन्दोलन को वापस ले लेना इसी क्रूर आत्ममूल्यांकन से निकला हुआ मूल्यबोध है। यह वही कर सकता है जिसे अपने पर भरोसा हो। अपनी आत्मकथा के पृष्ठ 26 पर गांधीजी लिखते हैं- ''जिस चीज का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा, वह था रामायण का पारायण...आज मैं तुलसीदास की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ।'' गांधीजी ईश्वर को निराकार, सत्य और सृजनशील मानते हैं। यंग इण्डिया में गांधी लिखते हैं कि, ''एक ऐसी अवर्णनीय रहस्यमय शक्ति है जो हर जगह और हर चीजों पर व्याप्त है। मैं इसे महसूस करता हूँ यद्यपि मैं इसे देख नहीं पाता। यह ऐसी अदृश्य शक्ति है जो खुद को महसूस कराती है और सभी प्रमाणों को खारिज करती है जो कि हमारी इन्द्रियों से परे है। लेकिन एक सीमित दायरे तक ईश्वर के अस्तित्व के बारे में तर्क किया जा सकता है। यह आस्था पर आधारित होना चाहिए।...मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम, नैतिकता, नीति और निडर है।''

एक सज्जन हुए हैं स्टेफोर्ड क्रिप्स। ब्रिटेन के लेबर पार्टी के राजनीतिज्ञ थे। ज्यूरिख में पैदा हुए थे। यूनिवर्सिटी कॉलेज,लन्दन में पढ़े-लिखे थे। ब्रिटेन के सफल वकील थे। 1931 के चुनाव में जब ब्रिटेन में लेबर पार्टी के कुछ ही लोग अपनी सीट बचा पाए थे उनमें वो भी शामिल थे। ये अलग बात है कि बाद में इसी लेबर पार्टी ने इनको निलंबित भी कर दिया। खैर, एक वाक्य है उनका, जो गाँधी को परिभाषित कर देता है। 17 फरवरी 1948 को वेस्ट मिनिस्टर एबे में उन्होंने गांधीजी पर एक भाषण दिया। उनका वाक्य शब्दश: उद्धृत कर रहा हूँ - 'धर्म उनका जीवन और जीवन उनका धर्म था।' यह धर्म क्या है?यह धर्म आर्ट ऑफ लाइफ है। जीवन जीने की कला है। यही वह कला है जिससे गाँधी हर संकट के क्षण में याद आते हैं। सभ्यता पर आई हुई हर समस्या अपने समाधान के लिए गाँधी का बाट जोहती है और समाधान भी पाती है। यह समाधान मार्टिन लूथर किंग, दलाईलामा, नेल्सन मंडेला, डेसमंड टूटू जैसे नामों से दुनिया के विभिन्न भागों में अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती है। आदरणीय नेल्सन मंडेला जी के शब्दों को उधार लूँ तो -'मानवता के प्रति उनके समर्पण को लेकर हममें से किसी की उनसे तुलना नहीं हो सकती। गाँधीदर्शन 21वीं सदी में मानवता को राह दिखाने वाली चाभी होगी।'

देश की शिक्षा व्यवस्था कैसी हो? राज्य की संकल्पना कैसी हो? समाज के अंतिम सिरे पर खड़े व्यक्ति के प्रति दृष्टि कैसी हो? राजनीति कैसी हो? राजनेता कैसे हो इन-सभी प्रश्नों पर गाँधी के विचार को इसी निरंतरता में पढ़ा जाना चाहिए। गाँधी 'गॉसिप' नहीं हैं। गाँधी जितने वाच्य हैं, उससे ज्यादा कर्म्य हैं। इसी कर्म्य होने से ही यह साहस मिलता है कि - मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है? थोड़ा पलटकर देख लीजिए न हम लोगों में से कितने कह सकते हैं कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। यह वही कह सकता है जो अपनी आत्मकथा को 'सत्य के साथ प्रयोग' बताए। गांधी कहते हैं,''यदि मैं बिल्कुल अकेला भी होऊं तो भी सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहूँगा क्योंकि यही सबसे आला दर्जे का साहस है जिसके सामने एटम बम भी अप्रभावी हो जाता है।'' मुझे ओंकार शरद याद आ रहे हैं। ओंकार शरद का नाम तो सुना ही होगा- लोहिया पर पुस्तकें लिखी हैं। बंकिम ग्रंथावली का संपादन भी किया है। उनकी एक पुस्तक है- 'लोहिया के विचार', लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद से सन् 1969 में छपी है। उसमें एक अध्याय है- 'सिविल नाफरमानी'। यहाँ लोहिया का वाक्य है- 'गांधी ने हमें वह रास्ता दिखाया, जिसके जरिये साधारण लोग भी सुकरात या प्रहलाद जैसे बन सकते हैं।'

ध्यातव्य हो कि लोहिया, गांधीजी के पादुकापूजन वाले संप्रदाय में नहीं आते थे पर समाज के अंतिम सिरे पर खड़े व्यक्ति की गाँधी की कल्याण कामना लोहिया को प्रशंसक बनाती दिखती है। आप कितने बड़े हैं, यह इस बात से भी तय होता है कि आप के साथ रहकर कितने लोग बड़े हुए। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को देख लीजिये न जाने कितने घुरहू, कतवारू, मंगरू गाँधी जी के सम्पर्क में आकर माननीय बन गये। गाँधी इसलिए बड़े हैं। ये भारतीय प्रज्ञा की उत्तरजीविता में आते हैं जो असहमति को भी स्थान देती है। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन के भाषा सम्बन्धी विचार गाँधी से नहीं मिलते। उनकी पोलिटिकल करेक्टनेस वाली अवधारणा से मालवीय जी असहमत हैं। फिर भी टंडन जी और मालवीय जी गाँधी जी के हैं और गाँधी जी उनके हैं। आज किसी राजनीतिक दल में आप यह कल्पना भी नहीं कर सकते। दो बिन्दुओं का और उल्लेख करना चाहूँगा। एक गाँधी और वामपंथी राजनीति को लेकर और दूसरा गाँधी और राष्ट्रवादी राजनीति को लेकर। पहले गाँधी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा की लोकप्रियता और भारत में वामपंथ की असफलता को एक दूसरे के परिप्रेक्ष्य में पढ़ा जाना चाहिए। एम.एन. राय और गाँधी के बीच असहमति के कारणों को जानने की कोशिश कीजिए- रोचक निष्कर्ष निकलेंगे। गाँधी वामपंथी राजनीति के कसक हैं। खैर छोड़िये, 'किसने तोडा दिल हमारा, ये कहानी फिर सही'। दूसरा बिंदु है- गाँधी और राष्ट्रवाद के बीच सम्बन्ध। गांधी जी 'यंग इण्डिया' में लिखते हैं, ''राष्ट्रवादी हुए बिना किसी का अंतरराष्ट्रीयवादी होना नामुमकिन है।'' एक सज्जन हुआ करते थे दादा साहब आप्टे। सन 1948 में वे अब के तमिलनाडु में प्रान्त व प्रचारक हुआ करते थे। दादा साहब आप्टे की डायरी उपलब्ध है। उनकी डायरी को उद्धृत कर रहा हूँ। 30 जनवरी 1948 को जब महात्मा गाँधी का प्रयाण हुआ तो राष्ट्रीय स्वंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक एम.एस. गोलवलकर- माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर, तमिलनाडु में थे। दादा साहब आप्टे बताते हैं कि गाँधी का जब प्रयाण हुआ तो इसकी सूचना तत्कालीन सरसंघचालक गोलवलकर जी को दी गयी। वे चाय पी रहे थे। खबर सुनते ही उनके हाथ से कप गिर गया। बोले- बहुत गलत हुआ। रात्रि में दादा साहब आप्टे ने डायरी लिखी। लिखा- मेरा ईश्वर से विश्वास उठ गया है। जो ईश्वर गाँधी जैसे व्यक्ति को उठा सकता है उस पर भरोसा कैसा!! मेरा संकेत है कि इतिहास के इन तथ्यों पर भी ध्यान जाना चाहिए। यह इसलिए भी जरुरी है कि हम गाँधी के रामराज्य को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें। गाँधी का रामराज्य उनका भारतबोध बनाता है। उनका भारतबोध, उनका रामराज्य कोई पांथिक रामराज्य नहीं है। 'थिओक्रेटिक स्टेट' नहीं है। यह भारतबोध एक नैतिक राज्य की संकल्पना है। गाँधी के ही शब्दों को उधार लूँ तो समाज के अंतिम सिरे पर खड़े व्यक्ति के साथ न्याय की जिद है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में 'दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज्य काहू नहीं व्यापा'। ''महात्मा गांधी का भारतबोध शुद्ध व जाग्रत था।'' मोहनदास करमचंद गाँधी का भारतबोध रामराज्य की संकल्पना का भारतबोध है। इसे अगर देखना हो तो सुदूर उत्तरपूर्व भारत के आर्बी आंगलांग क्षेत्र में स्थित सरीहजन सेवा केंद्र को देख सकते हैं। एक सज्जन हुए हैं जनार्दन पाठक। गाँधीजी के जीवन काल में वर्धा गये। तब जनार्दन पाठक की उम्र 25 वर्ष थी। गाँधी जी ने उन्हें वनवासी समुदाय के लोगों के बीच काम करने का सुझाव दिया। गांधीजी के समाजमूल्यों पर उन्होंने कार्बी क्षेत्र में काम करना शुरू किया। एक कार्बी बेटी झामा देवी से विवाह किया और अपना जीवन समाजोत्थान के लिए लगा दिया। समाज में एक व्यक्ति की सदनीयत से कितना परिवर्तन हो सकता है? सरीहजन सेवा केंद्र इसका प्रमाण है। असम केन्द्रीय विश्वविद्यालय सिलचर के दीफू परिसर से कुछ ही दूरी पर यह केंद्र है। गाँधीवादी समाज और राज्य की परिकल्पना से सम्बधित भारतबोध के ऐसे उदाहरण पूरे देश में मिलते हैं। ट्रस्टीशिप बची रहे, वैष्णव जन बचा रहे, राम और रामराज्य बचा रहे, गाँधी बचे रहेंगे।

संदर्भ :-

1. गांधी की पत्रकारिता का भारतीय मॉडल - कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ- 114 (साहित्य अमृत, जनवरी-2020)
2. सत्य के प्रयोग, पृष्ठ - 6
3. सत्य के प्रयोग, पृष्ठ - 26
4. यंग इण्डिया, 11 अक्टूबर 1928
5. भाषा, नवंबर-दिसंबर 2018
6. यंग इण्डिया, 1925
7. गांधी के राम - अरुण प्रकाश, भूमिका से

❖

हिंदी विभाग,दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007, मो.: 9312278999

रोमानी संस्कृतिः एक भारतीय धरोहर

मो. जमीर अनवर

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार, रोमा दूसरों की मान्यता, धार्मिक विविधता और स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि रोमाओं ने विभिन्न विश्वास और मान्यताओं के बीच उच्च स्तरीय मानवता और पारस्परिक सम्मान का अधिग्रहण किया है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' (संपूर्ण विश्व एक परिवार) के आधार पर, रोमा लोग न केवल विभिन्न समुदायों के बीच शांतिपूर्ण और सामंजस्य सद्भावना के साथ रहते हैं बल्कि अखंडता का एक आदर्श भी प्रस्तुत करते हैं। बदनामी और उनके विरुद्ध भेदभाव तथा पूर्वग्रह के बावजूद, अपनी विरासत को जीवित रखे हुए हैं। वे किसी विशिष्ट धार्मिक हठधर्मिता का दावा नहीं करते हैं। वे ईसाइयों के साथ ईस्टर भी मनाते हैं और मुसलमानों के साथ मुहर्रम भी तथा यहूदियों के साथ फसह (पेसाए) का त्योहार भी। रोमा समाज ने भारतीय दृष्टिकोण को एक सीमा तक संरक्षित रखा है, चाहे वह कोई मान्यता हो या अनुष्ठान। उनका व्यवहार कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति से मेल-जोल रखता हुआ प्रतीत होता हैं, जैसे वे भारतीय सभ्यता के ही अभिन्न अंग हों।

भारतीय और रोमानी लोग एक दूसरे से सांस्कृतिक, आनुवंशिक, भाषायी, शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और भावानात्मक रूप से निकट हैं, इतिहास की दृष्टि से दोनों रक्त संबंधियों की तरह हैं, परंतु नियति ने उन्हें भौगोलिक रूप से बहुत दूर कर दिया। सदियों पुराने पूर्वग्रहों और रूढ़िवादी सोच ने रोमानी संस्कृति के अध्ययन को जटिल कर दिया है, इसीलिए ये यूरोप तथा अन्य देशों में आज भी उपेक्षित है।

रोमा समुदाय का सांस्कृतिक इतिहास उनकी यात्राओं के दौरान विकसित हुआ है, न कि उनके अपने पीछे छोड़े गए भौतिक अस्तित्व से। रोमानी संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट तत्व उनके सामाजिक संबंधों, भाषा, परंपराओं तथा जीवन-शैली, संगीत और नृत्य के कारण जीवित हैं। रोमानी संस्कृति की विविधता उनके विभिन्न उप-जातीय समूहों के भौगोलिक विस्तार और बोलियों पर आधारित है, जिसके कारण उनके रीति-रिवाज, आचार- विचार में निरंतर परिवर्तन भी हो रहे हैं, किंतु कुछ क्षेत्रों में रोमा समुदाय में पारंपरिक मूल्यों और प्राच्य प्रथाओं को देखा जा सकता है। बहुत से देशों में उनके अविरल प्रवास, आधुनिक समाजों के साथ अंतरमिश्रण तथा स्थानीय आबादी के साथ परस्पर मेल-जोल के बावजूद सदियों पुरानी सांस्कृतिक विरासत सुरक्षित हैं। रोमाओं का जीवन उनके प्रथाओं, परंपराओं और मूल्यों के द्वारा नियंत्रित किया जाता है, उनकी कुछ सांस्कृतिक मान्यताएँ हैं, जैसे पवित्रता, स्वच्छता, सम्मान और न्याय, जिसे ''रोमानो'' के रूप में संदर्भित किया जाता है, जिसका अर्थ गरिमा के साथ व्यवहार करना और सम्मान करना है, जो कि एक रोमानी व्यक्ति का कर्तव्य है। शुद्धता और अशुद्धता की पारम्परिक अवधारणा की मदद से रोमा ने अपनी पहचान और सांस्कृतिक विशिष्टता को बनाये रखा है।

हेनरिक मोरित्ज गॉटलीब ग्रेलमन द्वारा 1783 में लिखी गई पुस्तक "डाई जाइगयुनर" ने जिप्सोलोजिस्ट और विद्वानों का रोमा समुदाय का भारतीय मूल के साथ रक्त-संबंध की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने भारत में रोमा की उत्पत्ति को स्वीकार करने वाली परिकल्पना का प्रस्ताव रखा और तर्क दिया कि रोमा (जिप्सी) की भाषा, उनके नाम, शरीर की बनावट, रीति-रिवाजों और धार्मिक प्रथायें संभवतः भारत के समरूप दिखायी पड़ता है। उन्होंने विचार प्रकट किया कि रोमा और भारत के निवासी एक दूसरे से चेहरे, रंग और आकार में मिलते-जुलते हैं। विशेष रूप से रोमानी महिलाओं द्वारा हस्तरेखा पढ़ के व्यक्ति के भविष्य के बारे में जैसे कि विवाह या धन की प्राप्ति, दरिद्रता तथा जीवन में सुख-दुःख की भविष्यवाणी करते थे, जो भारत की भविष्यवाणी पद्धति और भाग्य बताने की विधा के समान है।

भाषा संस्कृति का अभिन्न अंग है तथा बोली उसकी आत्मा है। अत: हमें उनकी रोमानी भाषा को संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के परिपेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। रोमानी भाषा का उद्गम इंडो–यूरोपीय परिवार की इंडो–आर्यन शाखा से हुआ है। रोमानी की घनिष्ठता भारतीय भाषाओं के साथ अनुभवमूलक अथवा तुलनात्मक विश्लेषण से पता चलता है। रोमानी और संस्कृत, प्राकृत और अन्य आधुनिक भारतीय भाषायें जैसे कि राजस्थानी, बंगाली, पंजाबी, भोजपुरी, ब्रजभाषा और अवधी के बीच अटूट संबंध है। रोमानी का संबंध उत्तरी भारत की भाषाओं से इतना विशिष्ट है कि भाषाई प्रशिक्षण के बिना भी साधारण व्यक्ति रोमानी शब्दों और भारतीय भाषाओं के शब्दों के बीच समानता की पहचान कर सकते हैं।

प्रोफेसर जोहान क्रिश्चियन क्रिस्टोफ रूडिगर (Johann Christian Christoph Rudiger) ने 1782 में भारतीय भाषाओं और रोमानी के व्याकरण तथा शब्दावली के तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से सत्यापित किया कि रोमानी की उत्पत्ति पूर्वी भारत की भाषाओं से हुई है तथा रोमानी और भारतीय भाषाओं का व्याकरणिक तंत्र जैसे कि कर्ता कारक अथवा सर्वनाम भी समरूपता की पुष्टि करते हैं। प्रो. रूडिगर के शोध निष्कर्ष के अनुसार रोमानी और भारतीय भाषा समान है तथा रोमा और भारतीय किसी भी तरह एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं।

सर रैल्फ टर्नर ने 1927 में अपने शोध निबन्ध- "इंडो–आर्यन में रोमानी भाषा की स्थिति", में रोमानी और कई इंडो–आर्यन भाषाओं के बीच तुलनात्मक वर्गीकरण प्रस्तुत किया। टर्नर ने आधुनिक भारतीय भाषाओं के केंद्रीय समूह (''हिंदी बेल्ट''- नेपाली और भारतीय केंद्रीय पहाड़ी भाषा) में ''पैतृक रोमानी'' की स्थिति को इंगित साथ ही साथ ब्रज हिंदी और रोमानी के बीच घनिष्ठ संबंध को भी प्रदर्शित किया है।

रोमानी ने न केवल भारतीय भाषाओं की प्राथमिक शब्दावली को बरकरार रखा है बल्कि जटिल आकृतिक शब्द, व्याकरण की संरचना और ध्वनि प्रणाली की मुख्य विशेषताओं को भी सुरक्षित रखा हैं। इसके सभी रूपों में रोमानी भाषा की मूल शब्दावली भारतीय मूल की है, ज्यादातर संस्कृत मूल से संबन्धित हैं। प्रो. मार्सेल कोरथीयाडे के अनुसार, रोमानी भाषा में लगभग 900 भारतीय मूल, 220 यूनानी, 30 अर्मेनियाई और 60 फारसी शब्द संग्रह शामिल हैं, लेकिन तत्पश्चात स्लैविक, रोमानियन तथा हंगेरियन मूल के नए शब्दों को भी समाविष्ट किया गया है।

सांस्कृतिक–नृविज्ञान और नृविज्ञान अध्ययन के अनुसार भारतीय संस्कृति और रोमा संस्कृति के बीच गहरा संबंध हैं। रोमानी विद्वानों ने सर्वसम्मति से इस तथ्य को स्वीकार किया कि रोमा और भारत साझा संस्कृति से बँधे हैं और उनकी जीवनशैली में भारतीय मूल्यों, रीति–रिवाजों, आस्था और आदतों का समृद्ध समावेश है। अनेक रोमानी विद्वानों का मानना है कि रोमानी संस्कृति में सदियों पुरानी भारतीय विरासत है। रोमानी विद्वान और भाषा वैज्ञानिक इयान हैनकॉक का कहना है कि रोमाओं के भाषायी, शारीरिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक तत्व भारतीय दर्शन पर आधारित है। वे संतुलित जीवन जीने और द्वैतवाद के दर्शन में विश्वास रखते है। उदाहरण के तौर पर देव और दानव, अच्छा और बुरा, वैध और वर्जित, निर्मल और प्रदूषित आदि, जिसे किंटाला या किंटारी के नाम से जाना जाता है, जो कर्म की भारतीय अवधारणा से काफी मिलता–जुलता है।

सामाजिक संस्था और पारिवारिक संरचना के समकालिक तत्व:

परिवार रोमानी समाज का सबसे महत्वपूर्ण अंग है और स्वजन संबंधों पर बहुत महत्व देता है। उसमें केवल पति, पत्नी और उनके बच्चे ही नहीं बल्कि चाचा–चाची, चचेरे भाई, पोते, उनके विवाहित पुत्र और पुत्रवधू भी शामिल हैं। अब रोमानी परिवार में मूल रूप से माता–पिता, उनके अविवाहित बच्चे और शादीशुदा बेटे अपनी पत्नियों के साथ बिना बच्चों के एक साथ एक संयुक्त या विस्तारित परिवार में रहते हैं। रोमा घराने का मुखिया सबसे बुजुर्ग व्यक्ति होता है, जो परिवार के लिए संरक्षक की तरह होता है, हालांकि कोई सुयोग्य बेटा भी परिवार की प्राथमिकताओं को तय करने और निर्णय लेने की जिम्मेदारी ले सकता है।

रोमाओं के बीच रिश्तेदारी किसी पूर्वज द्वारा बनाई गई है, जो वंश के छह कुल के स्वजनों को जोड़े रखती है। रोमानी स्वजन प्रणाली भारतीय रिश्तेदारी से मिलती–जुलती है, पिता और माता दोनों के परिवार को समान रूप से देखा जाता है। परिजनों के माता–पिता दोनों को प्रत्यक्ष अभिजन माना जाता है, चाहे वह रिश्ता कितना भी दूर का क्यों न हो। भारतीय समाज में यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

पितृसत्तात्मक रोमा समुदाय के लिए परिवार सामाजिक संस्था का अपरिहार्य अंग है, इसलिए सबकुछ इसके चारों ओर घूमता है। एक ही कबीले के सदस्य रिश्तेदार होते हैं और आवश्यकता के समय एक दूसरे को सुरक्षा और सहायता करते हैं। कबीले अनुष्ठान संबंधों से बँधे हैं, और इसके सदस्य एक ही कबीले के व्यक्ति के अंतिम संस्कार व पोमाना (मृत्यु भोज) में शामिल होने के लिए बाध्य हैं।

यह अंतर्निहित जातीय–सांस्कृतिक जानकारी प्राप्त करने तथा जातीय विशेषताओं को अपनाने और उन्हें बनाए रखने के लिए बच्चों को सिखाया जाता है। परिवार में रोमानी पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाएँ संभवत: पारंपरिक और रूढ़िवादी होती है। आमतौर पर महिलायें घर का काम करती हैं और बच्चों की देखभाल करती हैं जबकि पुरुष आजीविका कमाने तथा परिवार की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार होता है। महिला का पूरा सरगम इतनी दृढ़ता

से वर्जित है कि रोमानी संस्कृति में एक भी मुद्दा नहीं है जो निषेध और नियमों के बिना हो। ये स्पष्ट रूप से भारतीय विशेषताओं को प्रकट करते हैं।

परिवारों के भीतर के टकराव को परिवार के मुखिया द्वारा निपटाया जाता है और शायद ही अदालत के सामने लाया जाता है। कुछ रोमानी समूहों में, बुजुर्गों, जिन्हें 'सेरो रोम या हेड रोम' के रूप में जाना जाता है, सम्मान की अवधारणा के आधार पर झगड़े को हल करते हैं और सजा देते हैं। सजा का अर्थ प्रतिष्ठा पर आँच आना होता है और समुदाय से निष्कासित होना सबसे बड़ी सजा मानी जाती है।

निष्पक्ष और सदाचारी माने जाने वाले वरिष्ठ व्यक्तियों को प्राय: उनकी सामाजिक स्थिति, पारिवारिक प्रतिष्ठा और समुदाय के बीच प्रभाव के कारण मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाता है। रोमा पाप और अपराध के बीच अंतर नहीं करते हैं। दोनों रोमानी कानूनी बोली में वैध हैं। जब भी रोमा द्वारा कोई पाप या अपराध किया जाता है, तो वे क्रिस नाम से संबोधित रोमानी अदालत में जाते हैं।

रोमानी 'क्रिस' एक औपचारिक पंचायत है, जो विभिन्न विशिष्ट (कुलों) के बुजुर्गों से मिल कर बना है और एक पितृसत्तात्मक परिषद है जिसका अधीक्षण बड़े या परिवारों के प्रमुखों में से चुने गए एक या एक से अधिक सरपंच करते हैं, जिसपर पुरुषों का एकाधिकार होता है। रूमानी अदालत, प्रथागत कानूनों के आधार पर, आंतरिक मामलों से संबंधित जैसे-ऋण, चोरी, धोखाधड़ी, हिंसा, मूल्यों और नैतिकता का उल्लंघन, समुदाय के भीतर वैवाहिक और संपत्तियों के विवाद जैसे मामलों का निपटारा करती है।

क्रिस का आदेश और निर्णय के पालन के लिए रोमा समुदाय बाध्य है, अन्यथा समुदाय से बहिष्कार भी किया जा सकता है। सर्वसम्मति का होना बहुत जरूरी होता है जो इसके कायदे कानून को निर्धारित कर है। इसके हर फैसले को आमतौर पर प्रतिवादी और वादी सहित पूरे समुदाय द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है। क्रिस न्याय प्रणाली भारत की परम्परागत पंचायत की तरह काम करती है। इससे सिद्ध होता है की रोमा विशुद्ध रूप से भारतवंशी हैं।

रोमानी विवाह अनुष्ठान, आदि:

रोमा समुदाय के लिए विवाह एक जीवन शैली है। विवाह एक पुरुष और एक महिला के बीच पारिवारिक जीवन शुरू करने के लिए एक अनुबंध है। आमतौर पर यह माता-पिता और संबंधियों की सहमति से होता है, लेकिन कभी-कभी लड़की की सहमति के बिना भी उनका विवाह करवा दिया जाता है। रोमा के बीच विवाह को एक बंधनकारी शक्ति माना जाता है जबकि अलगाव को हतोत्साहित किया जाता है। समुदाय किसी चर्च या राज्य के वैवाहिक कानून के तहत एक औपचारिक विवाह समारोह के महत्व पर विश्वास नहीं करता है। बल्कि परिवार की सहमति सबसे बड़ा प्रमाण है रोमानी समाज में विवाह को मान्य बनाने के लिए।

सगाई और विवाह के रीति-रिवाज दुनियाभर के रोमानी समूहों के लिए अलग-अलग हैं। जूडिथ ओकेली-नृविज्ञानी और शोधकर्ता तथा डेविड करेसी (जिप्सीज एन इंग्लिश हिस्ट्री, 238) ने बताया कि रोमानी शादी अंतर्विवाही है और सगोत्र विवाह आदर्श रूप से रोमा समुदाय द्वारा प्रचलित है।

पुराने समय से, रोमानी प्रथा या कानून के अनुसार एक ही वंश या गोत्र की लड़की और लड़के के बीच विवाह निषिद्ध है। टीनकार, कालेदरास और भालू-प्रशिक्षक जैसे अलग-अलग रोमानी समूह एक दूसरे के साथ शादी नहीं करते हैं, वे आमतौर पर अपने ही कबीले के जोड़े के साथ विवाह को स्वीकार करते हैं। रोमानी कबीला वैवाहिक गठबंधन और अनुष्ठान संबंधों से दृढ़ता से जुड़ा हुआ है।

रोमा समाज के लोग आमतौर पर किशोरावस्था में ही विवाह कर लेते हैं। जोड़े के परिवारों द्वारा तय की गई शादी को रोमानी भाषा में 'बियावा' (विवाह) कहा जाता है। ये परम्परागत विवाह को आदर्श मानते हैं। माता-पिता ही जीवनसाथी चुनते हैं, दूल्हे और दुल्हन निर्विवाद रूप से माता-पिता के चयन को स्वीकार करते हैं। शादी में माता-पिता की मुख्य भागीदारी होती है। वे प्रेम विवाह को अच्छा नहीं मानते।

शादियों में दुल्हन रंगीन कपड़े और सोने के गहने पहनती हैं। हालांकि कोर्टशिप (Courtship) के दौरान, दूल्हे से स्वीकृति प्राप्त करने के लिए लड़कियों को सुंदर और आकर्षक कपड़े पहनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। रोमानी विवाह अक्सर विस्तृत और धूमधाम से होते हैं, विवाह एक भव्य समारोह है, जिसमें सभी रिश्तेदार शामिल होते हैं, जो विभिन्न बस्तियों, गाँवों और शहरों से आते हैं। उन्हें एक स्वादिष्ट भोज पर आमंत्रित किया जाता है। पारंपरिक संगीत और नृत्य अथवा विभिन्न रीति-रिवाजों के साथ शादी का उत्सव तीन दिन तक चलता है। मेहमान नवविवाहित जोड़े को आशीर्वाद के रूप में उपहार और पैसा देते हैं। ये विशेषताएँ रोमानी और भारतीय शादियों के बीच समानांतर हैं।

बुल्गारिया में शादी के समय दुल्हन को मेहंदी लगाने का रिवाज हैं, यह रस्म विशेषत: परिवार के निकट सदस्यों के साथ दुल्हन के घर में आधी रात को होती है। बूढ़ी महिलाओं द्वारा दुल्हन के हाथों और पैरों के साथ-साथ हथेलियों और दोनों हाथों की उंगलियों पर मेहंदी लगाई जाती है। दुल्हन के हाथों से पैरों तक लिपटे सफेद कपड़ों पर कुछ पैसे आशीर्वाद के रूप में रखे जाते हैं, जो मेंहदी की रस्म को पूरा करते हैं। यह रिवाज बुल्गेरियाई तुर्क द्वारा भी किया जाता है। पूर्वी यूरोप में रहने वाले रोमा दुल्हन के कुमारीत्व पर बड़ा विश्वास करते हैं, इसलिए वे यथा शीघ्र विवाह का समर्थन करते हैं। यदि दुल्हन कुंवारी साबित नहीं होती है, तो शादी टूट जाती है और उसे अपने

माता-पिता के पास वापस भेज दिया जाता है। दूल्हा द्वारा दिये गए उपहार मूलतः पैसे दुल्हन का परिवार वापिस कर देता है। भारतीय विवाह की प्रथा के अनुकूल, यूरोप में प्रौढ़ रोमा विवाहित स्त्री कांच की बुनी हुई हार अथवा माला पहनती हैं, जिसे भारत में ''मंगल सूत्र'' कहा जाता है। जो महिला की वैवाहिक अवस्था को दर्शाता है।

भारत में सदियों पूर्व के वैवाहिक रीति-रिवाजों के अनुसार, विवाह के बाद, एक महिला अपने पति के परिवार का अभिन्न अंग बन जाती है और अपने पति के परिवार के घर में रहती है। रोमानी शादी की रस्म जेइता, जो भारतीय गौना के अनुरूप एक रीति-रिवाज है, शादी के छह महीना से 1 साल बाद यह समारोह होता है जिसमें दुल्हन अपने घर से अपने पति के घर सार्वजनिक रूप से जाती है। वह अपने सास और ससुर सहित अपने पति के परिवार के सदस्यों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करती है, सास और ससुर का सम्मान और देखभाल करती है। और उससे घरेलू कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है। यह पितृसत्ता सामान्य भारतीय परंपरा से मिलती-जुलती है।

रोमानी संप्रदाय और आध्यात्मिकता:

जिस-जिस क्षेत्र में रोमा समुदाय के लोगों ने रहना शुरू किया उन्होंने वहाँ के प्रमुख धर्मों को अपनाया। हालांकि उन्होंने इसे केवल औपचारिक तौर से अपनाया ताकि धार्मिक उत्पीड़न से बच सकें। जबकि, उनके कुछ समूह ऐसे हैं, जो अभी भी मूर्तिपूजक और सूर्य-उपासक हैं। उनके घरों में अक्सर एक पूजा- स्थल होते हैं जहाँ पर वे देवी- देवताओं की मूर्तियां स्थापित कर उन पर पुष्प अर्पित करते हैं। हालांकि, कुछ रोमानी समूह देवी की उपासना करते हैं जिसे 'काली सारा' के नाम से जाना जाता है – उनकी मान्यता है कि ये एक भाग्य, सौभाग्य, उर्वरता और सुरक्षा की देवी है। 'काली सारा' की पूजा के लिए कई रोमानी समूह पूरी दुनिया से Les Saintes Maries de&la&Mer (दक्षिणी फ्रांस में केमारग की राजधानी है) एकत्रित होते हैं तथा 24 और 25 मई को वार्षिक तीर्थयात्रा में भाग लेते हैं।

समुद्री तीर्थयात्रा के दिन, पुनः समारोह के दौरान काली सारा की सुशोभित प्रतिमा को फूलों से सजा कर पेडस्टल (Pedestal) पर रखते हैं तथा शोभायात्रा में ये देवी की प्रतिमा को अपने कंधों पर भूमध्य सागर के तट पर ले जाते हैं और जल से प्रतिमा को स्पर्श करा, वापस ले आते हैं। पूरे समारोह में रोमानी संगीत और गीत साथ-साथ बजता रहता हैं। अनुष्ठान के दौरान देवी की प्रतिमा के चरणों में फूल बिछाए जाते हैं, प्रतिमा को सुशोभित करने के लिए उन्हें सुंदर नए वस्त्र पहनाए जाते हैं, प्रार्थना के समय मूर्ति के चरणों में लिखित अनुरोध और दीप प्रज्वलित करके देवी का आह्वान किया जाता है।

पश्चिमी विद्वान डॉ. रायको ज्यूरिच, डॉ. रोनाल्ड ली तथा भारतीय विद्वान श्री ऋषि, डॉ. लोकेश चंद्र, डॉ. शशि आदि 'काली सारा' समारोह की तुलना भारत की दुर्गा पूजा से करते हैं। उन्होने रोमानी देवी की 'काली सारा' को भारतीय देवी के समान माना है जो भारत में काली और दुर्गा देवी के नाम से विख्यात हैं। हिंदू की तरह, रोमा भी शक्तिवाद की पूजा करते हैं। इस अनुमान और विश्लेषण के द्वारा, यह इस तथ्य को स्थापित करता है कि 'काली सारा' भारतीय देवी दुर्गा के समान हैं, जो काली और भगवान शिव का मिश्रण हैं। फ्रांस के अंधेरी गुफाओ में मनाया जाने वाला सारा उत्सव भारतीय काली पूजा और शैव परंपरा की प्रणाली के अनुरूप दिखाई पड़ता है।

'काली सारा' के त्योहार के अलावा, रोमा दुनिया भर में एक दिव्य देवी आकृति की पूजा करते हैं जो जल पिंडों के पास स्थित होती हैं। उनकी वंदना करते हैं और विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं -दक्षिण बाल्कन में बीबी, सेंट सारा, गुगलि सागीया (द गार्जियन एंजेल), विशेषतः समारोह में गैर-ईसाई दिखाई देते हैं। रोमा अपने रिवाजों के अनुसार अपने-अपने संप्रदायों के बीच परस्पर सम्मान देते हैं, वे पूजा के स्थान पर इकट्ठा होते हैं जिसे ''लौचे थाना'' (अच्छी स्थान) कहा जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार, रोमा दूसरों की मान्यता, धार्मिक विविधता और स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि रोमाओं ने विभिन्न विश्वास और मान्यताओं के बीच उच्च स्तरीय मानवता और पारस्परिक सम्मान का अधिग्रहण किया है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' (संपूर्ण विश्व एक परिवार) के आधार पर, रोमा लोग न केवल विभिन्न समुदायों के बीच शांतिपूर्ण और सामंजस्य सद्भावना के साथ रहते हैं बल्कि अखंडता का एक आदर्श भी प्रस्तुत करते हैं। बदनामी और उनके विरुद्ध भेदभाव तथा पूर्वग्रह के बावजूद, अपनी विरासत को जीवित रखे हुए हैं। वे किसी विशिष्ट धार्मिक हठधर्मिता का दावा नहीं करते हैं। वे ईसाइयों के साथ ईस्टर भी मनाते हैं और मुसलमानों के साथ मुहर्रम भी तथा यहूदियों के साथ फसह (पेसाए) का त्योहार भी। रोमा समाज ने भारतीय दृष्टिकोण को एक सीमा तक संरक्षित रखा है चाहे वह कोई मान्यता हो या अनुष्ठान। उनका व्यवहार कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति से मेल-जोल रखता हुआ प्रतीत होता है, जैसे वे भारतीय सभ्यता के ही अभिन्न अंग हों।

❖

वरिष्ठ अनुसंधान सहयोगी
सेन्टर फॉर रोमा स्टडीज एण्ड कल्चरल
रिलेशन्स, अंतराष्ट्रीय सहयोग परिषद
ईमेल rexzameer@gmail.com मो. +917531008509

श्री गुरु तेग बहादुर की वाणी में लोकमंगल की भावना

डॉ. गुरमीत सिंह

भारतीय दर्शन की सुदीर्घ परम्परा में माया के अस्तित्व पर विस्तृत रूप से चिन्तन किया गया है। विभिन्न कालखंडों में भारतीय विद्वानों व संतों ने माया की व्याख्या करते हुए मनुष्य को उसका मोह त्यागने के लिए उपदेश दिए हैं। सिख गुरु परम्परा में भी माया की सत्ता से इन्कार नहीं किया गया है, किन्तु उन्होंने उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। पूर्व सिख गुरुओं की भान्ति इन्होंने भी 'माया' का अस्तित्व स्वीकार किया है। अतः विभिन्न सिख गुरुओं ने अपनी काव्य रचनाओं में माया पर विशद् विवेचन किया है। गुरुवाणी में माया के लिए 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग भी विभिन्न स्थलों पर हुआ है, जो कि सिख गुरुओं की मौलिक उद्‌भावना का परिचायक है। इस संदर्भ में शमीर सिंह लिखते हैं, "गुरुवाणी में माया को कहीं-कहीं प्रकृति नाम से भी सम्बोधित किया है, परन्तु मुख्य रूप से इसे एक प्रकार की सृजनात्मक शक्ति ही किया है।"7 उनके अनुसार परमात्मा माया को संचालित करने वाला है और उसकी आज्ञा से ही माया की उत्पत्ति हुई है।श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी में माया के विविध रूप देखने को मिलते हैं।

सिखगुरु परम्परा में नौवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुर जी को त्याग, संयम, सहनशीलता, दया व आत्मबलिदान के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने प्रभु भक्ति और सांसारिक नश्वरता के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल दिया। मध्यकालीन दौर में आपके उज्ज्वल व प्रखर व्यक्तित्व व आत्म बलिदान ने समस्त भारतीय जनता के भीतर अन्याय से लड़ने का भाव जागृत किया। उनका आत्मबलिदान किसी एक जाति अथवा सम्प्रदाय के लिए न होकर सम्पूर्ण मानवता की रक्षा व अन्याय के विरुद्ध था। श्री गुरु तेग बहादुर जी के समकालीन अधिकतर कवि रीति पद्धति का निर्वाह करते हुए काव्य-लेखन में जुटे थे, लेकिन इन्होंने इस बंधी-बंधाई परिपाटी को त्यागते हुए लोकमंगल की भावना से युक्त वाणी का सृजन किया। इस सम्बन्ध में डॉ. पदम गुरचरन सिंह लिखते हैं, "गुरु तेग बहादुर का जीवन-काल सत्रहवीं शताब्दी से सम्बद्ध है। इस समय हिन्दी साहित्य में श्रृंगारिक काव्य का प्रणयन हो रहा था। भूषण जैसे वीररसात्मक कवि भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। परन्तु गुरु देव ने ऐसी साहित्यिक परिस्थिति में भी आध्यात्मिक काव्य का प्रणयन किया। इनकी वाणी में वैराग्य की भावना का प्राधान्य होते हुए भी पाठक को वह क्रियाशील जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देती है। इन्होंने स्वानुभूति को सहज एवं स्वाभाविक रूप में वाणी में प्रस्तुत किया। इनकी वाणी परम्परागत काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों के पूर्णरूपेण अनुरूप न होने पर भी उसमें एक उत्कृष्ट कोटि के काव्य के समस्त गुण विद्यमान हैं।"1 श्री गुरु तेग बहादुर जी के उज्ज्वल चरित्र व व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव उनके सुपुत्र श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त गुरु जी ने भारतीय इतिहास को एक नवीन दिशा भी प्रदान की। इस संदर्भ में रमेश कुंतल 'मेघ' लिखते हैं, "नवम गुरु तेग बहादुर दार्शनिक कवि और महापुरुष भी थे। अपने युग की बेहूदगी तथा समाज की दहशत से अनवरत संघर्ष करते हुए वे देश और काल की आत्मोत्तीर्णता को सिद्ध कर गये। उनके दर्शन तथा शहादत – दोनों ने ही भारतीय इतिहास को कांतदर्शी ऐसे मोड़ दिये कि उनके सुपुत्र दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह ने भारतीय कृषक-विद्रोह को भी उजागर किया।"2 अन्य सिख गुरुओं की अपेक्षा श्री गुरु तेगबहादुर जी ने बहुत कम मात्रा में वाणी का प्रणयन किया है। गुरु जी ने केवल 16 विभिन्न रागों में 59 पदों व 57 श्लोकों की रचना पंजाबी भाषा से प्रभावित ब्रजभाषा में की है।उनकी काव्य-साधना परिमाण की दृष्टि से बेशक कम प्रतीत होती है, परन्तु उनके काव्य में गुरु-वाणी परम्परा में चले आ रहे सभी तत्त्व विद्यमान हैं। उनकी वाणी के महात्म्य को स्पष्ट करते हुए जी. एल. शर्मा लिखते हैं, "यद्यपि गुरु तेग बहादुर जी की वाणी मात्रा में कम है, परन्तु तत्त्व की दृष्टि से गुणों का अथाह भण्डार है। इस में मनुष्य को उसका आध्यात्मिक उद्देश्य बताया गया है, लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाया गया है और मनुष्य को उसके आचरणिक, सामाजिक तथा राजनैतिक कर्त्तव्य से भी परिचित करवाया गया है।" 3 गुरु जी की

वाणी की एक विलक्षण विशेषता यह भी है कि केवल इन्होंने ही 'राग जैजावंती' को अपनाया। उन्होंने मानवीय चित्तवृत्तियों के परिष्कार व उदात्तीकरण के लिए श्लोकों की रचना की, जिनका मूल भाव लोकमंगलकारी है। इनकी सम्पूर्ण रचनाओं में संसार की नश्वरता, राम-नाम की महिमा, बाह्य आडम्बरों का विरोध इत्यादि स्वर प्रमुख रूप से उभरे हैं। उन्होंने जनमानस को ईश्वर-प्रेम, संयम, समभाव, सात्विक व्यवहार, मानवतावाद का संदेश दिया।

श्री गुरु तेग बहादुर जी सांसारिक लोगों को अहंकार के भाव को त्यागने का उपदेश देते हुए काम, क्रोध तथा दुर्जन की संगति से दूर रहने का संदेश देते हैं। वे लोगों को सुख-दु:ख, मान तथा अपमान को समान रूप से जानने का संदेश देते हैं। उनके अनुसार जो मनुष्य हर्ष और शोक की भावना से दूर रहते हैं और उनसे प्रभावित नहीं होते, वे संसार के मूल तत्त्व को अर्थात् संसार की वास्तविकता को जान लेते हैं। गुरु जी के अनुसार जो मनुष्य स्तुति और निन्दा को त्याग देते हैं अर्थात् जीवन की विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होते, उन्हें ही मुक्ति प्राप्त होती है। उनके अनुसार मनुष्य के लिए सुख-दु:ख, मान-अपमान में समान रहने का यह खेल बड़ा कठिन है। जीवन की प्रत्येक अवस्था में समान रहना बड़ा कठिन है। उनके अनुसार कोई गुरमुख अर्थात् गुरु का शिष्य ही संसार के इस तत्त्व अथवा वास्तविक रहस्य को जान सकता है। गुरु जी लिखते हैं,

"साधो मन का मानु तिआगउ ।।
कामु क्रोधु संगति दुरजन की ता ते अहिनिसी भागउ ।।१।।रहाउ ।।
सुखु दुखु दोनों सम करि जानै अउरु मानु अपमाना ।।
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना ।।१।।
उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना ।।
जनु नानक इहु खेलु कठनु है किनहूँ गुरमुखि जाना ।।२।।१।।"4
(राग गउड़ी महला-९ ।।)

अहंकार मनुष्य के पतन का कारण बनता है, जिसके अंतर्गत वह स्वयं को सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम समझते हुए दूसरों को अपने से निम्न व हीन समझने लगता है। अहंकार में लिप्त होकर ही मनुष्य संसार के अन्य भौतिक सुखों की ओर उन्मुख होता है और अन्तत: उनमें आकण्ठ डूब जाता है। मनुष्य अहंकार के मोह में पड़कर ही सांसारिक दु:खों की प्राप्ति करते हुए जन्म-मरण के बंधन से मुक्त नहीं हो पाता और अनेक योनियों को भोगता रहता है। सिख गुरुओं ने मनुष्य को अहंकार रूपी बुराई से दूर रहने का उपदेश दिया है। इसी परम्परा में श्री गुरु तेग बहादुर जी ने भी अपनी वाणी में अहंकार को लेकर मनुष्य को सतर्क किया है। उनके अनुसार जीवात्मा के मुक्ति प्राप्त करने में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। गुरु जी मनुष्य को अहंकार का त्याग करने का सन्देश देते हुए लिखते हैं,

"जिहि प्रानी हउमै तजी करता राम पछान।।
कहु नानक वह मुकति नरु, इह मन साची मान।।१९।।
जो प्रानी ममता तजै, लोभ मोह अहंकार।
कहु नानक आपन तरै, अउरन लेत उधार।।२२।।"5
(सलोक महला ९ ।।)

श्री गुरु तेग बहादुर जी के अनुसार मनुष्य अनेक योनियों के पश्चात् मनुष्य योनि प्राप्त करता है अर्थात् मनुष्य जीवन अत्यंत दुर्लभ है। ऐसे अमूल्य जीवन की प्राप्ति के पश्चात् भी वह उसकी सार्थकता को नहीं समझ पाता। वह सांसारिक मोह-माया में फंसकर जीवन के वास्तविक लक्ष्य से विमुख हो जाता है। वह इन्द्रिय विषयों को परमानंद स्वीकार करते हुए उनका भोग करने में लिप्त रहता है। अत: मानव विषय वासनाओं व इन्द्रियों के वशीभूत होकर जीवन के वास्तविक सत्य से दूर हो जाता है। भारतीय दर्शन की सुदीर्घ परम्परा में मन को चंचल व अस्थिर स्वीकार किया गया है। इसी मन की चंचलता के कारण प्राणी विषय वासनाओं के प्रति आसक्त रहता है। सांसारिक विषय वासनाओं से विलग होने हेतु शारीरिक साधनों के अतिरिक्त अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का भी विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाता है। गुरु जी इस संदर्भ में लिखते हैं,

"जिहि बिखिआ सगली तजी लीओ भेख बैराग।।
कहु नानक सुन रे मना तिह नर माथै भाग।।१७।।"6
(सलोक महला ९ ।।)

भारतीय दर्शन की सुदीर्घ परम्परा में माया के अस्तित्व पर विस्तृत रूप से चिन्तन किया गया है। विभिन्न कालखंडों में भारतीय विद्वानों व संतों ने माया की व्याख्या करते हुए मनुष्य को उसका मोह त्यागने के लिए उपदेश दिए हैं। सिख गुरु परम्परा में भी माया की सत्ता से इन्कार नहीं किया गया है, किन्तु उन्होंने उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। पूर्व सिख गुरुओं की भान्ति इन्होंने भी 'माया' का अस्तित्व स्वीकार किया है।अत: विभिन्न सिख गुरुओं ने अपनी काव्य रचनाओं में माया पर विशद् विवेचन किया है। गुरुवाणी में माया के लिए 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग भी विभिन्न स्थलों पर हुआ है, जो कि सिख गुरुओं की मौलिक उद्भावना का परिचायक है। इस संदर्भ में शमीर सिंह लिखते हैं, "गुरुवाणी में माया को कहीं-कहीं प्रकृति नाम से भी सम्बोधित किया है, परन्तु मुख्य रूप से इसे एक प्रकार की सृजनात्मक शक्ति ही किया है।"7 उनके अनुसार परमात्मा माया को संचालित करने वाला है और उसकी आज्ञा से ही माया की उत्पत्ति हुई है। श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी में माया के विविध रूप देखने को मिलते हैं। उन्होंने माया के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, यौवन, दासी, नशा, अज्ञान, रचना-शक्ति, धन, अविद्या, लोलुपता इत्यादि के संदर्भों में माया के विभिन्न रूपों को अपने काव्य में उजागर किया है। उनके अनुसार सम्पूर्ण प्रकृति वस्तुत: माया का ही प्रतिरूप है। उनके अनुसार इसका प्रसार उस परमात्मा ने स्वयं किया है। गुरु जी के अनुसार,

"अपनी माइया आपि पसारी आपहि देखनहारा।।
नाना रूपु धरे बहु रंगी सभ ते रहै निआरा।।२।।"8
(रागु बिहागड़ा महला ९।।)

गुरु जी ने माया को अत्यंत सामर्थ्यवान स्वीकार किया है। उनके अनुसार मनुष्य का माया के प्रभाव से बचना अत्यंत मुश्किल है। मनुष्य की प्रकृति मूलत: सामाजिक है। संसार में रहते वह माया के पंजों में जकड़ा रहता है और उसके पंजों से छूटने का भी प्रयास

करता है, लेकिन वह अपने प्रयासों में सफल नहीं हो पाता।माया सम्पूर्ण सृष्टि का ही एक अभिन्न अंग है। गुरु जी लिखते हैं,

"साधो इहु जगु भरम भुलाना।।
रामनामु का सिमरनु छोडिआ माइया हाथि बिकाना।।१।।रहाउ।।"9

(धनासरी महला ९ ।।)

काम, क्रोध, विमोह, लालच व अहं इत्यादि माया के ही रूप हैं। ये सभी माया के सोपान मनुष्य के चंचल मन पर हावी होने का पूरा प्रयास करते हैं। ये सभी माया के रूप मिलकर मनुष्य के विवेक को अस्थिर कर देते हैं, जिससे वह जीवन के शाश्वत सत्यों, मूल्यों को पहचानने में असमर्थ हो जाता है। श्री गुरु तेग बहादुर जी के अनुसार मनुष्य काम, क्रोध, मोह के कारण हरि अर्थात् परमात्मा को भुला देता है। श्री गुरु तेग बहादुर जी भटके हुए जनसाधारण की इस स्थिति के सन्दर्भ में लिखते हैं,

"काम क्रोध मोह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई।।
झूठा तनु साचा करि मानिउ जिउ सुपना रैनाई।।१।।"10

(रागु गउड़ी महला ९ ।।)

महापुरुषों ने इस सम्पूर्ण जगत् को मिथ्या स्वीकार किया है, तो इस जगत् से जुड़े भौतिक पदार्थ किस तर्क के आधार पर सत्य सिद्ध हो सकते हैं? मानव अपने लोभ व तृष्णा के वशीभूत होकर आजीवन संसार की प्रत्येक वस्तु का संग्रह करता रहता है, लेकिन अपनी मृत्यु के समय उसे सब कुछ यहीं छोड़कर खाली हाथ जाना पड़ता है। गुरु जी के अनुसार यह संसार का नियम है कि प्राणी अपने अंतिम समय में धन-दौलत, स्त्री व आजीवन संग्रहित की गई लौकिक सम्पत्ति को अपने साथ नहीं ले जा पाता। गुरु जी लिखते हैं,

"धनु दारा संपति ग्रहे।।
कछु संगि न चालै समझ लेह।।१।।"11

(रागु बसंतु हिंडोल महला ९ ।।)

श्री गुरु तेग बहादुर जी मनुष्य को सांसारिक संबंधों व लौकिक सम्पत्ति के मोह को त्यागने का संदेश देते हैं। उनके अनुसार माता-पिता, पुत्र और स्त्री किसी भी मनुष्य के कुछ नहीं लगते। उनके अनुसार हरि भाव परमात्मा के बिना मनुष्य का कोई और सहारा नहीं है।मनुष्य जिस धन, धरती व भौतिक सम्पत्ति को अपनी समझता है, प्राण छूटने पर उनमें से कुछ भी उसके साथ नहीं जाता।

"हरि बिनु तेरो को न सहाई।।
कांकी माता पिता सुत बनिता को काहू को भाई।।१।।रहाउ।।
धनु धरनी अरु संपति सगरी जो मानिओ अपनाई।।
तन छूटै कछु संगि न चालै कहा ताहि लपटाई।।१।।"12

(रागु सारंग महला ९ ।।)

'लोभ' को मनुष्य के परम शत्रुओं में से एक स्वीकार किया जाता है। भारतीय चिंतन परम्परा के संदर्भ में विभिन्न संतों, महात्माओं, चिंतकों, पीरों, फकीरों, भक्तों इत्यादि ने अपनी रचनाओं अथवा वाणी में लोभ के स्वरूप पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है और उसे मनुष्य के सार्वभौमिक विकास में सबसे बड़ी बाधा माना है। लोभ मनुष्य के स्वभाव को परिवर्तित कर देता है। लोभ मनुष्य को अपने बंधन में बांध लेता है, जिससे मनुष्य निजी स्वार्थ से घिरकर दूसरों का अहित करने से भी परहेज नहीं करता। मनुष्य को लोभ रूपी शत्रु से सतर्क रहने का संदेश देते हुए गुरु जी लिखते हैं,

"बिरथा कहउ कउन सिउ मन की।।
लोभि ग्रसिओ दसहू दिस धावत आसा लगिओ धन
की।।१।।रहाउ।।"13

(रागु आसा महला ९ ।।)

सिख गुरुओं ने मानव जीवन से सम्बन्धित बाह्य आडम्बरों को तर्क की कसौटी पर कसते हुए उन्हें निरर्थक व प्रभु भक्ति के विपरीत सिद्ध किया। इसी परम्परा में श्री गुरु तेग बहादुर जी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्य आडम्बरों का जमकर विरोध किया।उन्होंने व्रत रखने व तीर्थ स्थानों की यात्रा को वास्तविक धर्म से विपरीत बताया। उन्होंने साधु-सन्यासियों द्वारा भस्म लगाने को अर्थ-रहित व परमात्मा की साधना के विरुद्ध बताया। उनके अनुसार मनुष्य द्वारा किए जाने वाले सभी धार्मिक आडम्बर व्यर्थ हैं और आडम्बररहित प्रभु भक्ति में ही जीवात्मा का मंगल निहित है। उनके अनुसार परमात्मा की भक्ति में व्रत, तीर्थाटन इत्यादि का कोई महत्त्व नहीं है। श्री गुरु तेग बहादुर जी व्यर्थ के आडम्बरों को व्यर्थ मानते हुए मनुष्य जीवन में प्रभु यश के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखते हैं,

"कहा भइओ तीरथ व्रत कीए राम सरनि नहीं आवै।।
जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभ जसु बिसरावै।।"14

(रागु बिलावलु महला ९ दुपदे ।।)

गुरु जी तीर्थ-यात्रा, व्रत, दान इत्यादि को आडम्बर-मात्र स्वीकार करते हुए उन्हें निष्फल बताते हैं,

"तीरथ बरत अरु दान करि मन में धरै गुमानु।।"
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंचर इसनानु।।४६।।"15

(सलोक महला ९ ।।)

श्री गुरु तेग बहादुर जी ने मनुष्य जीवन में भक्ति को प्रमुख स्थान दिया है। उनके अनुसार भक्ति से ही जीवन के सभी कार्य सफल होते हैं। उनके अनुसार जीवात्मा को भक्ति से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है।वे भक्ति और प्रभु भक्त को समान महत्त्व देते हुए जीवात्मा में प्रभु का वास देखते हैं। वे परमात्मा और भक्त में कोई भेद स्वीकार नहीं करते हैं। गुरु जी लिखते हैं,

"जो प्रानी निसिदिन भजे रूप राम तिह जानु।।
हरि जनि हरि अंतरु नही नानक साची मानु।।२९।।16

(सलोक महला ९ ।।)

सांसारिक मोह-माया के बंधन में बंधा प्राणी प्रभु-भक्ति से विमुख हो जाता है। सांसारिक मोह-माया की अपेक्षा श्री गुरु तेग बहादुर जी ने भक्ति को जीवन का आधार स्वीकार किया है।गुरु जी ने अपनी वाणी में भक्ति के उदात्त रूप को प्रस्तुत करते हुए उसे जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का साधन बताया है। डॉ. रामधारी सिंगल गुरु जी के भक्ति भाव को स्पष्ट को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "गुरु तेग बहादुर भी माया-परिकर के समक्ष ज्ञानांकुश को निष्प्रभ स्वीकारते हुए ज्ञानात्मक साधना की अपेक्षा भक्ति को अधिक श्रेय देते हैं।"17

सिख धर्म के मूल सिद्धान्तों में प्रभु-स्मरण को प्रमुख स्थान प्राप्त है।संत कवियों ने भी प्रभु-स्मरण को महत्त्व देते हुए उसे आत्मा-परमात्मा के मध्य सेतु स्वीकार किया है। पूर्ववर्ती सिख गुरुओं की भान्ति गुरु तेग बहादुर जी की वाणी में भी प्रभु-स्मरण का यशोगान और एक विशेष प्रकार का आग्रह स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है।उनके अनुसार प्रभु-स्मरण से आत्मा परमात्मा में निकटता का संबंध स्थापित होता है।गुरु तेग बहादुर जी संसार रूपी भवसागर को पार करने अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रभु-स्मरण को अवलंब मानते हुए लिखते हैं,

"घटि घटि मै हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि।।
कहु नानक तिह भजु मना भउनिधि उतरहि पारि।।१२।।"18
(सलोक महला ९ ।।)

सिख धर्म में मानवीय आदर्शों की स्थापना पर बल दिया गया है। पूर्व सिख गुरुओं की भान्ति श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी का मूल ध्येय भी मानवीय आदर्शों को प्रतिष्ठित करना था। वे जीव मात्र को उसके कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हैं। मनुष्य परमात्मा द्वारा प्रदत्त तन, धन, वैभव, गृह इत्यादि सांसारिक भोग विलास के विभिन्न साधनों को भोगने में लिप्त तो रहता है, किन्तु मनुष्य परमात्मा का स्मरण तक नहीं करता।क्या जीवात्मा का यह व्यवहार औचित्यपूर्ण है? प्रभु कृपा से प्राप्त भौतिक सुखों में लीन हो जाना व दाता को ही भुला देना उचित नहीं है।गुरु जी के अनुसार मनुष्य को परमात्मा को स्मरण रखना चाहिए और उसकी वन्दना करनी चाहिए, क्योंकि उसकी कृपा से मनुष्य सुख सुविधाओं का भोग करता है।गुरु जी लिखते हैं,

"तन धनु संपै सुख दीओ अरु जिह नोके धाम।
कहु नानक सुनु रे मना सिमरत काहि न राम।।८।।"19
(सलोक महला ९ ।।)

श्री गुरु तेग बहादुर जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए आत्मबलिदान दिया। उन्होंने अपने ध्यान व ईश्वर के भजन से 'अभय पद' को प्राप्त कर लिया था, जहाँ मृत्यु का भी भय नहीं रहता। तत्कालीन राजसत्ता ने उन्हें अपने दृढ़ संकल्प से विचलित करने के लिए विभिन्न प्रकार से भयभीत करने का प्रयास किया, परन्तु गुरु जी सांसारिक मोह-माया व भय से ऊपर उठ चुके थे। उन्होंने अपनी वाणी में भी निर्भयता पर सर्वाधिक बल दिया है और यह आदर्श सिद्धान्त ही उनके बलिदान का मूलाधार है।वे एक ऐसे भयमुक्त आदर्श समाज के पक्षधर थे, जिसमें सांसारिक प्राणी के मन में किसी भी प्रकार के भय का भाव न हो। उन्होंने समस्त मानवता को भयमुक्त जीवन जीने का संदेश दिया।उनका यह लोकमंगलकारी सिद्धान्त भयमुक्त समाज का पक्षधर है, जिसमें न किसी को डराने अथवा भयभीत करने की बात हो और न ही किसी से भयभीत होने की भावना पर बल दिया गया है। गुरु जी लिखते हैं,

"भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।।
कहु नानक सुन रे मना ज्ञानी ताहि बखानि।।१६।।"20
(सलोक महला ९ ।।)

निष्कर्षत: श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी का मूल स्वर लोकमंगल की भावना है। उनकी वाणी में सरलता व सहजता का गुण विद्यमान है। उसमें संगीतात्मकता, मधुरता व सरसता है। उनकी वाणी का अध्ययन करने पर उसमें कहीं भी दुर्बोधता, जटिलता, अस्पष्टता का भाव दृष्टिगोचर नहीं होता।उनकी वाणी तदयुगीन समाज की भान्ति वर्तमान में भी प्रासंगिक है, जो सम्पूर्ण मानव जाति को मानवता का संदेश देती है। वर्तमान दौर में गुरु तेग बहादुर जी की वाणी की प्रांसगिकता को रेखांकित करते हुए मनमोहन सहगल लिखते हैं, "वे सिख-सम्प्रदाय के गुरु तो हैं, किन्तु उनकी चेतना चिरन्तन, शाश्वत एवं सार्वभौमिक है जो युग विशेष एवं जाति तथा काल विशेष की कारा में नहीं बंधी। वह तब भी संगत थी, अब भी संगत है और भविष्य में भी उसकी चरितार्थता बनी रहेगी।"21

संदर्भ-सूची

1. सिंघ, डॉ. पदम गुरचरन, गुरु तेग बहादुर : जीवन, चिन्तन व कला, जालन्धर : नव चिन्तन प्रकाशन, 1975, पृ. सं. 85
2. मेघ, रमेश कुंतल (संपा.), नवम गुरु पर बारह निबन्ध, अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1982, भूमिका से
3. वही, पृ. सं. 155
4. पद्म, प्यारा सिंह (संपा.) वाणी गुरु तेग बहादुर, पटियाला: भाषा विभाग, पंजाब, 1970, पृ. सं. 01
5. वही, पृ. सं. 28
6. वही, पृ. सं. 28
7. सिंह, शमीर, गुरु तेग बहादुर जी: जीवन काव्य व चिन्तन, अमृतसर: आर्थज फोरम, पृ. सं. 165
8. वही, पृ. सं. 06
9. वही, पृ. सं. 11
10. वही, पृ. सं. 01
11. वही, पृ. सं. 20
12. वही, पृ. सं. 21
13. वही, पृ. सं. 04
14. वही, पृ. सं. 16
15. वही, पृ. सं. 30
16. वही, पृ. सं. 29
17. सिंगल, डॉ. रामधारी, गोस्वामी तुलसीदास व गुरु तेग बहादुर के काव्य में आध्यात्मिक मूल्यों का स्वरुप: एक तुलनात्मक अध्ययन (शोधालेख), डॉ. जयप्रकाश, डॉ. परेश (संपा.), परिशोध (पत्रिका), चण्डीगढ़ : हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, अंक : 43, मार्च, 1986, पृ. सं. 45
18. पद्म, प्यारा सिंह (संपा.) वाणी गुरु तेग बहादुर, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1970, पृ. सं. 27
19. वही, पृ. सं. 27
20. शास्त्री, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, गुरु तेगबहादुर की वाणी, दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1976, पृ. सं. 93
21. मेघ, रमेश कुंतल (संपा.), नवम गुरु पर बारह निबन्ध, अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1982, पृ. सं. 163

❖

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
ई-27 सेक्टर 14, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़-160014
मोबाइल-9815801908

तुम्हारी गुड़िया

अंजु रंजन

वह अमावस की रात उसके जीवन में इतनी कालिमा भर गई थी, कि उसे अपने जीवन में सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा दिख रहा था। पुलिस द्वारा पूछे गए अनगिनत सवालों का उसके पास कोई जवाब नहीं था। वे कौन थे, कहाँ से आए थे? कैसे दिखते थे, गाड़ी कौन सी थी, नंबर क्या था? आदि प्रश्नों का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह तो सिर्फ इतना जानती थी कि चार लोगों ने न सिर्फ उसके शरीर बल्कि उसकी आत्मा तक को बुरी तरह से घायल कर दिया था। वह अँधेरी तूफानी रात उसके सारे सपने, सारी खुशियाँ, उसका सब कुछ सैलाब बनकर अपने साथ बहा ले गई थी। वह दिन रात अपने कमरे के कोने में सहमी सी, दुबकी सी पड़ी रहती थी। घर से बाहर निकलना तो दूर यदि कोई घर भी आ जाए तो वह उससे मुँह चुराती और बात करने से कतराती थी।

प्रिय दीदी,

मैं जानती हूँ कि अब यह चिट्ठी तुम्हें कभी नहीं मिल पाएगी– क्योंकि पता नहीं तुम किस अनंत में चली गयी हो!

तुम इस दु:खी जीवन और संसार से मुक्त हो गयी हो

जीवन मरण के चक्र से ऊपर उठ गयी हो। पर मुझे अब खास करने को कुछ नहीं है, सिवाय तुम्हें याद करने के !इसलिए लिखने बैठी हूँ। इस कारण भी लिख रही हूँ कि इससे मेरे मन का बोझ शायद कुछ हल्का हो जाय। जाने अनजाने मुझसे जो गुरु अपराध हुआ है , उस अपराध बोध से थोड़ी तो राहत मिले।

दीदी, अभी बस तुम्हें गए हुए कुछ ही दिन हुए हैं पर लगता है कि मैं वर्षो से अनाथ हो गयी हूँ। माँ के जाने के बाद तुमने मुझे माँ बनकर पाला पोसा और मुझे कभी अनाथ जैसा महसूस नहीं होने दिया। बाबूजी ने तो उत्तर भारत के आम पुरुष की भूमिका बखूबी निभायी । माँ के गए हुए महीने बीतते न बीतते नयी माँ हम दोनो के जीवन में आ गयीं।

पता नहीं हमारे समाज में औरत अकेले तो दो क्या दस बच्चों को पाल सकती है पर आदमी नहीं!

उसे हरदम कोई सहारा चाहिए!

बिना पत्नी के तो उनका कोई काम ही नहीं चलता।

बाबूजी का भी काम नहीं चला। अब समझ में आता है कि यह सब बाबूजी के जीवन में दुबारा देह– सुख पाने का उनका तरीका था– हम दोनो तो बस एक बहाना थे कि बच्चियों का कौन ध्यान रखेगा? उनको तो अपने सुखों की पड़ी थी।

नयी माँ आम सौतेली माँओं जैसी डरावनी तो नहीं थीं– पर उनकी ठंडी निगाह जलाने की जगह हमें जमा देती थीं– हिम शीतल कर देती थीं और हमदोनो हकलाने लगती थीं।

उन्होंने आते ही हम दोनो पर सारा काम डाल दिया।

जो मिसराइन काकी खाना बनाने को आती थीं और हमें नहला– धुला जाती थीं, कंघी– चोटी कर जाती थीं– उन्हें भी हटा दिया और खुद रसोई में जा घुसीं।

पर उसके बाद हम दोनो को घर में कभी भर पेट खाना नसीब नहीं हुआ!

पूरा घर उनके कब्जे में था और बाबूजी भी।

हम दोनो ने सौतेली माँ की पीड़ा को झेला था। पर मेरे ऊपर तुम थी दीदी! तुम ढाल बनकर हमेशा मेरी रक्षा करती रहीं। इसलिए तुम्हारा जाना तुम्हारी अपनी कोई क्षति नहीं है, यह मेरा नुकसान है। बचपन से माँ विहीन बच्ची की तुम माँ बनी। मुझे पढ़ाया लिखाया। हमेशा मेरी भलाई सोचती रहीं और मैंने बदले में तुम्हें क्या दिया– अपमान, बीमारी, धोखा और अब मौत!

दीदी, अपने जीवन के हर मोड़ पर मैंने तुम्हें पाया है मील के

पत्थर की तरह मेरा मार्गदर्शन करते हुए।

जब मुझे बोर्ड में बहुत कम नम्बर आए थे, तब तुमने ही किसी तरह पैरवी और मिन्नत करके मेरा अड्मिशन अपने कॉलेज में करवाया था। भरी दुपहरिया में तुम तेरह बार उस कामुक और ठरकी क्लर्क के खिड़की के सामने घंटो लाइन में खड़ी रही थी। एक बार तो तुम चक्कर खाकर गिर ही गयी थी तब जाकर उस खूसट क्लर्क का दिल पिघला था और तुम्हें ऑफिस में अंदर बुलवा लिया था। उस दिन तुम अतिरिक्त रूप से शांत थी, तुम्हारी आँखे भर भर आती थीं- पर मैं बहुत खुश थी क्योंकि मुझे दाख़िला मिल गया था। अबतक मुझे पता नहीं चला कि उस दाखिले की तुमने क्या क़ीमत चुकाई थी। उस बूढ़े क्लर्क ने तुम्हारा यौन शोषण किया था न दीदी! वरना तुम्हारे गाल पर नील क्यों पड़े हुए थे? तुमने कितनी पीड़ा सही मेरे लिए!

बाबूजी को तो अपनी नयी पत्नी के नख़रे उठने से फ़ुरसत ही कहाँ थी। तुम न होती दीदी, तो क्या मैं कॉलेज का मुँह भी देख पाती!

तुमने कई ट्युशन कर लिये थे जिससे हमारा कॉलेज और होस्टल का खर्च निकल जाता था। मामाजी भी कुछ मदद कर देते थे। बाबूजी तो नयी माँ के हाथों की कठपुतली थे।कभी कभार सौ दो सौ देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते थे।

मुझे तो पता ही नहीं चला कि तुम सारे खर्चे बिना किसी परेशानी के कैसे प्रबंध करती थीं। बस, एक संयत मुस्कान से सब काम करती चली जाती थी।

साड़ी में तुम कितनी सुंदर लगती थीं।

दूसरे परिधानों में तुम अधूरी लगती थी पर साड़ी में सम्पूर्ण!

लगता था कि साड़ी तुम्हारे ग्रेस को निखारने के लिए ही बना है।एक बार जब तुम्हें कोई रिश्ते वाले देखने आ रहे थे और तुमने मस्टर्ड शेड की बलूचेरीसाड़ी पहनी थी तो पिताजी ने कहा था

'अंजलि साड़ी में कितनी ग्रेस्फुल लग रही है न, दक्षिणी देवी की तरह !'

नयी माँ ने मुँह में उपेक्षा का उसाँस भरकर कहा था –' काश

इसका रंग जरा और साफ होता तो मजाल है कि कोई उसे छाँट सकता !'

हमारे उत्तर भारत खासकर पहाड़ों में सब कुछ क्षम्य है- पर साँवले रंग को क्षमा नहीं किया जा सकता। तुम्हें भी इस जाहिल और क्रूर समाज ने साँवले रंग के कारण बार बार अपमानित किया था- अस्वीकार किया था। तुम बहुत कठिन दौर से गुजर रही थी- नयी माँ और बाबूजी भी। पर तुम्हारी पनपती हीन भावना मुझमें अहंकार भरती जाती थी- सुंदर और गोरी होने का अहंकार। सबके द्वारा प्रथम नजर में ही पसंद कर लिए जाने की मुझे आदत पड़ गयी थी और मेरे भीतर – बहुत भीतर कहीं बहुत अच्छा लगता था कि मैं किसी क्षेत्र में तो तुमसे श्रेष्ठ हूँ!

मुझे याद है जब एक प्रोफेसर के बेटे का रिश्ता आया था जिसका बेटा आईएएस की परीक्षा में बैठने वाला था या प्री क्लीयर किया था।

उसकी बहन सुधा तुम्हारे- हमारे कॉलेज में ही पढ़ती थी। हम दोनो होस्टल में रहते थे। वह धोखे से हमें- तुम्हें देखने होस्टल आयी थी।

होस्टल की लड़कियों को उसने बताया था कि वह हमारी दूर की रिश्तेदार हैय पर लड़कियाँ क्या कम काइयाँ थीं!

उन्होंने पता लगा लिया था कि वह तुम्हें देखने आयी थीं।तुम होस्टल में भी सबकी बहुत प्रिय थीं। इसलिए उनलोगों ने मुझे होस्टल से दूर पोस्ट ऑफिस भेज दिया था ताकि वह सिर्फ तुम्हें देख सके।

पर टाइमिंग में गड़बड़ हो गयी थी। तुम सायकिल चला कर कॉलेज से होस्टल आयी थी। गरमी में तुम्हारा साँवला रंग और भी कदर्य बैंगनी हो गया था। तुमने अभी मुँह हाथ धोया भी नहीं था कि सुधा आ गयी थी और तुम्हें देखकर मुँह सिकोड़ लिया था। जब वह लौट रही थी तब उसी समय मैं डाकघर से लौटी थी । शायद चम्पा दी ने (जो उनकी मित्र थीं) बता दिया था कि मैं तुम्हारी बहन हूँ- और तब सुलोचना ने मुग्ध प्रशंसात्मक ष्टि से मुझे देखा था। अपनी बात की सत्यता सिद्ध करने के लिए उसने दूसरे दिन बिना बताए हुए अपनी माँ को हम दोनो को देखने भेजा था।

उस समय भी तुम कुएँ से पानी निकाल कर हम दोनो के कपड़े धो रही थी। तुम्हारा सलवार पानी में भीग गया था और तुम खिसियायी सी मिसज सिंह को प्रणाम करने आगे बढ़ आयी थीं।

मिसज सिंह ने मुझे मिलने की इच्छा जतायी थी। मै पीछे ही खड़ी थी। उनहोने मुझे आँखो में ही पसंद कर लिया था और घर चली गयी थीं। अपने घर नहीं- बल्कि - मेरे घर और नयी माँ व दादी को अपनी दलीलों से भरपूर मनाने की कोशिश की थी कि बड़ी लड़की के रहते छोटी लड़की की शादी करनी कोई बुरी बात नहीं है। उन्होंने खुद ऐसा ही किया था। उनकी बड़ी बहन भी बदसूरत थीं सो उनका विवाह भी देर से हुआ था। फिर उनका लड़का बहुत बड़ी सर्विस में आने वाला था सो उनके समाज में ऊँचे स्तर के हिसाब से मैं अधिक सूट करती थी - सुंदर पत्नी कीमती ट्रोफी सी होती है जिसे लोग अपनी प्राइज्ड पजेशन की तरह डिस्प्ले करते हैं। पर नयी माँ पता नहीं क्यो नहीं मानी थीं और मिसज सिंह को ख़ाली हाथ लौटना पड़ा था।

तुम्हारे अपमान और डिजेक्शन को मुझे अपना अपमान समझना चाहिए था। पर नहीं, मैं तो तुम्हारी हार में अपना जीत देखती थी। मुझे लगता था कि अगर भगवान ने मुझे सुंदर बनाया है तो मुझे इसका समुचित प्रतिदान मिलना ही चाहिए। अगर मुझे प्रतिष्ठित परिवार पसंद कर रहा है और तुम्हें नहीं, तो इसने मेरा क्या दोष है। दोष तो उस भगवान का था जिसने तुम्हें काला रंग दिया या फिर उस समाज का जिसने इस

कारण तुम्हें रेजेक्ट किया और तुम्हारे तमाम गुणों को नजर अन्दाज किया ! मुझे आम्रपाली का वह कथन याद आ रहा था कि–' रूप तो ईश्वर प्रदत्त है, इसलिए वह गुण और धन से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि गुण और धन तो अनेक उपायों से अर्जित किए जा सकते हैं, परंतु रूप नहीं !

मेरे पास ईश्वर का वरदान था – रूप ! और तुम इससे वंचित थी !

दीदी, तुम दिन प्रति दिन चुप होती जाती थी , पर मैं तुम्हारी मूक पीड़ा से अनजान अपने रूप के गर्व में तुम्हारा अपमान करती जाती थी।

इसकी कमी पूर्ति के लिए तुम गुण यानी विद्या अर्जित करने में व्यस्त थी– ताकि तुम अपने क्षत विक्षत सम्मान को पा सको। समाज को तुम अपनी गुणवत्ता मनवाने के लिए लड़ रही थी पर चुप चाप।

दीदी, तुममें प्रतिभा थी, स्पार्क था – इसलिए तुमने हर परीक्षा में टॉप किया। फिर तुम्हें जल्दी ही कॉलेज में ही पढ़ाने की नौकरी मिल गयी। तब भी तुमने मुझे दूर नहीं किया अपने साथ ही रखा। हम दोनो एक फ्लैट में सुख पूर्वक रहने लगे थे। तुम पर बराबर जल्दीशादी कर लेने का पिताजी और नयी माँ का दबाव था। उसी समय कहीं से जीजाजी का रिश्ता आया। उनकी पहली पत्नी का देहांत हो गया था और वे भी तुम्हारे कॉलेज में ही पढ़ाते थे – तुम्हारे सीन्यर प्रोफेसर थे। तुम बहुत अधिक डिमैंडिंग पजिशन में थीं नहीं इसलिए यह रिश्ता हो गया। डिमांड तो जीजाजी के तरफ से भी नहीं था– वह भी डिमैंडिंग पजिशन में नहीं थे शायद !

चालीस वर्षीय विधुर अगर अट्ठाईस वर्ष की कमाऊँ पत्नी पा जाय तो यह उसका सौभाग्य ही है।

बस तुम्हारा एक ही डिमांड था कि मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगी।

मुझे और क्या चाहिए था ! तुमसे अधिक और मैं किसी से नहीं जुड़ी थी– मोह से, प्रेम से, ईर्ष्या से, उच्च भावना से – सब की रेफरेन्स पोईंट तुम ही तो थी दीदी ! इस तरह मैं दहेज में तुम्हारे घर में ही नहीं तुम दोनो के जीवन में जबर्दस्ती घुस गयी।

मैंने अपनी थीसिस की सिनाप्सीस जीजाजी के मर्गदर्शन में सबमिट कर दिया था और अब मेरे पास जीजाजी के साथ बिताने का पर्याप्त अवसर था।

मैंने पहले दिन से हीउनको मोहित करना शुरू कर दिया।

मुझे बहुत अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ी और जीजाजी मेरे रूप की तपिश में तुरंत ही पिघल गए।

वे मुझे 'यौवन का सिम्बल ' मानते थे। अपनी तेजी से ढलती हुई जवानी की गति को मेरे माध्यम से रोक रखना चाहते थे।

पर हमने बहुत समय तक रिश्तों की मर्यादा बनाए रखा।

फिर तुम गर्भवती हुई। डॉक्टर ने तुम्हें बेड रेस्ट के लिए कह दिया। तुम्हें भरी सामान उठाना और सीढ़ियाँ चढ़ना मना कर दिया गया। तुम अपने कमरे में कैद होकर रह गयी थीं। खून की कमी से तुम्हारा स्वभाव चिड़चिड़ा सा हो गया था।

जीजाजी भी तुमसे कतराते घूमते। मुझे भी तुमसे अधिक जीजाजी के साथ समय बिताना अधिक अच्छा लगता था।

उस दिन तुम्हारी तबियत अधिक खराब थी या अल्ट्रा साउंड होना था– तुम हॉस्पिटल चली गयी थी।

जीजाजी को कॉलेज से सीधा हॉस्पिटल तुम्हारे पास पहुँचना था ठीक एक बजे – पर वे घर आ गये थे।

उन्होंने मुझसे एक कॉफी बनाने को कहा।

मैं कॉफी लेकर उनके स्टडी में गयी और उन्होंने मेरा थरथराती आवाज में आह्वान किया था– सारे आवरण मिट गए थे, हमारे बीच के सभी नाटकीय रूपों का पटाक्षेप हो गया था। हम स्टडी में ही एक दूसरे में लीन हो गए थे। सब बंधनों तो तोड़कर

हम दोनो वस्त्र हीन एक दूसरे के दृढ़ आलिंगन में खोए हुए थे कि तुम दरवाजे पर आकर खड़ी हुई।

हाँ, दीदी तुम !

उसके बाद के सारे घटना क्रम तुम जानती हो ! पर एक बात नहीं जानती किया दिन हजार कोशिशों के बावजूद हमारी आँखे नहीं खुलती थीं और नहीं खुलता था हमारा दृढ़ आलिंगन। उस दिन मेरा शरीर ही नहीं मेरी आत्मा भी नंगी हो गयी थी।

तुम कुछ क्षण रुकी थी फिर वापस अपने कमरे में चली गयी थी। हम दोनो को प्रकृतिस्थ होने में समय लगा था।

पर आश्चर्य ! तुमने घंटे भर बाद ही सामान्य आवाज में मुझे चाय पीने के लिए बुलाया था

' बिन्नी, आओ मेरे कमरे में चाय पी लो !'

दीदी, तुम इतना साहस, आत्म नियंत्रण, संयम कहाँ से लाती थी ! कैसे तुम योगिनी सी तटस्थ रह सकती थी !

तुम्हारा सुहाग लूटा जा रहा था और तुम बहिनापा निभा रही थी !

इस घटना के बाद परदेदारी की कोई जरूरत नहीं रही थी। मैं और भी ढीठ हो गयी थी ! जीजाजी तो बोल्ड थे ही !

हम दोनो तुम्हारी कराह व क्रंदन अनसुनी कर अपने कमरे में एक दूसरे में खोये रहते !

मेरा थीसिस पर भी अब कोई ध्यान न था। बस जीजाजी, कॉलेज, सिनमा और थीयटर !

फिर परिया तुम्हारी गोद में आयी।

तुम वैसे ही संयत मुस्कान से उसके पालन– पोषण में लीन हो गयीं।

दो साल बाद मेरा पीएचडी पूरा हुआ और

मुझे भी वहीं कॉलेज में असिस्टेंट प्रोफेसरशिप मिल गया।

अब हम तीनो एक ही कॉलेज में नौकरी करते थे।

तुम आत्मस्थ और आत्मलिन होती जाती थी।

तुम्हारा रंग और भी काला पड़ता जाता था ! मुझे और जीजाजी को अब तुम्हारी कोई परवाह नहीं थी। अब शहर के लोग और कॉलेज में कलीग बातें बनाते थे – पर सामने चुप हो जाते थे।

तुम इस माहौल में परिया का पालन पोषण नहीं करना चाहती थी इसलिए परिया के पाँच – छः साल के होते होते तुमने उसे वेलहम स्कूल में दाखिला दिलवा दिया।

वह अब सिर्फ छुट्टियों में घर आती। मुझे भी दूसरे शहर में प्रमोशन के साथ ट्रान्स्फर हो गया था।

यह देख कर थोड़े महीने बाद जीजाजी ने भी अपना ट्रान्स्फर दूसरे शहर में करवा लिया था। आज स्वीकार करती हूँ कि मैंने ही उनको ऐसा करने के लिए बाध्य किया था।

तुम और भी अकेली हो गयी थी। पर हम दोनो को आपकी कोई परवाह नहीं थी। हम दोनो ने अपनी अलग दुनिया बना ली थी।

मेरे चलते दीदी, आपके जीवन में अस्थिरता आयी। मैं आयी थी आपकी सेवा करने और मदद करने पर कब अनजाने में मैंने रिश्ते की मर्यादा को तोड़ा, पता ही नहीं चला। जीजाजी भी मेरी सुंदरता पर मोहित थे। मैं भूल गयी थी दीदी, कि जीवन भर कमतर आंके जाने की पीड़ा क्या होती है। आपको हमेशा मैं कमतर आंकती रही – रूप में, गुण में, पढ़ाई में। पर आप मुझसे कहीं महान थीं। आप त्याग मयी थीं। आपने अपनी पढ़ाई रोककर मुझे पढ़ाया। मैं आपसे अधिक गोरी थी– सुंदर थी पर आप मुझसे अधिक मिर्णमयी थीं, अधिक ममतमयी और कोमल।

आप खटती रहीं और मैं आगे पढ़ती गयी।

फिर आपको जीजाजी मिले। दुहेजू पर स्मार्ट, पढ़े लिखे और ऊँचे पद पर आसीन।

पहली बार तुम्हारे घर गयी तो तुम्हारा ठाट देखा! पति रावण पर उसकी लंका तो सोने की थी! सुवर्णमयी और ऐश्वर्यमयी तुम पटरानी मंदोदरी सी लगी थी मुझे।

तुम्हारा सुख सहा नहीं जा रहा था। इतना सुख था तुम्हारे जीवन में, और मेरे जीवन में केवल अभाव और दु:ख।

बचपन में सब मुझे सुंदर कहते थे और तुमपर दया करते थे। पर असली दया की पात्र तो मै थी। हमेशा तुम्हारी चीजों पर अपना अधिकार मानती थी– सो जीजाजी पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया, मैंने तुम्हें उनके मन के सिंहासन से गिरा दिया और खुद वहाँ आसीन हो गयी।

दीदी, तुम्हें कितनी पीड़ा हुई होगी, मैं अब समझ सकती हूँ।

जीजाजी का आकर्षण अदम्य था। शुरुआत तो उन्होंने ही की। उन्होंने मुझे समझाया कि तुम्हारी नौकरी के चलते जीजा जी ने तुमसे ब्याह किया था वरना जीजाजी के लिए एक से बढ़कर एक रिश्ते आए थे!

उस समय दीदी! मुझे जीजाजी मजबूर लगे थे और तुम बड़ी मौकापरस्त जैसे बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा था।

मुझे तो तुमपर हमेशा से जलन थी कि तुम्हें क्यों अच्छी नौकरी मिली – और मेरी तमाम अच्छाइयों के बावजूद मुझे क्यों असफलता मिली – बार – बार।

पर मैं भूल जाती थी कि मै पढ़ाई में कभी अच्छी नहीं थी– मेडीयोकर स्टूडेंट थी और तुम थी टॉपर! तुमने कितने ही मेडल और रेकर्ड अपने नाम किए थे।

पर तुम्हारी शादी क्यों अच्छे घर में हुई, क्यों जीजाजी भी स्मार्ट और मर्द टाइप मिले ? यह सब तो मुझे मिलना चाहिए था, तुम्हें नहीं।

मैं तो हमेशा ही चीर वंचित रही– नौकरी से भी और घर– वर से भी। जबकि, दीदी तुम सच बताना– तुम मुझसे हर चीज में उन्नीस थी या नहीं ?

तुम साँवली मैं गोरोचन सी गोरी

तुम सींक सी पतली और लम्बी और मैं जापानी गदबदी गुड़िया सी प्यारी।

तुम्हें देखकर एक कठोर संघर्षशील जीवन का आभास होता था। और मैं कोमलता व रूमानियत का प्रतीक थी।

तब भी तुम्हें वह सब मिला जिसकी हक□दार मैं थी। और मुझे कुछ भी नहीं मिला।

तुम्हें तो संघर्ष करने की आदत थी। तुम्हारे मुँह पर बेचारगी का भाव बना रहता था,अगर तुम असफल होकर कोई छोटी मोटी नौकरी कर लेती तो मेरे दुष्ट मन को शांति मिलती पर तुम तो सफलता के नित्य नए परचम गाड़कर सबके बीच इतनी पॉप्युलर हो गयी थी कि मेरी आँखो और दिल में यह चुभने लगा।

उदाहरण के लिए स्कूल को ही ले लो। तुम कक्षा में टॉप करती और मैं किसी तरह पास होती। तुमने अपने ऊपर वर्जना की ढेरों अर्गलाएँ लगा रखी थीं। तुम्हें फैशन से मतलब नहीं था, तुम्हें भागकर सिनेमा नहीं देखना था, तुम्हें चाट नहीं खानी थी– परीक्षा में चोरी नहीं करनी थी, और तुम्हें किसी लड़के से प्रेम नहीं करना था। तुम तो बचपन में ही बुढ़िया हो गयी थी। मै यह सब करना चाहती थी जो समाज और घर में वर्जित था।

मेरी गलतियों पर तुम पर्दा डाल देती थी। मेरे उधार के पैसे तुम चुका देती थी यहाँ तक कि तुम मेरा पेपर भी लिख देतीं – प्रोजेक्ट बना देतीं।

सारे शिक्षक तुम्हें बहुत प्यार करते थे और तुम्हारा उदाहरण देते थे। तब मुझे लगता था कि कैसे तुम्हें परास्त करूँ ?किस तरह मेरा भी बहुत नाम हो ?

आज तुम्हें बता रही हूँ– मुझे शर्म लगता था यह कहते हुए कि तुम मेरी बड़ी बहन हो! इसलिए नहीं कि मै तुमसे पढ़ाई में कमजोर थी या

उदंडता करती थी बल्कि इसलिए कि तुम काली- कलूटी थी, और लोगों ने मेरा दिमाग चढ़ा दिया था कि मैं कितनी गोरी चिट्टी और सुंदर हूँ।

वे कहते कि- ' वह तो कहीं से तुम्हारी बहन नहीं लगती- नौकरानी लगती है। क्या सचमुच वह तुम्हारी बहन है ? '

मुझे भी लगता था कि काश तुम थोड़ी और गोरी होती !

तब मुझे क्या पता था दीदी कि तुम्हारा मन कितना सुंदर है- कितना उज्ज्वल !

मैं तो तन की सुंदरता को संसार के सुखों का बीमा मानकर बैठी थी !

तुम तो त्यागमयी थी। अपने सुख त्यागकर मेरे लिए सुख जुटाती रही। मुझे याद है जब परीक्षा का मेरा अड्मिट कॉर्ड नहीं आया था तो रात को ही किस तरह तुम परीक्षा भवन में घुस गयी थी ! वही बरामदे में चादर बिछाकर लेट गयी थी। सुबह ऑफिस खुलने पर किस तरह तुम सबको गिड़गिड़ाकर मेरा अड्मिट कॉर्ड बनवा लायी थी ! मुझे याद है !

दीदी तुम क्यों हर बात को चुपचाप मानती रही।

क्यों हर अन्याय को चुप चाप झेलती रही ?

परिया दूर चली गयी, मैं दूसरे शहर चली गयी थी और जीजाजी भी मेरे बहकावे में आ गए थे।

तुम बहुत अकेली हो गयी थी- गम्भीर रूप से बीमार भी पर हमें कभी खबर नहीं दी। मुझे तो अपनी एक सहपाठिन से पता चला कि तुम बहुत बीमार हो।

दूसरे दिन मैं और जीजाजी वापस आए थे।

तुम पहचानी नहीं जा रही थी। तुम्हें कोलोन का कैन्सर हुआ था और रोग अब अंतिम अवस्था में था। तुमने किमो और दूसरी दवाइयाँ लेने से मना कर दिया था और हॉस्पिटल में भर्ती होने से भी !

घर पर ही एक नर्स तुम्हें बस पेन किलर दे रही थी।

तुम तो हमेशा से सहनशील रही हो। पर इतना साहस कि तुम कैन्सर के दर्द को भी मुँह सिये सह लेती थी।

तुमने बस मुस्कुरा कर एक ही इच्छा प्रकट की थी

' परिया को बुला दो।'

मैंने डॉक्टर से पूछा था – कितना समय बचा है अब ? डॉक्टर ने नकारात्मक मुंडी हिला दिया था।

मैं हताश सी तुम्हारे कमरे में आराम कुर्सी पर बैठी थी कि जीजाजी ने अप्रत्याशित रूप से कमरे में प्रवेश किया और तुम्हारा पैर पकड़ कर रोने लगे।

तुम उठकर बैठ गयी और पैर सिकोड़ लिए। तब भी तुम्हारे चेहरे पर वही संयत मुस्कान थी। जैसे, तुम्हें दृढ़ विश्वास था कि जीजाजी तुम्हारे पास वापस जरूर आएँगे ! तुमने मुझे दुबारा हरा दिया था – दीदी !

अगले दिन ही मैंने किसी को परिया को होस्टल से लाने भेजा।

तुम्हें नहीं पता कि वह दुपहर को जब घर पहुँची, तुम सो रही थी।

वह जाकर जीजाजी से लिपट गयी और हिलक -हिलक कर रोने लगी। मैंने उसे अपनी बाँहों में लेने की कोशिश की तो उसने अनचिन्हे पथराए गुस्से से मेरी ओर देखा था-

दीदी सच मानो वह दृष्टि वैसी ही हिम शीतल थी जैसी कि नयी माँ ने पहली बार घर आने पर हमें देखा था ! मैं सहमकर पीछे हट गयी।

फिर वह तुम्हारे सिरहाने बैठकर तुम्हारा सिर हौले हौले सहलाने लगी। तुम पेन किलर दवाई के प्रभाव में सो रही थी।

तुम्हारी बेसुध अस्वाभाविक नींद दुपहर ढलने के बाद खुली थी।

तुमने अपनी बाँहें पसार दी थी – परिया के लिए। वह लहराकर तुम्हारी गोद में समाकर रो रही थी। तभी जीजाजी आए और वह भी तुमदोनो से लिपट कर रोने लगे थे।

लगता ही नहीं था कि तुम लोग तीन प्राणी अलग- अलग रो रहे हो ! लग रहा था कि कोई एक ही व्यक्ति रो रहा है !

या, एक ही आँसू तीनो की आँखों से बह रहा है – गंगा की धार की तरह !

और मैं ?

मैं बस इस दृश्य का हिस्सा थी ! ताकि दृश्य का वर्णन लिख सकूँ और अपनी स्थिति समझ सकूँ।

उसी रात को लगभग एक बजे जीजाजी ने मेरे कमरे के दरवाजे को खटखटाया और सूखे स्वर में कहा

' तुम्हारी दीदी चली गयी। कैन्सर ने उसे मार डाला।'

दीदी, पर मुझे पता था कि तुम्हें कैन्सर ने नहीं बल्कि हमने मारा है- मैंने और जीजाजी ने !

दीदी मैं भी बहुत दिनो तक यहाँ नहीं रहूँगी। कहीं चली जाऊँगी।

तुमने एक बार मुझसे बचपन में कहा था कि ' सबकूछ बनना, बस कभी सौतेली माँ न बनना।'

मैं यहाँ तुम्हारे घर में रहूँगी तो सौतेली माँ बन जाऊँगी, दीदी ।

मैंने परिया की आँखो में वही भाव देखा है- उपेक्षा का, मौन आरोप का, अपराध का और आक्रोश का जो कभी हम दोनो की आँखो में हुआ करता था – अपनी नयी माँ के लिए।

मैं चली जाऊँगी कल ही

कहाँ जाऊँगी, पता नहीं !

जब तुम ही नहीं रही तो फिर मैं कहीं भी जाऊँ, किसी को मेरी क्या परवाह होगी और क्यों होगी !

❖

कवयित्री एवं सामाजिक चिंतक

भारती विदेश सेवा की वरिष्ठ अधिकारी हैं। वे अभी भारत के कॉन्सल जनरल के बतौर जोहान्सबर्ग में पदस्थापित हैं। वे इंडोनेशिया, नेपाल तथा स्कॉटलैंड में भारत का प्रतिनिधत्व कर चुकी हैं। संपर्क +27 76 4698897

धर्म संकट

कादंबरी मेहरा

जमीला अभी त्रिनिदाद से लंदन आई थी। जमीला की माँ हस्पताल में नर्स थी। वहीं पास में उनको एक फ्लैट मिला हुआ था मगर जमीला माँ से अलग फ्लैट लेकर उसमे रहती थी। कई सालों तक जमीला सायरस के संग रही मगर वह शादी की जकड़न से मुक्त रहना चाहता था। फिर जैसा कि अक्सर होता है, इस रिश्ते में बर्फ जमने लगी। जमीला ३५ पार कर चुकी थी। उसको शादी की छतरी के नीचे अपनी ममता को फलती फूलते देखने की ख्वाहिश थी। सायरस शिफ्टों में काम करता था। अक्सर काम कम होने पर घर बैठ जाता था। बात नहीं जमी। जमीला ने उसको अपना अलग ठिकाना ढूंढने के लिए कह दिया। अत्यधिक पढ़ी लिखी होने के बावजूद उसको अपनी नौकरी में तरक्की नहीं मिली। हर बार जब जगह खाली होती तो कोई गोरी लड़की उसके सर पर आ बैठती। इस छद्म नस्लवाद ने उसको बहुत अंतर्मुखी बना दिया था। पहले सिम्मी ने कदम रखा उनकी गहरी दोस्ती हो गयी। जमीला की वंशावली में केवल एक भाषा का सूत्र था। बिहार प्रान्त से आये गिरमिटिया लोग आपस में विवाह कर लेते थे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान।

इस एक शब्द में अनेक दुविधाएँ निहित हैं। या यूँ कहिये कि यह एक सहस्त्र फन वाला सर्प है। अनेक प्रश्न मुँह बाए आपको घूरते हैं। और आप ? ----- निरुत्तर, सकते की हालत में !

धर्म संकट? किसका? कहाँ? क्यों? किसलिए? —— परन्तु अंत में, अरे यह क्या होता है ? धर्म तो निरंतर है और जो निरंतर है वह समय के अनुरूप बदलता है। देश काल के अनुरूप बदलता है। व्यक्तिगत इच्छाओं के अनुरूप बदलता है। या फिर डंडे के जोर पर बदल दिया जाता है।

खैर औरों की छोड़िये। इस वाकये में दुविधा में उलझे दो जने हैं, माइकल और सिम्मी। दोनों एक ही स्कूल में पढ़ाते थे। आरंभिक शिक्षा के क्षेत्र में नन्हे बालकों को मातृ सदृश्य वात्सल्य मिले, इसलिए स्त्रियों को ही अध्यापिका नियुक्त किया गया था। परिचारिकाएँ भी अधिकतर बच्चों की माएँ ही बन जाती थीं। इतनी स्त्रियों के बीच एक जवान जहान पुरुष का होना। दबी-घुटी विकारत की नजर से उसे देखा जाता था। माइकल के हिस्से में भी उपहासयुक्त टिप्पणियों की भरमार थी। अक्सर वह ईसाई धर्म से अलग धर्मों के विषय में बताता। शुद्ध शाकाहारी भोजन बनाता और खाता। अकेला ही रहता। कोई उसे वियर्ड (अजीब) बताता तो कोई हिजड़ा।

असल में माइकल एक सामान्य, गंभीर, साफ सुथरे चरित्र का एकाकी बन्दा था। अपना काम बखूबी करता था। बच्चे उसको मानते थे। ऐसा नहीं था कि उसको स्टाफरूम में बैठी एक दर्जन स्त्रियों से कोई परहेज था पर लंच टाइम में भी वह अपने कमरे में ही बना रहता। अन्य पुरुषों की तरह ही उसका हाथ का काम ज़रा कमजोर बैठता था और सिम्मी ठहरी कला और हस्तकला की इंचार्ज। माइकल को उससे बहुत काम रहता था। जैसे कि जब उसकी प्रार्थना सभा में नाटक करवाने की बारी आयी तो सारे मुखौटे सिम्मी से बनवाये। बहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ी उसे, पर ठीक है ! ठीक है।

जब उजड्ड डेनिस और नैथन दंगा करते, तो सिम्मी उनको माइकल के हवाले कर देती। अच्छी दोस्ती बन गयी थी। सिम्मी को तली हुई मूंगफली दही के साथ खाते देखकर उसको बहुत अजीब लगा मगर चखने के बाद उसे पसंद आई और वह अक्सर वही खाता। कभी-कभी सिम्मी के ही कमरे में बैठकर अपना शाकाहारी भोजन करता। स्टाफ में कई एकल लड़कियाँ थीं मगर माइकल उनको घास नहीं डालता था। शायद इसीलिये वह लोग उसका मजाक उड़ाती थीं। उसकी इस उम्र में लड़कियों के प्रति तटस्थता के कारण उसको वह लोग कुछ का कुछ समझती थीं। पर एक दिन बातों-बातों में उसने बताया कि उसकी गर्लफ्रेंड बर्मिंघम में वकील है और हर हफ्ते वीकेंड में उससे मिलने लंदन आती है।

अगले साल नए सत्र में उसको जो कमरा मिला वह खेल का पूरा मैदान पार करके आता था। इसलिए सुबह के कॉफी ब्रेक में वह स्टाफरूम में नहीं आता था। पर उस दिन सितम्बर का सुनहरा दिन था और वह चाय की क्यू में ठीक सिम्मी के पीछे खड़ा था। सिम्मी उसे देखकर सहज मुस्कुरा दी। अपनी बारी आने पर झट से दो कप बनाये और एक उसको पकड़ा दिया। मगर वह तो जैसे उधार खाये बैठा था। एकदम उसपर पर बरस पड़ा। पूरे वॉल्यूम पर जोर से बोला

" तुम हिन्दू हो न ?"

" हाँ ,एक तरह से ;;"

" तुम राम को मानती हो ?"

" हाँ राम हिन्दुओं का देवता है। क्यों ?"

" तुम लोग बहुत अत्याचारी हो। मुसलमानों को मारते हो। तुम भूल रहे हो कि इण्डिया मुसलमानों का था।"

"अरे माइकल ! ये क्या हो गया है तुम्हें सुबह-सुबह ? मैं किस तरफ से तुमको धर्मांध नजर आई ? क्या मैंने जाने-अनजाने किसी बच्चे का अपमान किया है ?"

" तुम्हारे धर्म वाले मस्जिदें तोड़ रहे हैं। तुम उन्हीं को तो शह दोगी ?"

"कौन सी मस्जिदें ? मुझे इस देश में रहते बीस वर्ष हो गए हैं। मैंने तो नहीं सुना की लंदन में कोई मस्जिद तोड़ी गयी।"

"बनो मत। तुम लोगों ने इंडिया में मस्जिद तोड़ डाली जो चार सौ साल पुरानी थी। अब उसकी जगह मंदिर बनेगा। राम का।"

" माइकल, मैंने सचमुच कोई ऐसी न्यूज नहीं सुनी। मुझको समय ही नहीं मिलता। वैसे भी भारत में क्या हो रहा है, क्या नहीं, इससे मुझे कोई मतलब नहीं। तुम खुद अपने काम से थक जाते हो तो सोचो मुझे तो घर जाकर खाना भी बनाना होता है। गृहस्थी भी सम्भालनी होती है। बच्चे हैं मेरे। मैं अकेली तो नहीं रहती तुम्हारी तरह!"

"तुम कुछ भी कहो। यह सरासर गलत है। हिन्दू बेहद कट्टर होते हैं। ब्राह्मण जाति बेहद पुरातनपंथी और नृशंस है। धर्म के नाम पर बहुत झगड़ते हैं। मुसलमानों को अछूत समझते हैं। उनका छुआ हुआ नहीं खाते।"

"पर मैं तो वैसी नहीं हूँ। शामून की माँ पुलाव बनाकर लाई थी तो हम सबने खाया था यहीं तुम्हारे संग। न ही मैं ब्राह्मण हूँ न कट्टर। तुमको इस तरह मुझको अपमानित करने का कोई हक नहीं बनता।"

सिम्मी रुष्ट होकर अपने कमरे में चली गयी। राम जन्म भूमि के विवाद का शायद उसको कोई इल्म नहीं था। जब तक वह भारत में थी यह विषय किताबों में बंद था। किसी पत्र-पत्रिका में नहीं पढ़ा था। यह बहस सब कान लगाकर सुन रहे थे। उनके हाव-भाव से लगा कि वह सब माइकल से सहमत थे। केवल जमीला अली की आँखों में परेशानी और क्षोभ था। शायद वह सिम्मी के पक्ष में थी। खैर छोड़िये। यूँ देखिये तो अध्यापिकाएं भी कम गपोड़ियाँ नहीं होतीं। पीठ फिरते ही निंदा में निमग्न हो जाएँगी। स्त्री जाति स्त्री जाति ही रहेगी। मानव स्वभाव सब जगह एक जैसा।

जमीला अली त्रिनिदाद से लंदन आई थीं। जमीला की माँ हस्पताल में नर्स थीं। वहीं पास में उनको एक फ्लैट मिला हुआ था मगर जमीला माँ से अलग फ्लैट लेकर उसमें रहती थी। कई सालों तक जमीला सायरस के संग रही मगर वह शादी की उलझन से मुक्त रहना चाहता था। फिर जैसा कि अक्सर होता है, इस रिश्ते में बर्फ जमने लगी। जमीला ३५ पार कर चुकी थी। उसको शादी की छतरी के नीचे अपनी ममता को फलीभूत होते देखने की ख्वाहिश थी। सायरस शिफ्टों में काम करता था। अक्सर काम कम होने पर घर बैठ जाता था। बात नहीं जमी। जमीला ने उसको अपना अलग ठिकाना ढूँढ़ने के लिए कह दिया। अत्यधिक पढ़ी-लिखी होने के बावजूद उसको अपनी नौकरी में तरक्की नहीं मिली। हर बार जब जगह खाली होती तो कोई गोरी चमड़ी वाली उसके सर पर आ बैठती। इस छद्म नस्लवाद ने उसको बहुत अंतर्मुखी बना दिया था। जबसे सिम्मी ने कदम रखा उनकी गहरी दोस्ती हो गयी। जमीला की वंशावली में केवल एक भाषा का सूत्र था। बिहार प्रान्त से आये गिरमिटिया लोग आपस में विवाह कर लेते थे, चाहे हिन्दू हों या मुसलमान। उनमें उन्मुक्त स्वीकारात्मकता थी। एक दूजे का धर्म परिवर्तन आदि नहीं किया जाता था। जमीला के पिता मुस्लिम थे पर जल्दी ही मर गए थे। माँ मुस्लिम सरनेम लिखती थीं और नानी हिन्दू।

जमीला ने सिम्मी को एक तरह से डाँटा भी और सांत्वना भी दी।

"सिम्मी तुम बहुत कोमल ह्रदय की हो इसलिए माइकल तुम्हारा फायदा उठा गया। तुमको 'नो' कहना सीखना होगा। तुम्हारे व्यक्तिगत धर्म पर आघात करने की उसकी हिम्मत कैसे पड़ी। क्या किसी बच्चे को तुमने कुछ कहा था ?"

"अरे बिलकुल नहीं। कितने साल से तो पढ़ा रही हूँ। जब असेंबली में मुसलमान बच्चे हॉल के बाहर बैठे रहते हैं तब मैं ही उनकी देखभाल के लिए नियुक्त रहती हूँ। उनकी माएँ अपनी सभी कहानियाँ मुझको ही सुनाती हैं। मुझे कभी नहीं लगा कि वह लोग विधर्मी हैं। या कोई और।"

"अब अगली बार उसको चुप करा देना। जस्ट शट हिम अप।" सिम्मी को पक्का करके जमीला चली गयी। सिम्मी के गरमा गरम आंसू उसका गुस्सा धोते रहे। जमीला सही कहती है। सिम्मी कभी भी पलटवार नहीं कर पाती। उसे उसी वक्त माइकल को चुप कराना नहीं आया। बेवकूफ की बेवकूफ रही। अब बैठी टसुए बहा रही है। अरे

तभी कहती मेरे धर्म से तुझको क्या मतलब। पर अब क्या होना था। सिम्मी ने शुभ संस्कार देखे हैं, निभाए हैं। हर रोज नहा धोकर पाठ पूजा करके वह स्कूल आती है। उसे देवी माँ में अटूट श्रद्धा है। पराये देश में उसके बच्चे सिर्फ देवी माँ के ही हवाले हैं। जब वह चार पाँच वर्ष के ही थे सिम्मी को उन्हें भगवान् भरोसे छोड़कर अपने काम पर जाना पड़ता था। कैसे समझेगी जमीला कि वह क्यों इतनी सरल है। भारतीय स्त्रियों का नरकुल जैसा लचीलापन, वह बाँस ,जो झंझावात के आगे टूटने की हद तक झुक जाता है मगर फिर भी नहीं टूटता और फलता-फूलता रहता है, जमीला जैसी साहसी स्त्री कैसे समझ सकती है? एक ही झगड़े में उसने दस बरस पुराने संगी को घर से बाहर निकाल दिया चाहे तबसे अब तक साध्वी की तरह जी रही है। पर नहीं। उसको यह बेइज्जती नहीं सहनी।

माइकल क्यों अचानक इतना उद्विग्न हो उठा? हमेशा तो वह कहता है कि धर्म होना ही नहीं चाहिए, इसलिए वह कुछ भी नहीं मानता। धर्म ने ही विश्व में संख्यावाद फैलाया है। कोई भी धर्म पुराना होकर केवल साम्प्रदायिकता का स्वरूप ले लेता है और फिर मेरा-तेरा का जहर विश्व भर में फैलाता है। तो फिर आज इसे क्या हो गया? बैठे बिठाये सिम्मी से उलझ लिया।

अगले दिन से सिम्मी ने स्टाफरूम में जाना ही बंद कर दिया। जमीला समझ गयी। अत: रोज चाय का प्याला किसी बच्चे से उसको भिजवा देती। तीन-चार दिन बाद माइकल समझ गया। असल में अंग्रेज अपनी तहजीब के बहुत पक्के होते हैं। चाहे दिखावा ही हो मगर नाक पर मक्खी नहीं बैठने देते। सिम्मी को भी लगा कि अन्य स्त्रियाँ उसको पुचकारी सी दे रही हैं अब। बर्था बोली, माइकल ने हमारी सबकी इमेज बिगाड़ दी। तुम हमको भी ऐसा न समझो। सबको हक है अपनी तरह सोचने का। सिम्मी ने अकड़ कर जताया कि उसको किसी और के दड़बे में घुसा कर अगर मुर्गियों की तरह रखा जायेगा तो वह इस पर सख्त कार्यवाही करेगी।

माइकल औरों का पलड़ा सिम्मी की तरफ झुकता देखकर पिड़पिड़ाया तो होगा। सो एक दिन फिर से उसके कमरे में लंच टाइम में जा धमका। सिम्मी तैयार थी। इस बीच राम मंदिर के रक्तरंजित इतिहास की मोटी-सी भूमिका और कुछ दिन पहले हुई तोड़-फोड़ का चलचित्र समाचार में दिखाया जा चुका था। अत: माइकल ने ठन्डे स्वर में सिम्मी को समझाते हुए कहा कि उस दिन वह कुछ ज्यादा उत्तेजित हो गया था मगर हिन्दुओं को मुसलमानों को भारत से नहीं निकालना चाहिए क्योंकि अंग्रेजों से पहले यह देश उन्हीं का था।

सिम्मी फुफकार कर बोली, अच्छा जरा यह तो बताओ कि भारत कितना पुराना है ? मुसलमान कहाँ से आये थे ? क्यों वहीं रह गए ? अरे यह सब छोडो। अगर भारत उन्हीं का था तो विभाजन क्यों करवाया। वहीं रहते ना। टुकड़े भारत के हुए न कि पाकिस्तान के। और अंग्रेजों ने इसे हो जाने दिया। अब क्या मैं भी कह सकती हूँ कि उन चालीस लाख लोगों को माइकल ने मरवाया? क्या तुम भी हिटलर के बराबर हो ? आज तक तो तुम सब धर्मों को एक सा मानते थे तो अब ये पक्षपात किसलिए?

माइकल फिर भी मिनमिनाकर बोला कि जो भी हो यह गलत हुआ।

सिम्मी बोली, ठीक है तुमको फैसला देना है तो जाओ भारत जाकर कुछ करो। मुझको यहीं अपना जीवन बिताना है। मेरे लिए अपना परिवार, अपनी गृहस्थी, अपनी नौकरी और आज और अभी ज्यादा जरूरी है। इससे अधिक मैं नहीं संभाल सकती। भारत से मैं बीस वर्ष दूर हूँ।

माइकल निरुत्तर हो रहा। खिसिया कर बोला, मैं भी तो अपना खाना बनाता हूँ, घर संभालता हूँ। अकेले आदमी को भी सौ काम होते हैं।

सिम्मी भी कुछ नरम पड़ी। पूछा, क्यों भाई, हमने तो सुना है कि तुम्हारी कोई गर्लफ्रेंड है। क्या वह कुछ काम नहीं करती?

नहीं। नजमा सिर्फ वीकेंड में आती है। हम लंदन के किसी नए कोने में घूमने जाते हैं, थिएटर देखते हैं, खाना बाहर खाते हैं। सोमवार को वह सुबह की ट्रेन से वापिस बर्मिंघम चली जाती है।

उसके माँ बाप उसे इस तरह आ जाने देते हैं ? हमारे समाज में तो ऐसा नहीं होता अमूमन। सिम्मी ने आश्चर्य जताया।

माइकल ने बताया कि वह डिवोर्सी है और डाइवोर्स के बदले में उसने एक फ्लैट मांग लिया था जिसमें अब वह अलग रहती है। माँ-बाप की उसकी जिन्दगी में दखल नहीं है। वह एक आजाद लड़की है एकदम आधुनिक। वाइन से परहेज नहीं करती। सभी रेस्टॉरेंट में खा लेती है।

सिम्मी ने कुछ और नहीं कहा। माइकल ने माफी नहीं मांगी बस अपना सा मुँह लेकर चलता बना। स्टाफरूम में उसने सबको बाबरी मस्जिद का इतिहास सुनाया पर तभी जमीला ने उसे टोक दिया। माइकल इसमें सिम्मी का क्या योगदान है जो तुम उसकी नाक को कीचड़ में घिस रहे हो? और वह यहां बैठी क्या कर लेगी? और तुम भी क्या कर सकते हो? पहले अपने घर की तो खबर लो। ब्रिक्सटन में आये दिन काले गोरे का फिसाद होता है..तोड़-फोड़ आगजनी। तुम पहले उसकी चिंता करो।

जमीला ने मैदान जीत लिया। बाद में उसी ने सिम्मी को सुनाई यह बात। सिम्मी ने पूछा कि क्या वह उसको सांत्वना देने के लिए इतनी

सहानुभूति दिखला रही है क्योंकि वह खुद भी तो मुसलमान है।

जमीला हँस पड़ी।

ऐसा नहीं है। त्रिनिदाद में सब मिले-जुले धर्मों के परिवार हैं जो केवल भाषा एक-सी होने पर शादियाँ कर लेते थे। मेरे दादा ईसाई थे तो दादी हिन्दू। मेरे पापा मुसलमान थे पर माँ हिन्दू की बेटी हैं। उन्होंने अपने नाम के आगे अली इसलिए लगाया क्योंकि मेरी नानी ने कहा कि शादी के बाद वह अपने पति का ही नाम आगे चलाएगी। यही हिन्दू धर्म की शिक्षा है। जमीला की नानी नियम से रामायण बाँचती हैं। जमीला को उसकी न भाषा आती है न धर्म। हाँ, उसे सीता नाम बहुत पसंद है। अगर उसकी बेटी होती तो वह उसको सीता बुलाती। सिम्मी हँस पड़ी।

जाहिर था कि माइकल को सिखाने-पढ़ाने वाली हस्ती नजमा ही थी। सिम्मी ने मन ही मन सबसे पल्ला झाड़ लिया। दिखावे के लिए वह सबको हेलो आदि करती और दिखाती कि उसको कोई परवाह नहीं है। उसके अगले सत्र में दिवाली का नाटक करवाने से उसने साफ मना कर दिया। सबके मुँह उतर गए। पूरे साज-सिंगार के साथ राम-रावण युद्ध बच्चों का सबसे पसंदीदा नाटक था। विन्नी ने आकर उसे उलांभा दिया तो उसने कहा कि भारत के स्कूलों में क्रिसमस का नाटक होता है तो क्या वहाँ हिन्दू अध्यापिकाएँ नहीं करवातीं ? विन्नी ने ही उस वर्ष पूरी क्लास से गरबा डांस करवाया। सिम्मी ने पोशाकें और घुँघरू आदि बनाये पर चुप बैठी रही। क्लास माइकल की थी। बहुत खुश हुआ। कई बार धन्यवाद कहा।

क्रिसमस पर स्टाफ की दावत हुई तो उसने खड़े होकर सबको सम्बोधित किया और अपनी और नजमा की सगाई का उद्घोष किया। बताया कि उसने हीरे की अँगूठी पहना दी है और ईस्टर में, यानि तीन महीने के बाद वह लोग शादी कर लेंगे। स्टाफ ने बधाई दी, शैम्पेन से भरे गिलास टकराये। कहा कि उसको नजमा को भी इस पार्टी में लाना चाहिए था। तिस पर वह बोला कि वह छुट्टी नहीं ले सकती थी लंदन आने के लिए। पर ईस्टर से पहले वह सबको पार्टी देंगे।

बर्था ने उससे पूछा ,'' क्या वह अपनी नौकरी छोड़कर यहां नहीं आ जायेगी तुम्हारे पास रहने ? "

"नहीं। उसकी वहीं किसी के संग पार्टनरशिप है। पर हाँ मुझे वहां जरूर नौकरी मिल जायेगी। ना होगा तो हम घर कहीं बीच की जगह ले लेंगे ताकि दोनों के बराबर रास्ता तय करना पड़े। ''माइकल ने सोंचते हुए कहा। बर्था ने तनिक मुँह बिचका दिया। मगर माइकल शादी के नाम से बहुत उत्साहित था। उसकी खुशी उबली पड़ रही थी। बात करने का अंदाज ही बदल गया था। बर्था ने पूछा कि वह क्रिसमस की छुट्टियों में बर्मिंघम जा रहा है क्या ? तिस पर माइकल ने बताया कि उसे स्कूल के कामों से छुट्टी आदि नहीं मिलती है अत: वह पहले जरा घर ठीक करेगा, नए कपडे खरीदेगा आदि। बर्था ने फिर से मुँह बिचका दिया।

उसके अगले दिन टॉयलेट में वह मेरी से कह रही थी कि उसे नहीं लगता यह दो दिलों का गठबंधन है। मेरी ने पूछा क्यों ? तो बर्था ने कहा कि इसमें जरा गर्मी कम है। मेरी ने बर्था को आगाह किया कि उसे अपनी राय देने का कोई हक नहीं। दोनों परिपक्व हैं आखिर। इस उम्र में उनसे बीस वर्ष वाले युगल जोड़े की-सी जीवंतता की उम्मीद करना फिजूल होगा। उधर जमीला को इसलिए संदेह था क्योंकि अभी तक माइकल को नजमा ने अपने माँ-बाप से नहीं मिलवाया था। सगाई भी चुपचाप अँगूठी पहनकर कर ली थी। जमीला तो कम से कम ऐसा कभी भी ना करती। उसकी नजर में नजमा माइकल को इस्तेमाल कर रही थी। मगर सब चुप रहे।

स्कूल के जीवन में किसे फुर्सत है कि रोज के कार्यक्रम से अधिक कुछ सोचे ?

आनन-फानन में ईस्टर आ पहुँचा। टर्म के आखिरी दिन स्टाफ मीटिंग थी। मीटिंग खत्म हुई तो सबने माइकल को शुभकामनाएँ देते हुए पूछा किस दिन है शादी ? माइकल गंभीर मुद्रा में खड़ा हो गया और सबको सम्बोधित करके बोला

'' मित्रो, मुझे आप सबकी आशाओं पर पानी फेरते बुरा लग रहा है। मगर असल में मैंने शादी का इरादा छोड़ दिया है। नजमा अब मेरे जीवन में शामिल नहीं है''

'' नो् !''कई स्वर एक साथ बोल उठे।

''अरे ऐसा कैसे हो गया ? क्या उसके घरवालों ने कोई आपत्ति की है उसके दुबारा शादी करने पर ? ''ठन्डे दिमाग वाली मेरी ने पूछा।

'' नहीं और हाँ। घरवालों से मुझको मिलाने से पहले नजमा ने मुझे अपना धर्म परिवर्तन करने के लिए कहा, क्योंकि वह अपने परिवार को खुश करना चाहती है ताकि वह लोग उसको विधर्मी न समझें''

कुछ रुककर उसने घूँट भर पानी पिया और आगे बोला, ''मैं नहीं सोंचता कि प्रेम किन्हीं धार्मिक उसूलों से बाध्य है। और अगर विवाह मेरे इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर निर्भर है तो यह न प्रेम है न विवाह। यह केवल धर्म परिवर्तन का माध्यम है। मैं इस साजिश के सख्त खिलाफ हूँ। भले ही मैं अच्छा क्रिस्चियन नहीं हूँ मगर मैं और कुछ भी नहीं बनना चाहता।''

जमीला सिम्मी को और सिम्मी बर्था को देख रही थी।

❖

---

35. The Avenue Cheam Surrey SM2 7
QA UK Ph.: 02086612455

और सुबह हो गई

डॉ. वंदना सहाय

अपने पल-पल सूख रहे होंठों को वह भींच कर बोले जा रही थी- ''दिवाकर के जाने के बाद तो मुझे ऐसा लगा था, जैसे कि सारी दुनिया ही मेरे लिए खत्म हो गई है। जिंदगी की सारी खुशियाँ मुट्ठी में भरी रेत की तरह धीरे-धीरे सरक कर स्वयं समाप्त हो गई। जी में आया कि खुद को मार डालूँ। पर, अपने-आपको जिंदा रखा- आदित्य और आकांक्षा के लिए, जिनके लिए दिवाकर हर पल जीया करते थे। वे बच्चों को पढ़ा-लिखाकर सफलता के शिखर पर बैठाना चाहते थे'', कहते हुए स्तुति एक पल के लिए रुक सामने देखने लगी।

बरखा ने भी देखा- एक ग्यारह-बारह साल की बच्ची हाथ में पानी का गिलास लिए आई और बिना कुछ कहे स्तुति की ओर बढ़ा दिया। बच्ची का रंग दूध की तरह सफेद था, आँखें बड़ी-बड़ी और होंठ बिल्कुल लाल। सफेद ड्रेस और कांधे तक खुले, घुँघराले बालों में वह ऐसे दिख रही थी, जैसे डिब्बे में बंद बार्बी डॉल बाहर निकल आई हो। बच्ची चुपचाप खड़ी हो, स्तुति की आँखें पोंछने लगी। बरखा बच्ची को देख पिघल उठी।

''एक्सक्यूज मी'' कहती हुई एक महिला की कोमल आवाज ने बरखा के तेज चल रहे कदमों को सहसा रुकने पर मजबूर कर दिया। हालांकि, वह एक पल के लिए भी रुकना नहीं चाहती थी, क्योंकि वह वहाँ अपने बेटे को स्कूल छोड़ने के लिए आई थी और स्कूल में देर न हो जाए इसलिए उसने अपनी कार को पार्किंग जोन में नहीं लगाया था। अब वह डर रही थी कि कहीं ट्रैफिक पुलिस ने आकर जैमर लगा दिया तो लंबा-चौड़ा चक्कर हो जाएगा। फिर उसे घर पहुँचकर अपने पति के लिए लंच भी तैयार करना था। पर इस कोमल आवाज के एक शब्द ने जैसे उसके पैरों में बेड़ियां डाल दीं।

वह उस चेहरे को देखना चाहती थी, जिसने उसे पीछे से आवाज दी थी। उसने मुड़कर देखा- एक भद्र महिला हल्के रंग के सलवार-सूट में औपचारिकतावश मुस्कुरा रही थी। बड़ा-सा एक स्लेटी रंग का पर्स कंधे से लटकता हुआ और बाल बिखरे-से, जैसे घर से जल्दबाजी में यूँ ही निकल आई हो।

छोटी-छोटी बातों से हो आए तनाव की वजह से मुस्कुराने का मन नहीं रहने पर भी बरखा को औपचारिकतावश मुस्कुराना पड़ा। उसने पूछा- ''कहीं आप बरखा, आई मीन बरखा सक्सेना तो नहीं?''

थोड़ी-सी हैरान होते हुए बरखा ने कहा- ''हाँ, मैं बरखा हूँ'', इतना सुनते ही महिला की बाँछें खिल गईं। उसने मुस्कुराते हुए कहा- ''याद आया, मैं स्तुति। स्कूल में हम दोनों एक ही क्लास में पढ़ा करते थे।'' इतना सुनते ही बरखा ने धीरे-धीरे अपने स्मृतियों को झकझोरना शुरू किया। स्मृतियाँ सहज ही जाग उठीं और उसे गलबहियाँ डाले बरसों पीछे खींच ले गईं, जहां स्कूल परिसर में ढेर सारी सहेलियाँ थीं। पर उन सबके चेहरों पर समय की धूल पड़ गई थी। जल्दी ही धूल साफ हो गई और उसमें से एक चेहरा निकला- सांवला-सलोना स्तुति का। पर, वह चेहरा अब परिपक्व दिख रहा था।

स्तुति, जो उसकी बैंच से दो कतार पीछे वाली बैंच पर बैठा करती थी। बिल्कुल गुमसुम-सी, किसी भी बात का बड़ी मुश्किल से 'हाँ' या 'ना' में जवाब देने वाली और अक्सर अकेली रहने वाली।

सब कुछ याद आने पर अब बोलने की बारी की थी- ''अरे स्तुति तुम यहाँ! कितनी बदल गई हो, बिल्कुल गृहणी दिखाई दे रही हो।'' ''और तुम भी तो..........'' वाक्य पूरा होने से पहले ही स्तुति बरखा से लिपट गई।

स्कूल की एक-एक यादों को आपस में पिरोते हुए दूसरी बातें भी मालूम होती चली गईं कि उन दोनों के बेटे उसी स्कूल में पढ़ रहे थे।

स्तुति को एक और बड़ी बेटी भी थी। उसने यह भी बताया कि कई बार उसके मन में आया कि वह उसे आवाज दे। पर हर बार आवाज उसके गले में अटक जाती थी कि कहीं गलती से किसी दूसरी महिला को आवाज़ न लगा बैठे। पर आज उसने सारी झिझक तोड़ डाली थी।

एक दिन यूँ ही आते-जाते बातें करने के दौरान स्तुति ने बरखा से अपने यहाँ आने की ज़िद की। उसने कहा कि उसके पास ढेरों बातें हैं, साझा करने के लिए जो यूँ ही आते-जाते नहीं की जा सकतीं। बरखा तैयार हो गई और उसने आने के लिए इतवार का दिन रखा। बेटे को पति के पास छोड़, वह बरखा के दिए पते पर पहुंच गई। उसने कॉल-बेल बजाया। घर के अंदर से स्तुति निकली। वह थकी हुई-सी दिखाई दे रही थी। गले लगाकर उसने उसे अपने ड्राइंग-रूम के अंदर बैठाया। साधारण-सा साफ-सुथरा ड्राइंग-रूम, हर चीज़ अपनी जगह पर व्यवस्थित ढंग से रखी हुई थी।

हल्की-सी मुस्कान अपने होठों पर बिखेरते हुए स्तुति कहने लगी-''तुम नहीं जानती कि तुम्हारे यहाँ आने से मैं कितनी खुश हूँ। ढेर सारी बातें मन के पिटारे में बंद हैं, जिसे मैं तुम्हारे साथ साझा करना चाहती हूँ। बचपन की दोस्ती की तरह कुछ भी नहीं है। मैं आज भी तुम्हें उतना ही अपने मन के करीब पाती हूँ, जितना बचपन के दिनों में। स्कूल पास करने के बाद जितने भी दोस्त बने, उनसे मैं बस औपचारिक रूप से ही जुड़ पाई। तुम्हारी तरह कोई मिला ही नहीं।''

स्तुति लगातार इधर-उधर की बातें किए जा रही थी। बरखा के मन में हो रहा था कि स्तुति अपने पति को बुलाकर उससे परिचय क्यों नहीं करवा रही। आज तो इतवार है, उसके पति को तो घर पर ही होना चाहिए। और अगर कहीं बाहर भी गया हुआ है, तो वह इसे कह भी तो सकती है। पर समय जब कुछ ज्यादा ही निकल गया तो बरखा के धैर्य ने जवाब दे दिया और उसने स्कूल वाले शरारती अंदाज में कहा-''अरे ! इतनी देर से अपने पति को कहाँ छिपा रखा है? उनसे मेरा परिचय क्यों नहीं कराती ?क्या तुम्हें डर है कि मैं उन्हें लेकर कहीं भाग जाऊँगी?''

स्तुति के चेहरे पर खेलती हुई स्मित की रेखा सहसा सिमट गई। उसका साँवला चेहरा स्याह पड़ गया, जैसे चेहरे की बत्ती गुल हो गई हो। उसने चुप हो नजरें नीची कर लीं। ठीक वैसे ही, जैसे स्कूल के दिनों में किसी सहेली की बात से मन को ठेस पहुँचने पर कर लिया करती थी।

सहसा, उसने नजरें उठाई और सामने वाली दीवार की ओर देखने लगी। जब उसने अपने-आप को पहेली बनती स्थिति से जोड़ने की कोशिश की तो चौंक उठी। उसने स्तुति की आंखों से रंगहीन बूंदों को गिरते हुए देखा-हाँ, वे आँसू ही थे।

''हाँ, इतनी देर से मैं तुम्हारा परिचय अपने पति से ही तो करवाने की कोशिश कर रही हूँ'', कहते हुए स्तुति ने बरखा का हाथ थामकर उसे एक काँच लगी अलमारी के सामने लाकर खड़ा कर दिया। लेकिन बात कहाँ से शुरू करूँ, समझ में नहीं आ रहा'', कहते हुए स्तुति फफक कर रो पड़ी। बरखा ने जैसे ही स्तुति को बाँहों में भरा, उसकी निगाहें अलमारी के अंदर रखी एक तस्वीर पर पड़ी, जिसपर माला चढ़ी हुई थी। उच्छ्वासों के बीच स्तुति कहने लगी-''यह तस्वीर मेरे पति दिवाकर की है, जो आज से नौ साल पहले हमें अकेला छोड़ कर चले गए थे। उस समय आदित्य मेरी गोद में ही था और आकांक्षा सिर्फ तीन साल की थी।''

अपने पल-पल सूख रहे होठों को वह भींच कर बोले जा रही थी-''दिवाकर के जाने के बाद तो मुझे ऐसा लगा था, जैसे कि सारी दुनिया ही मेरे लिए खत्म हो गई है। जिंदगी की सारी खुशियाँ मुट्ठी में भरी रेत की तरह धीरे-धीरे सरक कर स्वयं समाप्त हो गई। जी में आया कि खुद को मार डालूँ। पर अपने-आपको ज़िंदा रखा- आदित्य और आकांक्षा के लिए, जिनके लिए दिवाकर हर पल ज़िया करते थे। वे बच्चों को पढ़ा-लिखाकर सफलता के शिखर पर बैठाना चाहते थे'', कहते हुए स्तुति एक पल के लिए रूक सामने देखने लगी।

बरखा ने भी देखा- एक ग्यारह-बारह साल की बच्ची हाथ में पानी का गिलास लिए आई और बिना कुछ कहे स्तुति की ओर बढ़ा दिया। बच्ची का रंग दूध की तरह सफेद था, आँखे बड़ी-बड़ी और होंठ बिल्कुल लाल। सफेद ड्रेस और कंधे तक खुले, घुँघराले बालों में वह ऐसे दिख रही थी, जैसे डिब्बे में बंद बार्बी डॉल बाहर निकल आई हो। बच्ची चुपचाप खड़ी हो, स्तुति की आँखे पोंछने लगी। बरखा बच्ची को देख पिघल उठी। स्तुति कुछ अलग-सी आवाज़ बनाकर इशारों के साथ बच्ची को समझाने लगी ''इन्हें नमस्ते करो, यही हैं बरखा आंटी जिनके बारे में मैं तुम्हें इतने दिनों से बता रही हूँ और बरखा यह है मेरी गुड़िया-सी बेटी आकांक्षा।''

बरखा ने भावुक होकर आकांक्षा को अपनी गोद में खींच लिया। उसके जाते ही स्तुति फिर से कहने लगी - ''जब आकांक्षा ने जन्म लिया तो मैं और दिवाकर दोनों ही बड़े खुश थे, एक प्यारी-सी बेटी को पाकर। पलंग पर जब यह सोई होती तो लगता जैसे कोई परी

आसमान से उतर कर सो रही हो। हमने गौर किया कि दो साल बीत जाने के बाद भी न वह कुछ ढंग से बोल नहीं पाती थी और न ही दूरसे आती कोई आवाज इसे आकर्षित कर पाती थी। हमारा दिल बैठने लगा। जब हमने इसे बड़े से बड़े डॉक्टरों को दिखाया तो पता चला कि हमारी गुड़िया आंशिक रूप से गूंगी और बहरी है। हम दोनों भीतर ही भीतर टूट गए। बहुत इलाज करवाने पर भी कुछ खास फ़ायदा नहीं हुआ। उसका दाखिला सामान्य बच्चों के स्कूल में नहीं हो सका। घोर निराशा के अंधेरे में हमारा बेटा आदित्य कब अपनी मुस्कान से उजाला कर गया, कुछ पता ही नहीं चला।

पति की तस्वीर को निहारते हुए स्तुति ने फिर से कहना शुरू किया- ''जानती हो, दिवाकर कहते थे कि उनकी नजरों में मैं दुनिया की सबसे खुबसूरत स्त्री हूँ। मैं अपने अति साधारण रंग-रूप से परिचित थी, इसलिए मुझे लगता था कि ये मुझे बहला रहे हैं। पर उनकी आँखों में उमड़ता प्यार मुझे सचमुच ही दुनियां की सबसे सुंदर स्त्री होने का ताज पहना जाता। वे हर समय मुझे गाढ़े रंग की सलवार-सूट या साड़ी लाकर देते और मुझे पहन कर दिखलाने को कहते। पहन कर जैसे ही मैं तैयार हो आइने के सामने खड़ी होती, आईना झूठ नहीं बोल पाता और मैं रुआँसी होकर बोल पड़ती- कितनी बार कहा है कि गाढ़े रंग के कपड़े मुझ पर अच्छे नहीं दिखते, फिर इन्हें मेरे लिए क्यों लाते हो? दिवाकर झट-से मेरी आँखों में आँखे डालकर कहते हैंकि यह आईना तो झूठा है। सच तो मेरी आँखे बयां करती हैं और सचमुच जब मैं इनकी आँखों में झाँकती तो वहाँ मुझे प्यार का पारावार हिलोरे लेता हुआ दिखाई देता।''

बरखा सब कुछ सुनती रही- निःशब्द। एक बार फिर से स्तुति की आँखों से वेदना की बाढ़ बह चली थी और शायद वह इसी प्रवाह को रोकने के लिए चौके में जाकर चाय-नाश्ता बनाने लगी। बरखा उठ न सकी। आवाज़ के साथ ही लगा जैसे उसके पैरों को भी लकवा मार गया हो।

सामने प्लेट में नाश्ता रख और हाथ में चाय पकड़ा कर स्तुति ने फिर से अपनी बात जारी रखी-''एक दिन दिवाकर ने मूवी जाने का प्रोग्राम बनाया। मैं बच्चों के साथ तैयार हो रही थी कि वे आए और आकर कहने लगे कि तबियत कुछ ठीक नहीं लग रही है। सीने में भारीपन और हल्का सा दर्द हो रहा है। मैंने इसे साधारण एसिडिटी समझा और गोलियाँ लाने चल दी। जब लौट कर देखा तो वे ज़मीन पर गिरकर छटपटा रहे थे और कुछ बोल नहीं पा रहे थे। जब तक मैं इन्हें लेकर अस्पताल पहुँची तब तक ये दुनियां छोड़ चुके थे। मैं आकांक्षा के सामने खुलकर रो भी न सकी, क्योंकि वह कुछ समझ नहीं पा रही थी और आदित्य छोटा था।''

दामाद के जाने के बाद मेरे पिता जी पर वज्रपात हुआ। वे प्रशासनिक सेवा अधिकारी थे। उनके पास बड़ी-बड़ी बातें बोलने का लाइसेंस था। पर शायद उन्हें किसी ने बताया नहीं था कि उनके लाइसेंस की वैलिडिटी सामाप्त हो चुकी है। उन्हें मेरे लिए संवेदना कम और दुनिया की बातों की परवाह ज्यादा थी। उन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे ही यह तुगलकी फ़रमान जारी कर दिया कि मैं शहर छोड़कर गाँव जाकर उनके साथ रहूँ, जहाँ वे रिटायरमेंट के बाद सेट्ल हो गए थे। उनका मेरे साथ शहर में रहना मुश्किल था क्योंकि उन्हें गाँव में ढेर सारे नौकर-चाकरों के बीच रहने की आदत पड़ गई थी और उनके बीच रहना उनका फ़ेवरिट पासटाइम बन गया था। शहर की चमक-दमक से बच्चों को दूर रखने का मतलब था-उनके भविष्य को अंधकारमय बनाना। मुंबई में रहने वाला मेरा छोटा भाई भी यह उड़ती खबर छोड़ गया था कि यदि मैं चाहूं तो आदित्य को उसके पास पढ़ने के लिए भेज सकती हूँ। पर कई कारणों से मैं आश्वस्त न हो सकी। भला मैं अपने जिगर के टुकर्डे से अलग कैसे रह सकती थी। दिवाकर के जाने के बाद यही दोनों बच्चें मेरी दोनों आँखें थे।

ससुराल में मेरी सास ने मुझे ही दिवाकर की मौत का जिम्मेदार ठहराया और मुझसे संबंध-विच्छेद कर लिया । शायद उनकी नज़रों में मैं एक डायन थी और उन्हें यह डर था कि मैं उनके दूसरे बेटों को भी निगल जाऊँगी।

काफी दिनों तक मेरे और मेरे पिता जी के बीच वाद-विवाद चलता रहा। मैं अकेली समय के झंझावात से जूझती रही और अंत में अपना मन पक्का कर लिया कि मैं अपने पति के ऑफिस में अनुकंपा के आधार पर नौकरी करूँगी। जहाँ मैं अपने पति के ऑफिस में बड़े अफसर की पत्नी के रूप में इज्जत पाती थी, वहीं अब एक सामान्य-सी विधवा क्लर्क के रूप में नौकरी करने लगी। शुरूआत में जिन अफसरों ने मेरे पति के साथ काम किया था वे सब मुझे ''कोलिग''की पत्नी के रूप में इज्जत दिया करते थे। पर जैसे-जैसे समय बीतता गया मैं कोलीग की पत्नी कम और एक असहाय विधवा क्लर्क ज्यादा बनती चली गई।

मैंने यह भी गौर किया कि लोग मेरे वैधव्य से सहानुभूति के नाम पर मेरा तमाशा देखते हैं। फिर मैंने अपने टूटे हुए व्यक्तित्व के

एक-एक टुकड़े को जोड़ना शुरू किया। जिन गाढ़े रंग के कपड़ों को मैं दिवाकर के रहते पहनने से बचती रही, वहीं गाढ़े रंग के कपड़े मुझे उनके जाने के बाद बचाते रहे। जिस दिन भी मैं सफेद साड़ी पहन, लाचार बन ऑफिस गई, लोगों को मेरा वैधव्य बहुत पसंद आया।

स्तुति की आंखों की नमीं अब सूख चुकी थी और उनमें अब रोश नज़र आ रहा था। उन आँखों को देख बरखा को राहत मिली और उसने जाने को इजाजत माँग ली।

ड्राइविंग सीट पर बैठ कार ड्राइव करते हुए बरखा रास्ते भर यही सोचती रही- इतनी कम उम्र में स्तुति ने कैसे वह सब सहा होगा? लड़की जो स्कूल की छुट्टी की भीड़ से घबड़ा कर दुबक जाया करती थी, उसने दुनिया की भीड़ का अकेले कैसे सामना किया होगा? स्कूल में कभी किसी से नहीं लड़ने वाली लड़की ने कैसे अपने और अपने बच्चों के हक के लिए लड़ाई की होगी?

समय पंख लगाकर उड़ा जा रहा था। स्तुति ने ऑफिस के तनाव से भर अपने बेटे को स्कूल बस से भेजना शुरू कर दिया था। स्तुति और बरखा में अब बहुत कम मुलाकातें होने लगीं थीं।

एकाएक बरखा के पति का तबादला किसी दूसरे शहर में हो गया और बरखा ने अपने बेटे और पति के साथ दूसरे शहर में आकर गृहस्थी संभाल ली। शुरू-शुरू में तो मोबाइल फोन पर अक्सर बातें हो जाया करतीं थीं। पर धीरे-धीरे यह अंतराल बढ़ने लगा और एक समय ऐसा भी आया कि जब अपने-अपने बच्चों के लिए देखे गए सपनों को आकार देते-देते दोस्ती एक बार फिर से यादों की सिलवटों में समा गई।

बरसों बीत गए थे। स्तुति और उसके बच्चों की छवि अब बरखा के दिमाग से उतर चुकी थी कि एक दिन एक मैले-कुचैले लिफ़ाफ़े ने उन सबको ताज़ा कर दिया। हुआ यूँ कि जब बरखा शॉपिंग कर अपने घर लौटीं तो हल्की-सी बून्दा-बांदी शुरू हो चुकी थी। सहसा उसकी नज़र कीचड़ से बने अजनबी जूतों की छाप पर पड़ी, जो लेटर-बॉक्स के पास जाकर खत्म हो गए थे। वह समझ गई कि कोई चिट्ठी आई है। लिफ़ाफे को बाहर निकाल कर भेजने वाले का नाम पढ़ने लगी। खुशी से दिलझूम उठा भेजने वाले का नाम था- स्तुति, और चिट्ठी में लिखा था- ''प्यारी बरखा मैं जानती हूँ कि तुम सपरिवार ठीक होगी। हम दोनों अपने-अपने परिवार की जिम्मदोरियाँ निभाने में व्यस्त थे। पर जब दिवाकर के जाने के वर्षों बाद इतनी बड़ी खुशी मिली तो दिल ने सबसे पहले तुम्हें याद किया क्योंकि मेरे लिए ''अपना'' का तुम ही पर्याय हो। दिवाकर के जाने के बाद मेरी जिंदगी एक सुरंग बनकर रह गई थी जिसमें सिर्फ चलना होता था- अथक। जहाँ थक जाती थी, वहीं रात मान लेती। पर इस राम की कमी सुबह नहीं होती थी, चारों ओर अंधेरा, सन्नाटा............... ।

मैं बुढ़ापे की ओर बढ़ने लगी थी और बच्चे जवानी की ओर। आदित्य ने तो अपनी तेज बुद्धि, मेहनत और लगन के चलते इंजिनियरिंग में दाखिला ले लिया और अब वह कुछ महीनों में इंजीनियर भी बन जाएगा। पर आकांक्षा के लिए मैं हर पल चिंतित रहती थी कि मेरे बाद उसका क्या होगा? मेरे ऑफिस में ही एक कम उम्र के इंजीनियर लड़के ने ज्वाइन किया था-बड़ा नम्र और मृदुभाषी। पता नहीं क्यों वह मुझसे हमदर्दी करता। जहाँ भी मैं अटकती, वह झट से उसका हल ढूंढ लेता। ऑफिस के कामों के साथ ही वह घर की समस्याओं को भी सुलझाता। मैं उससे बड़ी प्रभावित थी। उसके माता-पिता दूसरे शहर में रहते थे।

एक दिन मैंने उसे खाने के लिए अपने घर पर बुलाया। उसके बाद वह अक्सर हमारे घर आने लगा। आकांक्षा भी उससे मिलकर खुश होती थी। एक दिन उसका कॉल मेरे मोबाइल पर आया और वह फार्मल बातें करने के बाद थोड़ा हकलाते हुए बोलने लगा-आंटी मैं आपकी आकांक्षा को पसंद करने लगा हूँ। मेरा विश्वास कीजिए, मुझे किसी लड़की की खनकती आवाज़ ने उतना आकर्षित नहीं किया जितना कि आकांक्षा के मौन ने। भले ही आपकी आकांक्षा में आपके डाले गए संस्कार बोलते नहीं हैं, पर दिखते जरूर हैं। वह जैसे इशारों से बातें करती है, मैं उन इशारों को समझना चाहता हूँ और तमाम उम्र उसके ही इशारों पर चलना चाहता हूँ। एक बात का विश्वास कीजिए, मेरा प्यार इनफैचुएशन नहीं है। आकांक्षा के साथ खुश रहने के लिए आप का आशीर्वाद चाहिए। अपना आशीर्वाद जरूर दीजिएगा, और उसने फोन बंद कर दिया। बरखा, मैं बता नहीं सकती कि चंद लम्हों में हुई इन बातों ने मेरे दिल पर से कितना बड़ा बोझ उतार दिया। मुझे एहसास हुआ कि मेरी जिंदगी की सुरंग में आज पहली बार सुबह हुई है और मैं उगता हुआ सूरज देख रहीं हूँ।''

चिठ्ठी पढ़ते-पढ़ते सहसा बरखा की आँखे नम हो गईं औरआँखों से दो बूँद गालों पर ठहर गई-जैसे बारिश की बूँद आ ठहरी हो।

❖

"गोविंदम" बी2/02 प्लॉट नंबर 2
वृन्दावन टाउनशिप, अमरावति-जबलपुर हाईवे, जामठा
नागपुर-441122 (महाराष्ट्र) मो. 9168263178, 9325263178

कोरोना, जेल और संवाद के साधन के तौर पर टेलीफोन

डॉ. वर्तिका नंदा

इस परिप्रेक्ष्य में जेल में फोन की उपलब्धता भी गौर करने योग्य है। जिला जेल, लखनऊ में प्रति 435 बंदियों पर एक फोन जबकि केंद्रीय जेल, नैनी में प्रति 2079 बंदियों पर एक फोन उपलब्ध है। वैसे इस स्थिति में लगातार सुधार होता गया है। कोरोना के समय जेलों में उपलब्ध टेलीफोन की संख्या में तेजी से बढोतरी हुईऔर बंदियों ने भी इसके इस्तेमाल में गहरी दिलचस्पी दिखाई। उत्तर प्रदेश जेल विभाग इसे जेल सुधार की दिशा में एक बड़ा कदम मानती है।

सर्वेक्षण से यह भी सामने आया कि कोरोना से पहले ज्यादातर जेलों में महिलाओं को फोन करने की सुविधा नहीं दी जाती थी क्योंकि फोन बूथ केवल पुरुषों के हिस्से में लगे होते थे। अब जेलों ने फोन लाइनों की सुविधा सभी बंदियों के लिए बराबरी के साथ उपलब्ध करवा दी है। जेल प्रशासन ने फोन ऐसी जगहों पर लगवा दिए हैं जहां महिलाओं के जाने पर पाबंदी नहीं है।

शोध सारांश: जेलें प्रमुख तौर पर आवाजाही और संचार की आजादीपर बंदिशों को अंजाम देती हैं लेकिन चूंकि आधुनिक समय में जेल का काम सुधार-गृह के तौर पर भी काम करना है, इसलिए इन बंदिशों में कुछ ढील भी दी जाती है। आपसी संवाद के मामले में जेल में टेलीफोन करने की सुविधा इनमें प्रमुख है। कोरोना के दौर में जेल में यही टेलीफोन बंदियों के लिए एक बड़ा सहारा बना है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1955 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बनाए गए स्टैंडर्ड मिनिमम रूल्स फॉर दी ट्रीटमेंट ऑफ प्रिजनर्स में अन्य विषयों के अलावा बंदियों के लिए बाहरी दुनिया से संपर्क के नियम बनाए गए हैं। इन नियमों को 2015 में अद्यतन कर नेल्सन मंडेला रूल्सके रूप में स्थापित किया गया। इन नियमों में बंदियों के लिए मूलभूत जरूरतों को केंद्र में रखा गया है। इनका असर समस्त देशों में जेलों के लिए बनाई गई योजनाओं, नियमों और कार्यप्रणालियों पर पड़ा है। बाहरी दुनिया से संपर्क के संबंध में नियम 37 से 39 में बंदियों के लिए संचार और संवाद की जरूरतों पर काफी बल दिया गया है। इनमें टेलीफोन के जरिए संवाद को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। दुनियाभर में बंदियों के लिए टेलीफोन की उपलब्धता के अलग-अलग मापदंड तय किए गए हैं और उसी के अनुरूप जेल में टेलीफोन कीप्रक्रिया तय की गई है।

भारतीयजेलों में बंदियों के लिए टेलीफोन की उपयोगिता पर शोध कम ही हुआ है। यह शोध पत्र उसी दिशा में एक प्रयास है। शोधकर्ता ने इसशोध पत्र के केंद्र में उत्तर प्रदेश की जेलों को रखा है और इनमें वहाँ की जेलों में टेलीफोन के उपयोग को लेकर बनाए गए नियमों, प्रक्रियाओं, टेलीफोन के उपयोग और उनके बंदियों पर पड़ने वाले प्रभाव की पड़ताल की है।

बीज शब्द: जेल में संवाद, जेल में टेलीफोन, जेल में भीड़, जेल में कोरोना

आलेख: 2019 के नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक देश के 35 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में कुल 1412 जेलें हैं जिनमें 4,78,600 बंदी हैं। अधिकांश जेलों मेंक्षमता से ज्यादा बंदी रखे गए हैं। 2016 मेंजेलों में भीड़-भाड़ की दर 114% थी जो 2019 में बढ़कर 119% हो गई। देश में बंदियों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। इस समय हर 10 में से 7 बंदी विचाराधीन हैं यानी कुल जेल आबादी के 69 फीसदी बंदी। आंकड़ों के मुताबिक दिल्ली की जेलों में सबसे ज्यादा भीड़ है। यहां क्षमता की तुलना में 175 फीसदी बंदी निरूद्ध हैं। इसका मतलब यह है कि जिन जेलों में 100 बंदियों के रहने की क्षमता

है, वहां 175 बंदी हैं। उत्तर प्रदेश में यह दर 168 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश भारत की सबसे ज्यादा आबादी का राज्य है और देश में सबसे ज्यादा बंदी संख्या भी उत्तर प्रदेश की जेलों में है। उत्तर प्रदेश में कुल 71 जेलें हैं, जिनमें 5 केंद्रीय और 62 जिला जेलें शामिल हैं।

भारतीय जेलों में कुल 4,78,600 बंदियों में से 1,32,729 (27.7%) बंदी निरक्षर हैं यानी लगभग हर 4 बंदी में से एक। ऐसे में अपने परिवार से जुड़ने के लिए उनकी निर्भरता मुलाकात और टेलीफोन पर ही सर्वाधिक होती है और अगर कोरोना जैसी किसी वजह से मुलाकात रोक दी जाती है तो उनके लिए टेलीफोन ही संवाद का इकलौता माध्यमबचता है। इस पृष्ठभूमि में भी जेल में टेलीफोन के महत्व को समझा जा सकता है।

भारतीय जेलों में टेलीफोन जेल में बंदियों की संचार की जरूरतों को पूरा करने के लिए संचार के कई माध्यम उपयोगी हो सकते हैं। ऐतिहासिक रूप से जेलों में मुलाकात, पत्र-लेखन और समाचार पत्र संचार और संवाद की जरूरतों को पूरा करने का प्रमुख माध्यम रहे हैं। आधुनिक दौर में इनमें टेलीफोन, टेलीविजन और इंटरनेट के जरिए संचार को भी जोड़ा गया है। इनमें मुलाकात बंदियों के संवादका सबसे पुराना और पारंपरिक माध्यम है। तमाम तकनीकी सुविधाओं के बीच जेलों में टेलीफोन का प्रवेश काफी देर से इसलिए हुआ क्योंकि भारत में लंबे समय तक टेलीफोन को एक आवश्यकता नहीं बल्कि विलास की वस्तु समझा गया। 90 के दशक में इस सोच में बदलाव हुआ और भारतीय समाज में टेलीफोन की उपयोगिता और उस पर निर्भरता भी बढ़ी, जिसके परिणामस्वरूप जेलों में बंदियों के लिए अधिकृत रूप से टेलीफोन को उपलब्ध करवाया गया।

टेलीफोन जेल में बाहरी दुनिया से संवाद की जरूरत को पूरा करने का एक बेहद सस्ता माध्यम है। यह जेलों के बंद वातावरण में बंदियों को आश्वस्त करता है। अपने परिवार से लगातार संपर्क बने रहने से बंदियों को समाज में लौटने में मदद मिलती है। कोरोना के समय में टेलीफोन की सुविधा बंदियों के लिए बहुत बड़ा आसरा साबित हुई है।

भारतीय जेलों में टेलीफोन पर नियम और प्रचलित व्यवस्था: अधिकांश बड़े राज्यों के जेल मैनुअल काफी पुराने हैं जिनमें टेलीफोन के लिए अलग से कोई प्रावधान विद्यमान नहीं हैं। इन राज्यों में टेलीफोन की व्यवस्था के लिए राज्य सरकार या जेल मुख्यालय ने निर्देश पारित किए हैं जिनके आधार पर जेलों में टेलीफोन लगाए गए। इनमें उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब और हरियाणा शामिल हैं।

मॉडल प्रिजन मैनुअल और बाद में दिल्ली प्रिजन मैनुअल 2018 में जेल में टेलीफोन को एक आवश्यकता के रूप में उल्लेखित किया गया है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा अनुमोदित मॉडल प्रिजन मैनुअल 2016 में बंदियों के लिए टेलीफोन के प्रावधान को सम्मिलित किया गया है। मैनुअल में बाहरी दुनिया से संपर्क के तहत अध्याय 8के अनुच्छेद 8.38, पृष्ठ 102 में यह बात खासतौर पर लिखी गई है कि बंदियों को इंटरव्यू, चिट्ठी लिखने, टेलीफोन और इलेक्ट्रॉनिक संचार की सुविधाएं दी जा सकती हैं। मैनुअल के मुताबिक जेल का सुपरिंटेंडेंट किसी बंदी को टेलीफोन या किसी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से संवाद करने की अनुमति राज्य के नियम के अनुसार दे सकता है। बंदी इस सुविधा का उपयोग किसी जेल अधिकारी की मौजूदगी में ही कर सकते हैं। बंदी को दी गई यह सुविधा, उसका व्यवहार उचित न होने की स्थिति में, सुपरिंटेंडेंट द्वारा रोकी जा सकती है।

जेलों में टेलीफोन की सुविधा प्राय: दो रूपों में उपलब्ध है। राज्यों के तय नियमों के अनुसार जेल में टेलीफोन एक पी.सी.ओ के तौर पर उपलब्ध होता है और यह सामान्य रूप से दो तरीकों से इस्तेमाल में लाया जाता है। राज्यों के तय नियमों के अनुसार या तो बंदी खुद जेल से बाहर फोन कर सकते हैं अथवा उन्हें बाहर से फोन किया जा सकता है। वर्तमान में निम्न रूप में जेल में टेलीफोन की उपलब्धता है-

1. बाहर किया जाने वाला फोन कॉल सिस्टम (आउटगोइंग) यह व्यवस्था सबसे ज्यादा इस्तेमाल में आती है। इसमें बंदी अनुमति पाए गए नंबरों पर 5-10 मिनट तक हर हफ्ते बात कर सकता है, यह पद्धति देश के अधिकांश राज्यों में प्रचलित है। इसमें फोन का खर्च आमतौर पर बंदी को ही देना होता है। विशेष परिस्थितियों में जेलें यह सुविधा नि:शुल्क भी दे सकती हैं।

2. बाहर से आने वाली काफल (इनकमिंग)-इस व्यवस्था में फोन बंदी के अपने परिजनों द्वारा किया जाता है। इसमें फोन का खर्च बंदियों को नहीं उठाना होता। इस प्रावधान से भ्रष्टाचार में कमी आती है और बंदियों के परिवारों को भी अपनी सुविधा से फोन करने का अवसर मिल जाता है। यह व्यवस्था मध्य प्रदेश में लागू है।

भारत की ज्यादातर जेलों में बंदियों को जेल के अंदर से फोन करने की अनमुति होती है लेकिन उसमें कई शर्तें लागू होती हैं। यहां यह

उल्लेख करना जरूरी है कि फोन कॉल पद्धति किसी भी प्रकार की हो, जेल प्रशासन सुरक्षा कारणों के मद्देनजर फोन कॉल को रिकॉर्ड करने का अधिकार रखता है।

कोरोना महामारी के समय में उत्तर प्रदेश की जेलों में टेलीफोन का महत्व

उत्तर प्रदेश मेंबदियों के लिए फोन की सुविधा 2016 में आई जो अन्य राज्यों की तुलना में काफी देर से थी। राज्य में यह सुविधा तीन चरणों में चलन में आई। पहले चरण में पी. एंड टी./लैंडलाइन फोन की अनुमति मिली, दूसरे चरण में पोस्ट-पेड मोबाइल कॉल्स सर्विस की शुरुआत हुई और तीसरे चरण में प्री-पेड मोबाइल कॉल्स की अनुमति दी गईजिससे जेल पी.सी.ओ से जुड़ना ज्यादा सुविधाजनक हो गया। इसके अलावा विशेष परिस्थितियों में बंदियों को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए भी परिजन से बात करने की अनुमति दी जा सकती है।

उत्तर प्रदेश के जेल विभाग के नियमों में एक हजार की बंदी संख्या पर कम से कम एक टेलीफोन का प्रावधान है लेकिन कुछ जेलों में यह संख्या इस मापदंड से भी कम है। बंदियों को अपने दिए गए किन्हीं दो फोन नंबरों पर बात करने की सुविधा मिल सकती हैलेकिन इन नंबरों की पुष्टि पहले पुलिस विभाग करता है। उसके बाद इन नंबरों को जेल के पीसीओ सिस्टम में दर्ज कर दिया जाता है। बंदी इन्हीं अधिकृत नंबरों पर बात कर सकता है।

कोरोना महामारी से पहले भी टेलीफोन की यह उपलब्धता उत्तर प्रदेश की ज्यादातर जेलों में थी लेकिन 2020 मार्च में कोरोना की वजह से भारत में बंदियों की मुलाकात पर रोक लगने के बाद टेलीफोन का उपयोग और उसकी उपयोगिता कई गुना बढ़ गई।

उत्तर प्रदेश की जेलों में बंदियों के लिए टेलीफोन बाहरी दुनिया से संवाद का सबसे जरूरी माध्यम बन गया है। मुलाकात का प्रावधान बंदियों के लिए अपने परिवार से सीधे जुड़ने का प्रमुख माध्यम है लेकिन इसके विकल्प के तौर पर अब टेलीफोन को प्रमुखता मिल गई है।

कोरोना काल में उत्तर प्रदेश की जेलों में टेलीफोन का प्रयोग-मई 2020 में शोधार्थी ने उत्तर प्रदेश की जेलों में टेलीफोन को लेकर एक सर्वेक्षण किया जो देश की जेलों पर किए जा रहे शोध का एक हिस्सा है। जेल में टेलीफोन के जरिए संवाद को समझने के लिए इन आंकड़ों को उत्तर प्रदेश के जेल विभाग से लिया गया। राज्य की 5 जेलों- नैनी (केंद्रीय जेल), लखनऊ (जिला जेल), आगरा (जिला जेल), गाजियाबाद (जिला जेल) और गौतम बुद्ध नगर (जिला जेल) को शामिल किया गया। येपांचों जेलें उत्तर प्रदेश की जेलों का प्रतिनिधित्व करती हैं। शोध में इन पांचों जेलों के करीब 15, 790 बंदियों के टेलीफोन के इस्तेमाल के आंकड़ों को शामिल किया गया। इनमें महिला बंदी भी शामिल हैं।

नतीजे यह पाया गया कि मुलाकात पर रोक के बाद से उत्तर प्रदेश की 69 जेलों में बंदियों के लिए फोन की निः शुल्क सुविधा शुरु कर दी गई। सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि जेलों में कोरोना काल में फोनकॉल का अनुपात पहले की तुलना में कम से कम तीन गुना बढ़ गया है। गाजियाबाद और गौतम बुद्ध नगर की जिला जेलों में हर रोज किए जा रहे फोनकॉल में वृद्धि का अनुपात अधिकतम है। यहां पर फोन कॉल में 7 से सीधे 325 और 38 से 260 का उछाल दर्ज किया गया है। महिलाओं के मामले में यह संख्या 25 और 5 है।

इस परिप्रेक्ष्य में जेल में फोन की उपलब्धता भी गौर करने योग्य है। जिला जेल, लखनऊ में प्रति 435 बंदियों पर एक फोन जबकि केंद्रीय जेल, नैनी में प्रति 2079 बंदियों पर एक फोन उपलब्ध है। वैसे इस स्थिति में लगातार सुधार होता गया है। कोरोना के समय जेलों में उपलब्ध टेलीफोन की संख्या में तेजी से बढोतरी हुईऔर बंदियों ने भी इसके इस्तेमाल में गहरी दिलचस्पी दिखाई। उत्तर प्रदेश जेल विभाग इसे जेल सुधार की दिशा में एक बड़ा कदम मानती है।

सर्वेक्षण से यह भी सामने आया कि कोरोना से पहले ज्यादातर जेलों में महिलाओं को फोन करने की सुविधा नहीं दी जाती थी क्योंकि फोन बूथ केवल पुरुषों के हिस्से में लगे होते थे। अब जेलों ने फोन लाइनों की सुविधा सभी बंदियों के लिए बराबरी के साथ उपलब्ध करवा दी है। जेल प्रशासन ने फोन ऐसी जगहों पर लगवा दिए हैं जहां महिलाओं के जाने पर पाबंदी नहीं है।

बंदियों पर प्रभाव: दुनिया भर में जेल अधिकारियों, बंदियों और सुधारकों ने यह माना है कि जेल में टेलीफोन की मौजूदगी जेल के माहौल को तनावमुक्त बनाने में मददगार होती है। कोरोना के समय में जेल में टेलीफोन से अतिरिक्त सहूलियत हुई है। जेल में टेलीफोन को लेकर आए इस बदलाव से बंदियों में काफी संतोष देखा गया। फोन की सुविधा ने उनकी जिंदगी में सुकून दिया है लेकिन कई जेलों में बंदियों

की संख्या की तुलना में फोन की संख्या बहुत कम है, इसलिए अगली कॉल के इंतजार का समय 3 से 10 दिन के बीच का है। 2020 मार्च में कोरोना के आने से पहले तक उत्तर प्रदेश में एक बंदी को हफ्ते में दो बार प्रति काल 5 मिनट तक बात करने की सुविधा थी। कोरोना के समय में इसे बढ़ाकर हफ्ते में पांच बार कर दिया गया लेकिन अवधि में कोई वृद्धि नहीं की गई। इसके बावजूद जेलों में फोन की यह सुविधा जेल सुधार की दिशा में एक कारगर कदम है।

एक और तथ्य गौर करने लायक यह है कि दिसंबर 2019 में करीब 1100 बंदियों ने टेलीफोन की सुविधा को इस्तेमाल करने के लिए फॉर्म भरा था। पुष्टि के बाद सिर्फ 400 फॉर्म ही पुलिस थानों से वापस आए। बाकी मामलों में या तो फॉर्म के लौटने तक बंदी जेल से रिहा हो गए या फिर उनके परिजनों ने उनसे बात करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

निष्कर्ष: अप्रैल 2021 में कोरोना की दूसरी लहर आने के बाद जेलों में मुलाकातें फिर से पूरी तरह बंद हो गई हैं और संवाद के लिए टेलीफोन फिर से इकलौता माध्यम बचा है। कोरोना के दौर में जेलों में टेलीफोन की उपयोगिता एकाएक काफी बढ़ गई है। हालांकि टेलीफोन मुलाकात की सुविधा का पर्याय कभी नहीं बन सकते लेकिन संकट के समय में इससे बढ़िया और कोई विकल्प हो भी नहीं सकता।

यहां मध्य प्रदेश जैसे राज्य का उदाहरण लिया जा सकता है जहां 73 उप जेलों में राज्य के करीब 15 प्रतिशत बंदी निरुद्ध रहते हैं। इनमें कोरोना से पूर्व बंदियों के लिए टेलीफोन का प्रावधान नहीं था। कोरोना के समयमें राज्य सरकार ने इन सभी जेलों में टेलीफोन की अनुमति और सुविधा मुहैया करवा दी।

महिला बंदियों के लिए कोरोना में टेलीफोन की उपलब्धता विशेष रही। कोरोना काल से पहले उत्तर प्रदेश में जिला जेल डासना इकलौती ऐसी जेल थी जिसमें महिला बंदी दोपहर में पुरूषों के बैरक में बंद होने के बाद पीसीओ का इस्तेमाल कर पाती थीं। कोरोना काल के दौरान राज्य की सभी जेलों में महिलाओं को यह सुविधा सुलभ हो गई। जेलों में नए टेलीफोन आने, कॉमन रूम में उन्हें लगाए जाने और बातचीत की अवधि-में बढ़ोतरी से जेलों में तनाव से निपटने में आसानी हुई है। पुलिस विभाग के जरिए नए बंदियों के टेलीफोन नंबरों की पुष्टि की प्रक्रिया को भी तेज किया गया है।

ज्यादातर जेलों में बंदियों की संख्या के अनुपात में फोन लाइनों की संख्या अभी भी काफी कम है। इस वजह से बंदी इस सुविधा का पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इसके अलावा बंदियों को फोन के इस्तेमाल के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता है। कई जेलों में अभी भी फोन लाइन नहीं पहुंचने के कारण टेलीफोन की सुविधा बाधित होती है। इसके अलावा टेलीफोन में किसी भी तरह की गड़बड़ी आने पर जेलें अक्सर उन्हें ठीक कराने में लंबा समय लगा देती हैं।

चूंकि फोन की सुविधा का सीधा संबंध जेल में बंदी के अच्छे चाल-चलन से जुड़ा होता है, बंदी भी यह प्रयास करते हैं कि वे अपने किसी भी अनुचित आचरण की वजह से फोन की इस सुविधा के अवसर को खो न दें। इससे भी जेलों को अनुशासनबद्ध रखने में मदद मिलती है। इस तरह से संवादविहीन जेलों में अब संवाद की एक नई परंपरा बन रही है। कोरोना के दौरान जेलों में भीड़, विचाराधीन बंदियों की बड़ी संख्या, मुलाकातों में बंदिशों से बंदियों में डर और बेचैनी में कमी लाने में टेलीफोन कारगर रहे हैं। संचार के इस बेहद सस्ते और आसान माध्यम ने देश की करीब 1400 जेलों में बंदियों को समाज से जोड़े रखने में मदद की, उन्हें मानसिक संबल दिया और जेलों को अधिक मानवीय बनाने में अपना योगदान दिया।

संदर्भ:

1. 8 मई, 2020: राज्यसभा टीवी: UP prisoners avail telephone facilities during COVID-19 crisis
2. 8 मई, 2020:जनसत्ता: कोरोना: यूपी के कैदियों के लिए फोन का सहारा
3. 1 मई, 2020: नव दुनिया:मुलाकात बंद, दिलों की दूरी दूर कर रहा है जेल का टेलीफोन
4. तिनका तिनका डासना: वर्तिका नन्दा: तिनका तिनका फाउंडेशन: 2020

विशेष:- डॉ. वर्तिका नंदा जेल सुधारक हैं और जेलों पर एक विशेष अभियान तिनका-तिनका की संस्थापक हैं। जेलों पर पत्रकारिता स्थापित करने पर काम। यह शोध पत्र आई सी एस एस आर और मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार की इंप्रैस स्कीम से स्वीकृत भारतीय जेलों में संचार की जरूरतों पर आधारित प्रोजेक्ट का एक हिस्सा है। देश की 1382 जेलों की अमानवीय स्थिति के संबंध में सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका की सुनवाई का हिस्सा बनीं।

पत्रकारिता विभाग, लेडी श्री राम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल vartikalsr@gmail.com मो. 9811201839

संस्कृति संक्रमण के युग में भारतीय दर्शन की उपादेयता: धर्म तथा नैतिकता के संदर्भ में

डॉ. श्रुति मिश्रा

मनुष्य अपनी प्रगतिशीलता के कारण अपनी बुद्धि के प्रयोग से अपनी चारों की परिस्थितियों को उन्नत करता चलता है। एक जीवन पद्धति रीति रिवाज, रहन-सहन, आचार विचार नवीन अनुसंधान और आविष्कार जिससे मनुष्य पशु स्तर से ऊपर उठ मनुष्यता की ओर ऊर्ध्वगमन करता है। यदि सभ्यता मनुष्य की भौतिक प्रगति की सूचक है तो संस्कृति व्यक्ति की विचारधारा और उसकी मानसिकता की परिचायक होती है। इस विकास के क्रम में मनुष्य अपना जो विकास करता है वह सभी तत्व संस्कृति में समाविष्ट होते चलते हैं। धर्म तथा दर्शन जो संस्कृति के अपरिहार्य तत्व है संस्कृति में ही समाविष्ट होते हैं। धर्म दर्शन के ये तत्व हमारी रीति रिवाज, मान्यताओं, परंपराओं और जीवन के विभिन्न पक्षों से अभिव्यक्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृति में मनुष्य के व्यवहृत आंतरिक और बाह्य सभी तत्व समाविष्ट होते हैं। जहां तक भारतीय दर्शन का प्रश्न है इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है मानव जीवन के लगभग सभी संदर्भों को समाविष्ट कर भारतीय दार्शनिक चिंतन आमतौर पर आदर्शमूलक होता है।

मानव जीवन की परंपरा विकास और ह्रास का इतिवृत्त मात्र नहीं वह तो मानव जीवन के चिंतन,जीवन दृष्टि तथा रागात्मक विस्तार का एक ऐसा संयोजन है जो जीवन को ऊर्ध्वतर और सुंदरतर बना सकता है। तात्पर्य यह की परंपरा के अंतर्निहित तत्व भिन्न-भिन्न युगों में स्थिति ही नहीं रखते। उन्हें अनेक प्रयोगों की अग्निपरीक्षा भी पार करनी होती है। इन प्रयोग रूपों में सत्य का युगसीमित अंश भी रहता है और युगनिरपेक्ष सर्वकालीन अंश भी। उन्हें वहन कर लाने वाली जीवन पद्धति युगसापेक्ष हो सकती है किंतु इससे तत्वगत मान्यता में कोई फर्क नहीं पड़ता है। वैसे ही जैसे आभूषणों के रूपांतरण के कारण स्वर्ण की शुद्धता में कोई अंतर नहीं पड़ता। स्वाभाविक सी बात है कि युगों व्यतीत हो जाने के बाद भी विश्व बंधुत्व, पञ्चशील, सह-अस्तित्व, शांति आदि शब्दों में अंतर्निहित परंपरा हमारे जीवनमूल्यों की परिचायक है।

एक क्षेत्र विज्ञान का भी है वह विज्ञान जिसने हमें अपने परंपरागत जीवन मूल्यों के उपयोग के लिए और भी विस्तृत क्षेत्र और विराट मनुष्य परिवार दिया है। आज यदि हम परंपरा के बाहरी और युगसापेक्ष रूपों में अपने आप को बंधक न बना लें तो हमारे दर्शन, साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान सभी मानव समष्टि को समृद्ध करने को तत्पर रहेंगे।

यद्यपि संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज एक देश से दूसरे देश में परिवर्तित होती रहती है इसका विकास तत्कालीन सामाजिक अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में होने वाली ऐतिहासिक एवं ज्ञान संबंधी प्रक्रिया एवं प्रगति पर भी आधारित होता है।

भौगोलिक दृष्टि से यद्यपि भारत विविधताओं का देश है किंतु सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व पुरातन काल से है। भारत भले ही अनेक धर्मों संप्रदायों, मतों और पृथक् आस्थाओं और विश्वासों का देश है किंतु इसका सांस्कृतिक समुच्चय सदा से विलक्षण रहा है।

यहां एक परिचर्चा संस्कृति के एक मौलिक तत्व धार्मिक विश्वास और उसकी अभिव्यक्ति के संदर्भ में भी की जा सकती है।जब भी हम धार्मिक तत्व की बात करते हैं तो बहुत आवश्यक हो जाता है कि समाज में रहने और धार्मिक पहचान रखने वाले व्यक्ति के प्रति हमारा सम्मानभाव हो तथा उस धर्म के आवश्यक तत्व से हम परिचित हों और उसके प्रति सहिष्णुता का भाव रखें जिससे अंतर्धार्मिक विश्वासों की बात संभव हो सके जिन्हें हम अंतर्सांस्कृतिक वार्तालाप कह सकते हैं। भारत का सांस्कृतिक समुच्चय सदा से ही विलक्षण रहा है। इसका कारण यही है की भौगोलिक दृष्टि से भारत भले विविधताओं का देश हो किंतु सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका प्रभाव तो पुरातन काल से ही है।

संस्कृति का एक महत्वपूर्ण लक्षण उसका सन्चयी होना है। संस्कृति में जो भी ज्ञान शामिल होते हैं वे विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते हैं। जीवन पद्धति के रूप में, वैचारिक दर्शन के रूप में, साथ ही सामाजिक क्रियाकलापों में उसी समष्टिवादी दृष्टि की अभिव्यञ्जना होती है। संस्कृति वस्तुत: जब विभिन्न समूहों

द्वारा परस्पर व्यवहृत होती है तो आपस में विभाजित होती है और विभिन्न संस्कृतियों के लोग अपनी-अपनी संस्कृति का प्रभाव एक-दूसरे पर छोड़ते हैं अर्थात् एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। विश्व जैसे-जैसे वैश्विक ग्राम्य के रूप में परिवर्तित हो रहा है हम अधिक व्यापक वैश्विक स्तर पर जी रहे हैं। आज जीने और सोचने का एक ही तरीका नहीं माना जा सकता और एक ही मार्ग को सत्य नहीं माना जा सकता। आज विभिन्न देशों का सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व संभव है तथा विभिन्न संस्कृतियों और विश्वासों का सह अस्तित्व आज की आवश्यकता भी है। यह जो पीढ़ी दर पीढ़ी का हस्तांतरण है इस नैरंतर्य में ही संस्कृति का अस्तित्व निहित है तथा इसकी प्रवृत्ति इसके विकास को गति प्रदान करने के साथ ही नवीन आदर्शों के जन्म का भी कारण बनती है। यदि सभ्यता के संदर्भ में विचार करते हुए इसे हम हमारी भौतिक प्रगति में सहायक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक कारक समझ सकते हैं तो संस्कृति हर युग में सभ्यता के परिवर्तित होते स्वरूप की, उपयोगिता के मूल्यांकन का सशक्त प्रतिमान होती है। किंतु इतना स्पष्ट है कि सांस्कृतिक मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव सभ्यता की दिशा और उसके स्वरूप पर पड़ता है क्योंकि जो सभ्यता इन मूल्यों के अनुरूप होती है वही समाज द्वारा ग्राह्य होती है और अंततः मान्यता प्राप्त कर पाती है।

वस्तुतः, सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आयोजित होना संस्कृति की एक अपरिहार्य विशेषता है। तात्पर्य यह है कि यह प्राकृतिक नहीं अपितु इसका उन संस्कारों से संबंध है जो हमारी परंपरा और सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन हैं।

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।'

जब भारत ने इस मंत्र का उद्घोष किया था तो इसका संदेश बहुत स्पष्ट था।

'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा भी तो इसी के प्रतिफलन का परिणाम था।

संपर्क में आने वाली विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।वे संपर्क में आती है तो स्वाभाविक रूप से उनमें सहयोग अथवा असहयोग की प्रक्रिया की उद्भावना होती है। किंतु, इसका उद्देश्य परस्पर की विषमता को समाप्त कर समता की स्थापना ही होता है। जब भी संस्कृतियों के बीच सहयोग की संभावना होती है तो उनमें आत्मसातीकरण की प्रवृत्ति होती है अन्यथा विरोध और संघर्ष की प्रवृत्तियां प्रभावी होती हैं।

संस्कृति के संदर्भ में ही एक और महत्वपूर्ण शब्द आता है 'परंपरा'। प्रसंग और परिस्थितियों के अनुसार परंपरा की परिधि भी बदलती रहती है। बदलते परिवेश और नवीन आवश्यकताओं के दबाव के कारण परंपराएं अपना अनुकूलन करती हैं एक ही स्रोत से उपजी छोटी-बड़ी समानांतर किंतु अलग-अलग दिशाओं में बहने वाली। विभिन्न स्रोतों से उपजी लेकिन ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में एक दूसरे से जुड़ जाने वाली सहयोगी और प्रतिस्पर्धी परंपराओं के अंतर्संबंध भी इन कारणों से प्रभावित होते, बनते और बिगड़ते हैं।

विपरीत उद्देश्यों से प्रेरित हुआ समाज आज परस्पर विरोधी दिशाओं में जाता प्रतीत होता है। विज्ञान और प्रविधि की विस्मयकारी प्रगति,देशों का बढ़ना, आर्थिक, राजनीतिक अंतरावलंबन और इलेक्ट्रॉनिकी द्वारा जनित जनसंचार ने प्रांतों के बीच की दूरियों को नगण्य कर दिया और संस्कृति के कुछ पक्षों को एकरूपता दी है। देखा जाए तो सांस्कृतिक प्रतिमान स्वयं में परिवर्तनशील होते हैं। समाज की परिस्थिति में परिवर्तन की शाश्वत प्रक्रिया प्रतिमान को प्रभावित करती है। वस्तुतः, सामाजिक विकास की प्रक्रिया सांस्कृतिक प्रतिमानों के परिवर्तन की प्रक्रिया है। ऐसे में क्या हम स्वीकार करें कि हम विश्व संस्कृति की दिशा में अग्रसर हैं? किंतु वास्तविकता यह है कि सांस्कृतिक चेतना अब तक इतिहास में इतनी सजग कभी परिलक्षित नहीं हुई थी। इसको हम एक प्रकार से असुरक्षा की भावना का प्रतिफलन भी मान सकते हैं। 'आ नो भद्राः...' की नीति तो हमारी थी किंतु एक नीति और भी थी जो इसी परिवेश में पनप रही थी जिसमें जानबूझकर किसी संस्कृति में दूसरी संस्कृति को प्रायोजित तरीके से आरोपित कर दिया जाता है। जिस संस्कृति पर आरोपण होता है वह कम शक्तिशाली अथवा दुर्बल भी हो सकती है इसे ही सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की संज्ञा दी गई।

सारे विश्व से अच्छे विचारों के आमंत्रण की जो अवधारणा भारत में सकारात्मक सांस्कृतिक समन्वय की भावना की पृष्ठभूमि पर रखी गई थी नब्बे के दशक में भूमंडलीकरण का नवीन कलेवर धारण कर हमारे समक्ष आई और संस्कृति चिंतन के क्षेत्र में एक बड़ी बहस को प्रश्रय मिल गया कि इस तरह तो संभव है कि संस्कृति के क्षेत्र पर एकतरफा प्रभुत्व कायम हो जाए और जिस भूमंडलीकरण को सांस्कृतिक समरूपता का वाहक कहकर एक वर्ग अभिव्यक्त करता है वस्तुतः यह उस अवधारणा को सरल बना कर अभिव्यक्त करने का एक सरल उपक्रम मात्र हो और इस तरह अभिव्यक्ति देने से वह उसके संपूर्ण स्वरूप को प्रकाशित ही न करता हो अथवा आंशिक रूप से ही अभिव्यक्त करता हो।

इस बीच कुछ विशेष अभिवृत्तियाँ समकालीन वैश्विक संदर्भ में कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त हो रही हैं कि अपनी परंपराओं के प्रति लोगों का मोह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। भूमंडलीकृत होते विश्व में परंपराओं के प्रति आकर्षण संस्कृति का ही अपरिहार्य अंग है किंतु कहीं यह भविष्य की व्यवहारिक समस्याओं की ओर संकेत नहीं कर रहा है? आगे आने वाले समय में अपने आप में एक बड़ी चुनौती होगी 'परंपरा और संस्कृति को क्षत-विक्षत होने से बचाते हुए प्रगति पथ पर बढ़ना'।

यदि हम परंपरा और उससे अनुप्राणित संस्कृति की बात करें तो वह मानव के सामूहिक अस्तित्व का अविभाज्य अंग है। परंपरा से कटना किसी भी व्यक्ति के लिए धुरीहीनता की स्थिति को जन्म देता है। विकास के संदर्भ में परंपरा के त्याग की आवश्यकता की बात मन में जैसे सोचना भी भयप्रद है।

बहुत से समाज अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अधिक जागरूक हो गए हैं विकास की प्रक्रिया की हर असफलता ने उन्हें परंपरा की याद दिलाई और उसकी ओर लौटने की प्रेरणा दी समाज की अंतर्क्रियाओं और प्रवृत्तियों में भी हम कई समूह खतरे के संकेत पाते

हैं क्या देश की सशक्त सांस्कृतिक धारा उन्हें आत्मसात कर उनकी स्वतंत्र सांस्कृतिक आत्मछवि नष्ट कर देगी। रक्षात्मक प्रतिक्रिया में छोटे समूह आक्रामक तरीके से अपनी अस्मिता बचाने में तत्पर हो जाते हैं और इस तरह सांस्कृतिक संघर्ष का जन्म होता 3

मनुष्य अपनी प्रगतिशीलता के कारण अपनी बुद्धि के प्रयोग से अपनी चारों की परिस्थितियों को उन्नत करता चलता है। एक जीवन पद्धति रीति रिवाज, रहन-सहन, आचार विचार नवीन अनुसंधान और आविष्कार जिससे मनुष्य पशु स्तर से ऊपर उठ मनुष्यता की ओर ऊर्ध्वगमन करता है। यदि सभ्यता मनुष्य की भौतिक प्रगति की सूचक है तो संस्कृति व्यक्ति की विचारधारा और उसकी मानसिकता की परिचायक होती है। इस विकास के क्रम में मनुष्य अपना जो विकास करता है वह सभी तत्व संस्कृति में समाविष्ट होते चलते हैं। धर्म तथा दर्शन जो संस्कृति के अपरिहार्य तत्व है संस्कृति में ही समाविष्ट होते हैं। धर्म दर्शन के ये तत्व हमारी रीति रिवाज, मान्यताओं,परंपराओं और जीवन के विभिन्न पक्षों से अभिव्यक्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृति में मनुष्य के व्यवहृत आंतरिक और बाह्य सभी तत्व समाविष्ट होते हैं। जहां तक भारतीय दर्शन का प्रश्न है इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है मानव जीवन के लगभग सभी संदर्भों को समाविष्ट कर भारतीय दार्शनिक चिंतन आमतौर पर आदर्शमूलक होता है। इस आदर्शमूलकता के कारण ही इसमें ऊर्ध्वगामिता, शुभता, पुण्य, उचित और समीचीनता की बातें अर्थपूर्ण हो जाती हैं। ध्यातव्य है कि भारत में दर्शन का उदय किसी बौद्धिक चिंतन की पिपासा के शमन की अपेक्षा दुःख निवृत्ति के उद्देश्य को सामने रखकर अधिक हुआ। तात्पर्य यह है कि भारतीय दर्शन जीवन से जुड़ा हुआ एक व्यवहारिक दर्शन है और इसमें चरम पुरुषार्थ के रूप में मोक्ष को स्वीकार करने की पीछे हेतु यही था कि मनुष्य जिन व्यवहारिक समस्याओं से जूझ रहा है उससे उसको आत्यंतिक निवृत्ति प्राप्त हो जाए।

कर्म-पुनर्जन्म की श्रृंखला के कारण मनुष्य का इस लोक में अस्तित्व एक शाश्वत तथ्य है। वर्तमान जीवन उस अनादि अनंत श्रृंखला का एक क्षणिक अंश मात्र है इसलिए अपने उद्देश्यों की पूर्ति में किसी अधैर्य या भ्रष्टाचार का कोई स्थान नहीं है और जीवन के प्रति दुःखों के लिए भी एक गंभीर शांत और आश्वस्त दृष्टिकोण हम अपना पाते हैं। मनुष्य के जीवन में काम पूर्ति अथवा धन प्राप्ति भी करनी हो तो यह किसी भी प्रकार से संकोचजनक अथवा लज्जास्पद नहीं है क्योंकि पुरुषार्थों के माध्यम से उसका विधिसम्मत मार्ग प्रशस्त किया गया है। यह सभी चार पुरुषार्थों में समाविष्ट है लेकिन इसके लिए अंधाधुंध या गला काट प्रतिस्पर्धा या अधीर शीघ्रता की कदापि आवश्यकता नहीं है और ये सारी बातें परिपक्व दृष्टिकोण के कारण ही संभव हो पायी हैं।

भारतीय दर्शन के अंतर्गत सभी संप्रदायों ने मानव जीवन से जुड़ी हुई अंतर्द्वंद से परिपूर्ण विभिन्न समस्याओं का अपने-अपने दृष्टिकोण से हल प्रस्तुत किया है जो मनुष्य की व्यवहारिक समस्याओं से लेकर विश्व शांति तक की समस्याओं का समीचीन समाधान प्रस्तुत करता है।

भारतीय दर्शन में जैनमत अहिंसा के विशेष व्यवहार पर बल देता है। मनसा, वाचा,कर्मणा अहिंसा की पराकाष्ठा यदि देखनी हो तो जैन दर्शन में सहज स्वाभाविक रूप से देखी जा सकती है। इनके ज्ञानमीमांसीय सिद्धांत के अंतर्गत स्याद्वाद पदार्थों को जानने की दृष्टि है। जैन धर्म दर्शन की स्याद्वादरूपी ज्ञानमीमांसीय दृष्टि मनुष्य को अंतिम सत्य तक पहुंचने के लिए मार्गदर्शक का काम करती है जिसके अनुसार सभी व्यक्ति किसी वस्तु के कुछ ही धर्म को जान सकते हैं उसके सभी धर्मो को नहीं जान सकते। इसका तात्पर्य यही हुआ कि इस संसार में तत्व को देखने के विभिन्न प्रकार हैं और वह सभी दृष्टियां यद्यपि सही है किंतु आंशिक है। हम किसी वस्तु के आंशिक स्वरूप को ही समझ या ग्रहण कर सकते हैं इस वास्तविकता को ग्रहण न कर पाने के कारण ही आपसी मतभेद और संघर्ष को स्थान मिलता है।[4]

बौद्ध दर्शन में दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा मध्यम मार्ग अर्थात चतुर्थ आर्य सत्य के अंतर्गत अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया गया है। मध्यम मार्ग अपने आप में एक संतुलित और समावेशी दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है यानी हमें किसी भी प्रकार की अतिवादिता से बचना चाहिए और साधना पथ भी तभी सफलीभूत होता है जब हम भोग और अनावश्यक शारीरिक कष्ट की अपेक्षा एक संतुलित और सर्व समावेशी दृष्टि का आश्रय लेते हुए अपने पथ पर अग्रसर होते हैं।[5]

इस सर्व समावेशी दृष्टि का बीज हमें वैदिक काल में ही प्राप्त हो जाता है जब कहा जाता है –

'एकं सद् विप्राः बहुधा वदंति'[6]

सत्य तो अनेक है ज्ञानी उसे अलग अलग तरीके से अलग-अलग प्रकारों से बताते और व्याख्यायित करते हैं।

भारतीय वाङ्मय में प्रस्थानत्रयी के अंतर्गत श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय विचारधारा का एक लोकप्रिय दार्शनिक,धार्मिक और नैतिक काव्य है। गीता वस्तुतः नैतिक समस्या पर विचार करती है जो आज के संदर्भों में अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासङ्गिक है। एक तो यह युद्ध की पृष्ठभूमि में प्रश्न का चयन करती हैं जहां कुरुक्षेत्र के मैदान में पांडव और कौरव पक्षों की सेनायें आमने सामने खड़ी हैं और युद्ध प्रारंभ होने के पूर्व विपक्ष पर दृष्टिपात करने पर अर्जुन को मोह हो जाता है। इसी प्रसंग में कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया है जिससे उसे कर्तव्य बोध हो सके। प्राच्य और पाश्चात्य विचारकों ने गीता के संदर्भ में इसे मानव धर्म का ग्रंथ बताया है।भारतीय परंपरा महाभारत के युद्ध को धर्म युद्ध के रूप में देखती है और कुरुक्षेत्र के मैदान को धर्म क्षेत्र कहती है –'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः' ।[7]

युद्ध के रूपक को सामने रखकर गीता के उपदेश का मुख्य प्रयोजन जीवन की समस्या को हल करके न्यायोचित आचरण की प्रेरणा देना है व्यापक दृष्टि से विचार करने पर कुरुक्षेत्र का मैदान जीवन संग्राम एवं जीवन के अंतर्द्वंद को उपलब्ध करता है वस्तुतः, युद्ध क्षेत्र नैतिक परिस्थिति एवं मानसिक अंतर को व्यक्त करने वाला सर्वोत्तम रूप हो सकता है यहाँ अर्जुन मानव मात्र का प्रतिनिधि है जो जीवन संग्राम में किंकर्त्तव्यविमूढ़ है और अपने कर्तव्य अकर्तव्य के निर्णय का शिकार है। यहां उल्लेखनीय है कि हर मनुष्य के जीवन में अक्सर ऐसी

परिस्थितियां आती हैं जब वह कर्तव्य -अकर्तव्य का निर्णय करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। ऐसी स्थिति में वह एक ऐसे ज्ञानी गुरु की आवश्यकता अनुभव करता है जो सत्य का ज्ञान कराए। ऐसे ही ज्ञानी गुरु हैं योगीराज श्रीकृष्ण जो अर्जुन के माध्यम से मानव मात्र को कर्तव्य का ज्ञान कराते हैं। वह अर्जुन के माध्यम से मानव मात्र को सावधान करते हैं कि वह क्षणिक आवेश में बहकर कर्तव्यच्युत न हो जाए। यह भी स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक हित की तुलना में वैयक्तिक कल्याण गौड़ है। वास्तव में श्री ष्ण द्वारा अर्जुन के माध्यम से मानव मात्र को दिया गया उपदेश सर्वकालिक है, सार्वदेशिक है। कोई भी मनुष्य जो स्वयं को कर्मविचिकित्सारूपी धर्म संकट में पाता है श्रीमद्भगवद्गीता से प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर कर्तव्य-ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

वैदिक युग से ही मानव सारी चेतना का केंद्र बिंदु रहा है इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि भारत में दर्शन, धर्म और नैतिकता कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं रहे। धर्म अनिवार्यतया मानव केंद्रित होता है। भारतीय दर्शन ने अनेक धार्मिक मूल्य स्वीकार किए जिसमें मानव को महत्व दिया गया। साथ ही साथ मानव पर समाज को और समाज पर राष्ट्र की सर्वोपरिता को सहज रूप में स्वीकार किया गया है।

अद्वैत दर्शन अ-द्वैत इसलिए कहा गया है कि यह दर्शन किसी भेद को अंततः स्वीकार नहीं करता। वह भेद चाहे ब्रह्म और जीव के बीच का हो या जीव और जीव के बीच का यदि जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है तो फिर संसार के सभी चर-अचर उसी ब्रह्म की ही अभिव्यक्तियां हैं तो उनमें संघर्ष के लिए स्थान कहाँ रह जाता है। वह परब्रह्म सत् रूपी परमात्मा अद्वैत रूप में तो ब्रह्म स्वरूप है परंतु द्वैत रूप में अवतार रूप धारण कर सगुण रूप में अभिव्यक्त होता है। मानव जातियाँ उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव ईसा और अल्लाह ने जाने कितने ही नाम से विभूषित करती है। छंदोग्योपनिषद में तत्व संबंधी यह दृष्टांत आता है कि पुत्र श्वेतकेतु के प्रश्न पूछे जाने पर पिता आरुणि उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार नमक को जल में मिला देने पर वह नमक उस जल में ही लीन हो जाता है तथा वह नमक हमारे स्पर्श, स्वाद से ही हमारे अनुभव में आता है। उसी प्रकार सत्य का स्वरूप भी हमारे अनुभव का विषय होता है और उसको हम अलग-अलग स्वरूप में अभिव्यक्ति देते हैं।

यहां आलेख के विचारणीय घटक धर्म, नीति एवं संस्कृति हैं इनको परिभाषित करने पर हम पाते हैं कि इसके दो पक्ष हैं- जानना और बोध के अनुरूप कर्म का संपादन करना। धर्म, नीति एवं संस्कृति बोधगम्य में होकर ही हमारे आचरण में उतरती है। यह संभव नहीं है यह बोधगम्य हो किंतु आचरणीय न हो या आचरण के अनुकूल हो किंतु वह बोधगम्य न हो। इसका संबंध अनुभूति से है परंतु यह अनुभूति व्यष्टि कि नहीं समष्टि की है। धर्म नीति एवं संस्कृति को परिभाषित करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है-

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः

धीर्विद्या सत्मक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम।।[8]

देखा जाए तो धर्म, नीति व संस्कृति का बोधात्मक पक्ष एवं अवबोध इसका ज्ञानमीमांसीय पक्ष है और यह अपने विविध विषयों से जीव, जगत, प्रकृति, आत्मा और ब्रह्म के समस्त रहस्यों और समस्याओं को उद्घाटित करता है। दर्शन के विषय आध्यात्मिक और आधिभौतिक होते हैं साथ ही यह ज्ञानमीमांसा के भी विषय हैं। इन विषयों के प्रति जिज्ञासा और जिज्ञासा की पूर्ति ज्ञानमीमांसा की कसौटियों पर की जाती पर की जाती है जिनका आधार वैज्ञानिक अनुभव होता है ।

ज्ञान अपने को मूल्य के रूप में ही व्यक्त करता है जो धर्म की तरफ उन्मुख होता है। धर्म के प्रति सहमति नीति होती है जिसके चरम पर पहुंचना ही संस्कृति है। धर्म, नीति और संस्कृति के यज्ञ का बोध आज की मांग और दिन है जो मानवतावाद व सनातन धर्म को और मजबूत करता है इसका ज्ञानमीमांसीय चिंतन इसके प्रति अगाध विश्वास व प्रदान करता है। उसका जीवन, पद्धति व व्यावहारिक आचरण आदर्शात्मक है। अनुभूति अंतर्वैयक्तिक संदर्भों के विविध आयामों से युक्त होती है। मूल्यों के प्रति सहभागिता का प्रदर्शन इसमें सिर्फ व्यष्टि को न समाविष्ट कर संपूर्ण सृष्टि का समाहार करता है और यही इसकी व्यापकता है।

संस्कृति की मानवीय चेतना की मूल्यान्वेषणात्मक प्रवृत्ति का सामाजिक व्यवहार में आना ही नीति है जिसकी पुनरावृत्ति धर्म है। इसी रूप में संस्कृति को मानवोचित लक्ष्य या पुरुषार्थ के रूप में परिभाषित किया जाता है।

हमारी संस्कृति भारतीयता है और यह एक विशेष प्रकार की जीवन दृष्टि है जो हमारे प्रत्येक विचार में उपस्थित रहती है। किसी भी भाव का ज्ञानात्मक पक्ष अपने को समय के साथ परिभाषित करता है ताकि उसकी व्यवहारिक उपयोगिता बनी रहे। समय के अनुरूप ज्ञान का स्वरूप सदैव विश्व को नवीन दृष्टि प्रदान करता है। भारतीयता को रेखाङ्कित करते हुए विश्वपटल पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराना ही आज हमारा युगधर्म है।

संदर्भः

1. ऋग्वेद, 1/89/1
2. महोपनिषद्, 4/71
3. परंपरा, इतिहासबोध और संस्कृति, श्यामाचरण दुबे पृ.19, प्र. राधा ष्ण,
4. भारतीय दर्शनः आलोचन और अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा,पृ.32 प्र. मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय संस्करण
5. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.123
6. ऋग्वेद, 1/164/46
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 1/1
8. मनुस्मृति, 6/92

❖

सहायक आचार्या, दर्शन एवं धर्म विभाग

काशी हिंदू विश्वविद्यालय

ई मेल: shrutimisra2012@gmail.com

हिंदी गीतिकाव्य परंपरा और तुलसीदास

प्रो. अनिल राय

हिंदी गीतिकाव्य परंपरा का सर्वप्रथम प्रारूप 'गीत-गोविंद' के माध्यम से कवि विद्यापति में मिलता है। वीरगाथा काल की रचनाओं में मुख्यतः 'पृथ्वीराजरासो' और 'बीसलदेवरासो' एवं 'आल्हखंड' में वीर- गीतात्मक स्वर मिलते हैं। पर वास्तव में हिंदी- गीतिकाव्य परंपरा का प्रारंभ जयदेव के अनुकरण पर रचना करने वाले मैथिल- कोकिल विद्यापति से ही होता है। विद्यापति में हमें रागात्मक आवेश की अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण मिलती है। उनकी पदावली इसका प्रज्ज्वलंत उदाहरण है। हृदय की अवस्था-जन्यविवशता का जितनी कोमलता के साथ वर्णन विद्यापति ने किया है,वह सूर, मीरा और गोस्वामी तुलसीदास की पूर्वपीठिका है।

विद्यापति के उपरांत, गीतिकाव्य भक्तिकाल में आकर अपने प्राचीन स्वरूप के अनुसार पूर्ण विकास को प्राप्त हुआ। समूचा भक्तिकालीन साहित्य प्रगीत काव्य का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन कवियों ने आश्रयदाता की वंदना न कर अपने हृदय के उद्गारों को व्यक्त करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। भक्तिकाल में निर्गुण एवं सगुण दोनों ही धाराओं में प्रगीतात्मक स्वर मिलता है।

हिंदी में 'गीति', 'गीत', 'पद' तथा 'प्रगीत' प्रायः पर्यायवाची के रूप में लिए जाते हैं। कतिपय विद्वानों ने गीति, गीत, पद अथवा प्रगीत को क्रमशः परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी के 'Lyric', 'Sonnet', और 'Song' का हिंदी अनुवाद बताया है।

वास्तव में गीतिकाव्य की परंपरा का श्रेय पाश्चात्य साहित्यशास्त्र को ही देना प्रायः असंगत सा लगता है क्योंकि भारतीय वांग्मय में वैदिक कालीन मंत्रों के उच्चारण में 'गीत' का प्रयोग किया जाता रहा है। बहुत से वैदिक मंत्र ऐसे भी हैं जिनका उच्चारण स्वरारोह और अवरोह की बिना नहीं हो सकता है। सामवेद इसका प्रज्जवलंत प्रमाण है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में गीति का स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ता है। अतः भारतीय साहित्य में प्रगीत की परंपरा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र से कम प्राचीन नहीं है।यहाँ गीति या पदपरंपरा का विवेचन करने से पूर्व 'गीत' क्या है; संक्षिप्त चर्चा कर लेना प्रायः अप्रासंगिक न होगा। डॉ. वचनदेव कुमार ने तो 'ब्रह्म' की परिभाषा में लागू होने वाले 'नेति-नेति' शब्द को गीत या पद की परिभाषा के लिए भी प्रसंगतः ग्रहण किया है। वास्तव में साहित्य के बदलते प्रतिमानों के कारण यह कहना असंगत नहीं लगता। फिर भी पाश्चात्य एवं प्राच्य विद्वानों ने गीति की जो परिभाषाएँ दी हैं, उनपर विचार करना प्रसंगवश आवश्यक हो जाता है।

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के 14वें संस्करण (पृ. 532) में लिखा है- "गीतकाव्य वही है जो संगीत संबंधी बाजों के साथ गाया जाता है, अथवा गाने योग्य होता है। गीतकाव्य जीवन के गूढ़तमरहस्यों को कला के माध्यम से व्यक्त करता है।"

पाश्चात्य विद्वान रश्किनने लिखा है "गीतिकाव्यकवि द्वारा उसकी अपनी ही अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है।"

जोसेफ टी. शिप्ले ने 'डिक्शनरी ऑफ लिटरेरी टर्म्स' में लिखा है- "सामान्यत: गीति एक लघु वैयक्तिक कविता है।"

पाश्चात्य विद्वानों की भाँति भारतीय विद्वानों ने भी गीति या प्रगीत की परिभाषा देने का प्रयास किया है। संस्कृत साहित्याचार्यों में भरत और मम्मट के अतिरिक्त आचार्य विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' में इसकी परिभाषा परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से मिलती है।

महादेवी वर्मा ने गीत की विनम्र परिभाषा देते हुए लिखा है-" साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। "(महादेवी का विवेचनात्मक गद्य)

इस प्रकार इन कतिपय परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि गीत में सामान्यतः भावों की अतिशयता होती है। हर गीत में एक मुख्य विचार या भाव होता है। उसमें उसका वैयक्तिक रूप में अभिव्यंजन रहता है। इन भावों की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति ही मूलतः गीत है; मानव मन की सुखदुः खात्मक अनुभूतियों से ही क्रमशः इसका निर्माण और प्रसार होता है।

भारतीय साहित्य में प्रगीत की परंपरा बहुत प्राचीन है। इसकी अविरल धारा वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक हिंदी साहित्य के

छायावाद और प्रगतिवादी कविताओं तक प्रवाहित होती रही है।

वैदिक काल में गीतिकाव्य का स्रोत ऋग्वेदऔर सामवेद में मिलता है। इसी प्रकार वैदिक साहित्य से होती हुई गीत की यह धारा संस्कृत काव्य में आई। संस्कृत महाकाव्यों के क्षेत्र में आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण में पर्याप्त सांगीतिक छंदों का सृजन हुआ है। इसी प्रकार महाकवि कालिदास प्रणीत 'मेघदूत'में भी विरही यक्ष की संवेदनात्मक अनुभूतियों में पर्याप्त मार्मिकता और संगीतात्मकता है। इसी परंपरा में वेदांतदेशिक, वामनभट्ट, रूपगोस्वामी आदि के संदेशों में आत्माभिव्यंजन के अतिरिक्त अन्य गीति तत्त्व समाहित हैं।

संस्कृत में स्तोत्र साहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है, जिसमें उनके रचयिताओं ने अपनी दीनता और विनम्रता व्यक्त करते हुए अपने आराध्य की कृपा प्राप्त करने के लिए आत्माभिव्यंजना की है। इस शैली में रचित ' शिवमहिम्नस्तोत्र', मयूर भट्ट का 'सूर्य शतक', शंकराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी', पंडितराज जगन्नाथ की 'करुणालहरी', 'गंगालहरी', 'अमृत लहरी' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं।

संस्कृत की गेयकाव्य की सम्पूर्ण रचनाओं में अभिनव जयदेव का 'गीतगोविंद' सर्वाधिक लोकप्रिय और सुमधुर सिद्ध हुआ। इसमें राग-रागनियों के माध्यम से राधा- कृष्ण के प्रेम विलास का स्वच्छंद उल्लेख किया गया है जो अपूर्व और अनुकरणीय रहा है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा में पालि साहित्य के अंतर्गत भी कतिपय ऐसे स्थल पाये जाते हैं, जहां गीतात्मक माधुरी फूटती दिखलाई देती है। इस प्रकार के स्थलों में सुत्तपिटक ,दीघनिकाय, धम्मपद, थेर एवं थेरी गाथाओं का नाम लिया जा सकता है। पाश्चात्य विद्वान प्रो. विंटरनित्ज ने इन गाथाओं को भारतीय- साहित्य की सर्वोत्तम गीति कविताओं के समस्तरीय माना है।

पालि- साहित्य के अतिरिक्त प्राकृत साहित्य में गीति तत्त्वों की बड़ी सुंदर नियोजना मिलती है। प्राकृत गीतों का प्रथम उपलब्ध रूप 'गाथासप्तशती' और 'वज्जालग्ग' नामक संग्रह- ग्रन्थ हैं। इसमें ग्रामवधूटियों, अहीर ललनाओं और कृषक पत्नियों से संबंधित उक्तियां हृदयस्पर्शिनी हैं ।

प्राकृत साहित्य की भाँति ही अपभ्रंश साहित्य में भी गीतिकाव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। कालिदास के 'विक्रमोवर्शीय' नाटक के चौथे अंक में सोन्याद राजा पुरुरवा के मुख से अनेक अपभ्रंश पद्य सुनाई पड़ते हैं। स्वयंभू कृत 'पउमचरिउ'और पुष्पदन्त कृत 'जसहरचरिउ' के अनेक अंशों में आत्मनिवेदन और आत्माभिव्यंजना बड़े मार्मिक रूप में की गई है।

इस प्रकार इस संक्षिप्त पीठिका से आभास होता है कि गीतिकाव्य हिंदी साहित्य को विरासत में मिला था। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश गीतों से प्रभावित होकर मिथिला में विद्यापति तथा बंगाल के चंडीदास ने कृष्ण विषयक मधुर गीतों की रचना की, किन्तु विद्यापति और चंडीदास के गीतों के मूल भाव में अंतर है। विद्यापति उल्लास के कवि हैं , आनंद- भोग के कवि हैं, किन्तु चंडीदास विरहोच्छ्वासऔर दु:ख-यातना के कवि हैं। विद्यापति का एक उद्धरण देखिए

"छाँड़ु कन्हैया मोर आँचर रे

फाटत नय सारी।"

विद्यापति की पदावली में इस प्रकार के अनेक चित्र देखने को मिलेंगे।

हिंदी गीतिकाव्य परंपरा का सर्वप्रथम प्रारूप 'गीत- गोविंद' के माध्यम से कवि विद्यापति में मिलता है। वीरगाथा काल की रचनाओं में मुख्यत: 'पृथ्वीराजरासो' और 'बीसलदेवरासो'एवं 'आल्हखंड' में वीर- गीतात्मक स्वर मिलते हैं। पर वास्तव में हिंदी- गीतिकाव्य परंपरा का प्रारंभ जयदेव के अनुकरण पर रचना करने वाले मैथिल- कोकिल विद्यापति से ही होता है। विद्यापति में हमें रागात्मक आवेश की अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण मिलती है। उनकी पदावली इसका प्रज्ज्वलंत उदाहरण है। हृदय की अवस्था-जन्य विवशता का जितनी कोमलता के साथ वर्णन विद्यापति ने किया है,वह सूर, मीरा और गोस्वामी तुलसीदास की पूर्वपीठिका है।

विद्यापति के उपरांत, गीतिकाव्य भक्तिकाल में आकर अपने प्राचीन स्वरूप के अनुसार पूर्ण विकास को प्राप्त हुआ। समूचा भक्तिकालीन साहित्य प्रगीत काव्य का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन कवियों ने आश्रयदाता की वंदना न कर अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। भक्तिकाल में निर्गुण एवं सगुण दोनों ही धाराओं में प्रगीतात्मक स्वर मिलता है।

सगुण भक्त कवियों में सूर और तुलसी का काव्य तो गीतिकाव्य की दृष्टि से विशेष ख्यातिलब्ध है। मीरा एवं तुलसी ने क्रमश: पदावली, 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' आदि में गीतिकाव्यों की भिन्न- भिन्न शैलियों का समावेश किया।

सगुण (तुलसी आदि) एवं निर्गुण (कबीर आदि) कवियों की गीतात्मक रचनाओं में थोड़ी सी भिन्नता है।

कबीर की रचनाएँ; जिनमें संगीतात्मक मिलती है, वे मूलत: व्यंग्यात्मकय और खंडन- मंडनात्मक ही अधिक हैं । उनमें सहयोगी प्रवृत्तियों का भी समावेश है। साथ ही कबीर की रचनाओं में संगीतात्मकतामुख्यत: उनकी पदावली में ही मिलती है-

"दुलहिन गांवहुँ मंगल चार।

हम घरि आये हो राजा राम भरतार। ।टेक।।"

"झीनी- झीनी बीनी चदरिया" (क.ग्र.)

कबीर के पदों में 'टेक' का विशेष महत्त्व है। 'टेक' पूरे पद की केंद्रीय भूमि है। उन्होंने मूलत: अपने पदों में सामाजिक-दार्शनिक विषयों पर विचार किया है। जैसे-

"हरि जननी मैं बालिक तेरा।

काहे न अवगुन बकसहुँ मेरा।।" (क.ग्र.)

यहाँ यह कहना सर्वथा प्रासंगिक है कि कबीर के पद गीतिकाव्यगत तत्त्वों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनमें प्रायः गीतिकाव्य के ही तत्त्वों का समावेश है।

हिंदी गीतिकाव्य की परंपरा तो बहुत विस्तृत है, पर उसका यहाँ पूर्ण विवेचन, क्या आंशिक करना भी प्रासंगिक होगा।

हिंदी के निर्गुण कवियों में संगीतात्मक रचना करने वालों में कबीर, दादू, धरणीदास, रैदास और सुन्दरदास आदि प्रमुख हैं। सगुण भक्त कवियों में अष्टछाप एवं उससे इतर कवियों ने भी गीतिकाव्य की रचना की। यद्यपि रीतिकालीन धारा में कदाचित संगीत की यह धारा कुंद हो गयी, पर सर्वथा लुप्त नहीं हुई। बिहारी के दोहों और मतिराम तथा देव के अनेक छंदों में संगीतात्मकता देखी जा सकती है। इस प्रकार गीतिकाव्य की यह परंपरा हिंदी में आदि काल से लेकर अद्यतन प्रवाहित होती रही है।

यहाँ पर हम तुलसीदास और उनके 'विनयपत्रिका' का संगीतात्मक तत्त्वों की दृष्टि से विचार करेंगे।

गोस्वामी तुलसीदास भक्त कवि थे और सांसारिक विषय- वासनाओं से उन्मुक्त होकर ईश्वरानुराग में लीन और ईश्वर- गुणगान ही उनका ध्येय था। यद्यपि उनके द्वारा सृजित 'रामचरितमानस' और 'गीतावली' आदि रचनाओं में भी गीतिकाव्य की विशेषताएँ मिलती हैं; पर 'विनयपत्रिका' का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है। डॉ.वचनदेव कुमार ने अपने शोध- प्रबंध 'तुलसी के भक्त्यात्मक गीत' में लिखा है- "उनकी विनयपत्रिका तो भक्त्यात्मक गीतों का वह हिमालय है, जिसकी ऊँचाई को छू सकना शायद असंभव सा है। वेद से जो भक्त्यात्मक गीतों का प्रवाह चला वह मानों विनयपत्रिका में आकर पारावार का रूप धारण कर लेता है।"

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने लिखा है- 'शुद्ध गीतिकाव्य की संज्ञा उस अन्तर्वेदी उद्गार को प्रदान की गई है जो स्वयं रचनाकार की व्यक्तिगत विह्वलता की व्यंजना करते हैं और जिनमें अलौकिक भाव- सामान्य भूमि पर आकर पूर्णतः सहृदय संवेद्य हो जाता है।'

'विनयपत्रिका' एक ऐसी अंतरतम, कार्पण्यतम उद्गार है, जिसके लगभग एक- एक गीत में पारलौकिक अध्यात्म चिंतन के दिव्यलोक का निदर्शन होता है। कवि अपने आराध्य के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देना चाहता है। वह मन की मलीनता से आप्लावित चिट्ठे को भी प्रभु के समक्ष खोलकर तार- तार कर देता है।

गीतिकाव्य के तत्त्वों के आधार पर भी 'विनयपत्रिका' उत्कृष्ट काव्य कृति सिद्ध हुई है।

पाश्चात्य एवं प्राच्य विद्वानों ने दृष्टि भेद से गीतिकाव्य के आठ तत्त्व माने हैं, पर अधिकांश विद्वानों ने छह तत्त्व ही माने हैं।

१.संगीतात्मकता २.रागात्मकता और अनुभूति की एकता ३. आत्माभिव्यक्ति ४.संक्षिप्तता ५.जीवन की आंशिक अभिव्यक्ति ६. विविधता ७.मार्मिक अभिव्यंजना ८.भाषा- शैली।

'विनयपत्रिका' उत्तम प्रगीत काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। उसके पद स्थूल रूप से तीन वर्गों में रखे जा सकते हैं: स्तोत्रशैली के पद, छंद शैली के पद और टेकयुक्त गीत शैली के पद। प्रमुखतः गीत- शैली के पदों में ही 'विनयपत्रिका' का प्रकृत रूप और गौरव है। सम्पूर्ण कृति में प्रगीत अथवा गीतिकाव्य का उत्कर्ष पाया जाता है। गीति- तत्त्वों के आधार पर 'विनयपत्रिका' की रूपरेखा निम्न रूप में दी जा सकती है-

संगीतात्मकताः काव्य के द्वारा मानव भाव-सौंदर्य का बोध करता है, चित्रकला के द्वारा वह भावों को रंगों और रेखाओं से युक्त कर उसके आकार- रूप का आनंद लेता है। संगीत के अंतर्गत वह नाद और लय के द्वारा उन्हीं भावों के चांचल्य का कर्ण- सुख अनुभव करता है। काव्य में जो भाव मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं वही संगीत के स्पर्श से गतिमान होकर एक नया सौंदर्य प्रदान करते हैं। भावों का सर्वाधिक उद्रेक संगीत और काव्य के समन्वय में प्राप्त होता है। भाव और संगीत का बड़ा गहरा ताल्लुकात है।

संगीतात्मकता से मुख्य अभिप्रेत है- गेय। तुलसीदास कृत 'विनयपत्रिका' में सभी पद संगीतज्ञों द्वारा गाये जाते हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना असंगत न होगा कि तुलसी के गीत या पद संगीतज्ञ नहीं; साधारण जन भी जिन्हें स्वर के आरोह -अवरोह का ज्ञान नहीं है गा सकते हैं। अपने काव्य को प्रकृत्या संगीतात्मक होने के लिए तुलसी ने विनयपत्रिका में विभिन्न राग रागनियों का प्रयोग किया है। 'पत्रिका' में प्रयुक्त राग हैं- आसावरी, कल्याण, कान्हरा, केदार, जैतश्री, टोड़ी, धनाश्री, नट, वसंत, बिलावल, विहाग, भैरव, मलार, मारू,रामकली, ललित, विभास और सारंग तथा सोरठ आदि। इनमें परस्पर राग और ताल का निर्वाह किया गया है। गोस्वामी जी ने टेक और अंतरा का विशेष ध्यान दिया है, पर कहीं कहीं पर टेक के बाद 'अंतरायें' इतनी लंबी हो गयी है कि गायक को बड़ा श्रम- पूर्वक उनमें ताल और आरोह बिठना पड़ता है। जैसे विनयपत्रिका के 63वें पद में, इसका आभास मिलता है-

"मन इतनोई या तनु को परम फलु।

सब अँग- सुभग बिंदुमाधव- छवि, तजि सुभाव, अवलोकु एक पलु।।"

राग जैतश्री में लिखित इस पद में टेक के बाद वाली पंक्ति में विस्तार के कारण गायक को स्वर विस्तार का पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता। परंतु इसके ठीक विपरीत पद सं. 101 में देखिए, एक और अंतरा की उचित व्यवस्था से स्वर विस्तार को पर्याप्त अवकाश मिला है-

"जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।

काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे।।"

इसी प्रकार 'जाके प्रिय न राम वैदेही'/ 'कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो' आदि पदों में संगीतात्मकता और आत्मदैन्य अपनी पराकाष्ठा पर है समग्रतः विनयपत्रिका में संगीतात्मक पद ही अधिक हैं। बाधा- युक्त पदों की संख्या अत्यंत न्यून हो। इससे ग्रंथ में निहित संगीतात्मकता के गौरव को जरा भी ठेस नहीं पहुँचता। हृदयावेग एवं भावुकता के स्वाभाविक प्रवाह में तुलसी के हृदय से जिन पदों की रचना हुई है, वे सब आंतरिक संगीत की छटा से शोभित हैं।

रागात्मकता और अनुभूति की एकात्मकता: प्रगीत काव्य के लिए रागात्मक अनुभूति की इकाई और समत्व अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा प्रगीत की अंतर्धारा भावपूर्ण न रह पाएगी। मानव जीवन में व्यक्ति जो कुछ सोचता या विचार करता है वही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसकी अनुभूति होती है। अनुभूति अपने आप में इतनी भावात्मक है, कि उसे परिभाषित करना कठिन है।

रागात्मकता और अनुभूति का बड़ा सुंदर तादातम्य है। जब अनुभूति वैयक्तिकता की सीमा पार कर अन्यके प्रति सहजानुभूति का रूप धारण कर लेती है,तब वह राग- रूप में परिणत हो जाती है।

अनुभूति प्रगीत का प्राण है किंतु अनुभूति की तटस्थता और व्यक्ति की असंपृक्ति से उसे तीव्रता या त्वरा नहीं मिल पाती। इस प्रकार अनुभूति की उत्तेजनाहीन व्यवस्था में उत्कृष्ट गीति- रचना असम्भवप्राय हो जाती है। 'विनयपत्रिका' के अधिकांश पद समय-समय पर आवेग के क्षणों में लिखे गए हैं। विकल- हृदय कवि के भाव गीतों के माध्यम से फूट पड़े हैं। एक उदाहरण देखिये-

"कबहुँकअंब, अवसर पाइ।

मेरिऔ सुधिध्याइबी, कछु करुन- कथा- चलाइ।"

करुण- कथा के द्वारा अपनी दैन्यानुभूति का माँ (सीता) के सामने प्रकाशन करना ही कवि हृदय को अभिप्रेत है। वह सीधे- सीधे यह नहीं कह देता, कि हे माँ! जरा हम पर भी कृपा करो। इस पद में दैन्य भाव की चरम पराकाष्ठा है।

अनुभूति का एक रूप अपने को सर्वतोभावेन परमाराध्य के प्रति समर्पित कर देना भी है-

"जानकी- जीवन की बलि जैहौं।

चित कहै राम- सीय-पद परिहरि अबन कहूँ चली जैहौं।" (वि.प.)

अनुभूति की तीव्रता और एकनिष्ठ भावना के द्वारा इस पद में एक अपना अन्तर्निहित समत्व है। 'विनयपत्रिका' इस प्रकार के पदों से आकण्ठ भरा हुआ है। किंतु अनुभूति की एकता से यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि केवल एक ही प्रकार की अनुभूति की अभिव्यंजना होनी चाहिए। तुलसी को समाज और जीवन के विविध क्षेत्रों का अनुभव था।अनुभूति की एकात्मकता की भी प्रस्तावना वे विनयपत्रिका में इस प्रकार करते हैं; यदि किसी पद में राम, सीता, हनुमान या शिव की वंदना करते हैं तो अंत उसका पर्यवसान राग की एकनिष्ठ भक्ति में ही होता है।'विनयपत्रिका' का पहला ही पद ले लीजिए- 'माँगत तुलसीदास कर जोरे, बसहुँ राम- सिय मानस मोरे।' अंत में तुलसीदास कहते हैं- 'बसहुँ रामसिय मानस मोरे।' यही रागात्मकता और अनुभूति की एकता है। इसका इससे अच्छा उदाहरण 'विनयपत्रिका' के अलावा अन्यत्र मिलना प्राय: असंभव ही है। सचमुच यह काव्य भक्ति का ब्रह्मसूत्र ही है।

आत्माभिव्यक्ति: 'विनय पत्रिका' कलिकाल से पीड़ित तुलसी का आत्मनिवेदन है। वह विषयिनिष्ठ है और उसमें स्वानुभूति की अप्रतिम विवृति है।

रचनाकार अपनी प्रत्येक रचना में आत्माभिव्यक्ति का आधार लेकर चलता है। तुलसी ने कलियुग की पीड़ा से दु:खी होकर जन-प्रतिनिधि बनकर उससे मुक्ति के लिए आत्माभिव्यंजना की। उनकी आत्माभिव्यक्ति मूलत: भक्ति- समन्वित ही है। इसी कारण वे 'जाके प्रिय न राम- वैदेही', को 'कोटिबैरी- सम' त्याग देते हैं।

तुलसी ने अपने को महान पापी, पातकी आदि कहकर, अपने इष्ट को पाप- पुंजहारी कहा है-

"तू दयालु दीन हौं तू दानी हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तूँ पाप- पुंज-हारी।।" (वि.प.)

यह तो निर्विवाद है कि राम के अतिरिक्त तुलसी का और कोई नहीं। उसकी घोषणा वे स्थान- स्थान पर करते हैं-

"खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरे सों झूठ क्योंकहौंगो,

जानो सब ही के मन की।

करम-बचन-हिये,कहौं न कपट किये, ऐसी हठ जैसी गाँठि

पानी परेस न की" (वि.प.)

इस पद में कितनी बड़ी विवशता का प्रकाशन मिलता है- खोटा हूँ या खरा हूँ, जैसा भी हूँ आपकी ही कसम मैं आपका हूँ। यहाँ इस पंक्ति में 'रावरे सौं झूठ क्यों कहौंगो, जानो सबही के मन की' में आत्मसमर्पण के साथ- साथ भगवान की महिमा का वर्णन भी है।

दरअसल तुलसी के एकमात्र सहायक भी राम ही हैं। वे अन्य स्थानों से उपेक्षा पाकर राम से प्रश्न करते हैं-

"कहाँजाउँ, कासोंकहौ, कौन सुनै दीन की।

त्रिभुवनतुही गति सब अंगहीन की" (वि.प.)

इस पद में तुलसी के 'एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास' वाला भाव भी छलकता है। इस प्रकार तुलसी के आत्मक्रियात्मक अनेक पद मिलते हैं। कतिपय पदों में विषयासक्त कवि का मन भी बड़ा परेशान दिखाई देता है- "केसव! कहिनजाइकाकहिये।"

तुलसीदास आत्माभिव्यक्ति करते हुए उसमें अपने जीवन की आंशिक झाँकी भी प्रस्तुत करते हैं। 'विनय पत्रिका'में उन्होंने भले ही, अपने माँ- बाप का नाम नहीं दिया या संकेत नहीं किया,पर अपनी वंश या जाति का प्रकाशन करना वे नहीं भूलते-

"दियो सुकुल जनम, सरीर सुंदर, हेतु जो फल चारि को।

जो पाइ पंडित परमपद, पावत पुरारि-मुरारिको"

(पद 135)

इस पद में ब्राह्मण वंश में उनके जन्म लेने का प्रत्यक्ष प्रमाण समाहित है। राम नाम के प्रताप और भक्ति के कारण दृष्टि- विनोद के मध्य में तुलसी ने माता- पिता द्वारा त्याग ने और ब्रह्मा द्वारा विचित्र भाग्य लिपि बनाने का संकेत भी किया है-

'जननी-जनक तज्योजनमि, करम बिनु बिधि हुसृज्योअवडेरे।

मोहुँसो कोउ–कोउ कहत रामहिको, सो प्रसंग केहि केरे।।'

(पद 226)

माता– पिता द्वारा त्याग और बाल्य जीवन की करुण स्थितियों का संकेत कवि कृत कवितावली में भी एकाधिक स्थलों पर मिलता है।

राम का गुलाम रहने के कारण लोगों ने उनका नाम 'राम बोला' रख दिया है। उन्हें लोग नीच कहते हैं, किन्तु कवि को उसमें जरा भी लज्जा और संकोच का अनुभव नहीं होता है। (बेनीमाधव दास के मूल 'गोसाईं चरित' के अनुसार उनका एक नाम राम बोला भी था!) इसी तथ्य की सफल अभिव्यंजना हुए 'पत्रिका' में तुलसी ने लिखा–

"राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम,
कामय है, नाम द्वैहौकबहूँ कहतहौं।
रोटी–लूगा नीके राखै,आगेहूकी बेद भाखै,
भलो ह्वैहै तेरो, तातेआनँद लहत हौं"

राम और 'राम का गुलाम' भी विचित्र है। 'कभी वह राम नाम' कहता है, तब भी राम उस पर अपनी असीम अनुकम्पा जताते। मानस में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है–

"राम ते अधिक राम कर दासा।"

भक्तिपरक आत्मनिवेदन के सभी रूप विनयपत्रिका में मिलते हैं। तुलसी ने उभयरूप से भक्ति में दीनता का समाधान किया है। विनय के पद 118 में वे एक ओर अपने सामनदीन –मलीन संसार में किसी को नहीं समझते दूसरी ओर भगवान के समान कोई हित– कर्ता नहीं–

"माधव ! मो समान जग माहीं।
सब बिधिहीन, मलीन, दीन अति, लीन–बिषय कोउनाहीं" (वि.प.)

भक्तिपरक आत्मनिवेदन में भक्त कभी– कभी स्वयं भगवान को उपालम्भ देने लग जाता है। तुलसी आत्मनिवेदन की इस स्थिति तक अनेक स्थलों पर पहुँच गए हैं। 'विनयपत्रिका' के पद संख्या 112 और 113 में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है–

केसव ! कारन कौन गुसाईं।
जेहि अपराध असाध जानि मोहिंत जेउ अग्य की नाईं"
तथा
"माधव ! अब न देखहुँ केहि लेखे। (113)

यहाँ भावानुभूति की कितनी बड़ी विवशता है।

विविधता: प्रगीत कवि यद्यपि स्वानुभूति के चित्रण में अधिक तन्मय रहता है किंतु मनुष्य होने के नाते उसके प्रत्येक साँस से मानवता की पुकार रहनी चाहिए। यद्यपि समग्र 'विनयपत्रिका' में भक्ति की स्वच्छंद धारा प्रवाहित होती है, फिर भी उसके अधिकांश पदों में विभिन्न आराध्य देवों की स्तुतियाँ विभिन्न स्थलों पर मन की प्रकृतियों, जीव लोक की माया, 'कलि करनी' आदि के वर्णन में विषय वैविध्य है।

तुलसी केवल अपने पदों में आत्माभिव्यक्ति ही नहीं करते, बल्कि उनकी आत्माभिव्यक्ति में भी सारे समाज की पीड़ा समाई हुई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्पष्ट लिखा है– "तुलसी की अनुभूति ऐसी नहीं जो एकदम सबसे न्यारी हो। (वे) अपने ही तक दृष्टि रखने वाले भक्त न थे, संसार को भी दृष्टि फैलाकर देखने वाले भक्त थे। ----- जगत् के बीच उन्हें भगवान के राम रूप की कला का दर्शनकराना था, पहले चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसके अनेक रूपात्मक स्वरूप को उन्होंने सामने रखा।" (हिंदी साहित्य का इतिहास) आचार्य शुक्ल के इस कथन से स्पष्ट होता है कि तुलसीदास ने समाज और जीवन को बड़ी गहराई से देखा था। उन्होंने जीवन के विभिन्न अनुभवों को अपने इस पत्रिकात्मक गीतिकाव्य ग्रंथ में स्थान दिया है। यही कारण है कि इस ग्रंथ में कोई कथा नहीं है और कवि कहीं पर राम की प्रशंसा करता है, तो कहीं अपनी दीनता प्रदर्शित करता है और बीच में ही संसार की अनित्यताऔर कलियुग से प्राप्त दुःख की बात करने लगता है।

'विनयपत्रिका' में मुख्यतः कवि ने ईश्वर के दरबार में अर्जी के माध्यम से कलियुग की पीड़ा से त्राण पाने की संवेदना को अभिव्यक्त किया है। वे जीवन भोग में लगे जीवन की निस्सारता की अभिव्यंजना करते हुए 'राम– जपु, राम– जपु' की रट लगाते रहते हैं। ईश्वर की महिमा का बखान इस ग्रंथ में बड़े ही प्रबल रूप में की गई है–

"सुनु मनमूढ़ सिखावन मेरो।
हरि– पद– विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ! यह समुझ सबेरो।"

हरि पद से विमुख के लिए तुलसीदास प्रायः 'सठ'! और 'अधम'। आदि की उपमा देते हैं। इस प्रकार 'विनयपत्रिका' में विविधता की पर्याप्त संभावना है, जो अत्यंत ही सर्जनात्मक है। 'विनयपत्रिका' की दीनोक्तियों में तो मानो कवि (भक्त) ने अपने भगवान के सामने अपने अन्तस् की सारी उत्कटता तल्लीनता को द्राक्षा की तरह बहा दिया है। यह ग्रंथ एक निष्पाप के अनाविल आत्म– समर्पण की उज्ज्वल कथा है। पत्रिका के 266वें पद में कवि अपने प्रभु से पत्रिका के लिए स्वयं कहता है–

"राम राय ! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?
"बिनय–पत्रिका दीनकी बापु ! आपु ही बाँचो।"

संक्षिप्तता: संक्षिप्तता गीतिकाव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है। 'विनयपत्रिका' के अंतर्गत उसके आरम्भ, मध्य और अंत तीनों में ही प्रायः लंबे– लंबे पद आए हैं। किंतु ऐसे स्थलों की संख्या संक्षिप्त गीतों की संख्या की अपेक्षा कम है। इस प्रकार के पदों के संयोजन से पत्रिका की संगीतात्मक अभिव्यंजना में प्रायः कोई बाधा नहीं आने पायी है। यद्यपि कतिपय ऐसे स्थल हैं जिनसे संगीतात्मकता में बाधा आती है। इस प्रकार के पदों में वे स्थल विशेष दर्शनीय हैं, जिनमें संस्कृत के स्तोत्र परक शैली का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के अंशों में इस काव्य का 120वाँ पद देखिये–

"शंकरं, शम्प्रदं, सज्जनानंददं, शैल– कन्या वरं, परमरम्यं।
काम– मद मोचनं, तामरस– लोचनं, वामदेवंभजे– भावगम्यं।"

इस पद में पहली पंक्ति को तो गाने में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। पर दूसरी पंक्ति में 'तामरस लोचनं' के बाद 'भावगम्यं' के आगे

कुछ और न होने के कारण लयात्मकता तथा स्वर के आरोह- अवरोह में बाधा उत्पन्न होती है। शास्त्रीय संगीत से बिल्कुल अनभिज्ञ व्यक्ति को इसका आभास नहीं मिल पायेगा, पर ऐसी बात नहीं साधारण पाठक भी इसकी परीक्षा कर सकता है।

इस पद की तुलना में 'विनयपत्रिका' के 'श्रीरामचंद्र कृपालु भजुमन हरण- भव- भय दारुणं' वाले पद को देखा जा सकता है, जिसमें संगीतात्मकता और लयात्मक एकात्मता प्रायः कहीं पर भी खंडित नहीं होती।

एकाध अपवादों को छोड़कर विनयपत्रिका के सभी पद संक्षिप्त हैं। स्वतःस्फूर्त भावों की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति ने प्रकृत्या लघु गीतों का आकार धारण कर लिया है। संक्षिप्त संगीतात्मक पदों की दृष्टि से भी 'विनयपत्रिका' का एक अपना अलग ही वैशिष्ट्य है।

संक्षिप्तता की भाँति ही गीतिकाव्य में **मार्मिक अभिव्यंजना** का विशेष सहयोग है। भावुक कवि हृदय अपने अंतर्तम की अनेक सुख -दुःखात्मक अनुभूतियों को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है।

पद संख्या 64 से लेकर 263 तक कवि ने आत्म-कैन्कर्य, असहायता, अपनी फरियाद के लिए अर्जी आदि देने की प्रकल्पना की जिसमें बड़ी मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। तुलसी को 'मोह- निशा' और 'गरीबनिवाज' शब्द बड़ा प्रिय है और इस शब्द की आवृति एकाधिक बार हुई है।

"जागु, जागु, जीव जड़! जोहै जग - जामिनी
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन दामिनी।" (63 पद)

इस पद में कवि ने जीव की अनभिज्ञता और बेसुधपने पर बड़ी ही कारुणिक अभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार वे पद 84 में कहते हैं-

'तौ तू पछितैहै मन, मीँजि हाथ।'

विबुध- दुर्लभ शरीर के अकारथ जाने पर कवि ने गहरी पीड़ा को उद्घाटित किया है।

तुलसी को समाज के प्रायः हर क्षेत्र का बड़ा विशद ज्ञान था।

पत्रिका के पद सं. 89 में विषयासक्त व्यक्ति की तुलना वे ऐसी नारी से करते हैं जो प्रसव पीड़ा का अनुभव करके भी पुनः पति (जो दुःख देता है) का सेवन करती है। वे कहते हैं कि बिना रामकृपा के विषयासक्त नर को मुक्ति नहीं मिल सकती। इस पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए कवि मार्मिक अभिव्यक्ति करते हुए प्रभु से कहता है-

"हे हरि! कस न हरहु भ्रम भारी।"

कवि अपनी पीड़ा से मुक्ति पाने हेतु प्रभु की प्रशंसा करता है, तत्पश्चात् अपने मन एवं काया की मलीनता का प्रकाशन करता है। देखिये अधोलिखित पद में कवि ने कैसी मार्मिक अभिव्यंजना की है-

"माधव! मो समान जग माँहीं।
सब बिधि हीन मलीन दीन अति बिषय कोउ नाहीं।।"

तुलसी के 'द्वारें तें ललात विललात' वाली पंक्ति का भी यहाँ सहज ही स्मरण हो आता है। सब प्रकार से हीन, मलीन, दीन चातक तुलसी को बस घन (श्याम) राम की ही आशा है। यहीं मीरां के "मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरो न कोउ" पद का भी स्मरण हो आता है। तुलसी के 'एक भरोसे एक बल चातक तुलसीदास' वाले पद से अद्भुत साम्य है। तुलसीदास कृत 'विनयपत्रिका' के अधिकांश पदों में हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है।

भाव और रस व्यंजनाः गीतिकाव्य में भाव और रस की अभिव्यंजना भी कुछ विद्वानों ने अनिवार्य व आवश्यक तत्त्व माना है। इसका संकेत हम गीतिकाव्य के तत्त्वों का निरूपण करते समय कर चुके हैं।

भावव्यंजना का संबंध तो प्रायः कवि की अनुभूति से हुआ करता है क्योंकि काव्य में कवि अपनी अनुभूतियों के माध्यम से ही विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति करता है, अतः यहाँ पर विनयपत्रिका में आगत कतिपय मुख्य रसों की ही चर्चा प्रासंगिक होगी।

'विनयपत्रिका' मूलतः भक्ति और दैन्य का काव्य है। उसमें काव्य के विविध रसों को खोजना चट्टान से सिर लड़ाना नहीं तो और क्या हो सकता है? यदि कहीं हास्यादि ('बावरो रावरो नाह भवानी') का पुट मिलता भी है, तो उसका पर्यवसान तुलसी के कार्पण्यऔर दीनता में ही होता है। विनयपत्रिका में मुख्यतः निबद्ध रस भक्ति- रस ही है। हालाँकि कि आचार्य चंद्रबली पांडेय प्रभृति विद्वानों ने उसका प्रधान रस- शांत माना है। पांडेय जी ने अपनी एतद्विषयक मान्यता की पुष्टि हेतु निर्वेद स्थायी शांत और ईश्वर रति स्थायी भक्ति रस को अभिन्न माना है। आचार्य पांडेय के अतिरिक्त एकाध विद्वानों ने 'पत्रिका' में शांत रस का परिपाक मानते हुए भी उसके कतिपय भक्ति रस व्यंजक पदों को शांत रस के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है जैसे-

"मन पछितै है अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरू ही ते।।"

इस पद में 'निर्वेद' व्यक्ति का ही पोषक है। अतः पूरे पद में शांत नहीं भक्ति रस है। तुलसी साहित्य मर्मज्ञ डॉ. उदयभानु सिंह का मत है कि विनयपत्रिका का प्रधान रस शांत नहीं भक्ति रस है। उनकी विचारधारा से अधिकांश विद्वान भी सहमत हैं। किंतु यदि मताग्रहों का परित्याग कर दिया जाय तो विनयपत्रिका में शांत रस की अभिव्यक्ति मिलती है। पद संख्या 111 को शांत रस अभिव्यंजक माना जा सकता है-

"केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिमन रहिये।।"

(पद सं 111)

यद्यपि यहाँ पर 'निर्वेद' स्थायी भाव के कारण शांत रस की नियोजना होती है पर निर्वेद भक्ति का सहायक बनकर आया है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि 'विनयपत्रिका' का प्रधान रस शांत नहीं भक्ति है। किंतु यहाँ इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यदि पत्रिका में कहीं शांत रस है भी तो उससे (पत्रिका में अभिव्यक्त) कवि की

शरणागत, दीनता जनित भक्ति के मार्ग में बाधा नहीं आती। अगर यह कहा जाए कि पत्रिका में कतिपय स्थलों पर शांत रस की अभिव्यक्ति से उसकी गुरु गंभीरता और अधिक बढ़ जाती है तो प्रायः अतिशयोक्ति न होगी।

भाषा शैली: गीतिकाव्य का अंतिम तत्त्व है– भाषा शैली। भाषा– शैली वह विधायिनी शक्ति है जिससे भावों या विचारों को एक रूप– बंध (Form) मिलता है। असमर्थ भाषा– शैली के अभाव में भाव कुंद और कुंठित से हो जाते हैं। अतः कवि के लिए भाषा शैली का सुष्ठ प्रयोग रचना की कसावट के लिए परमावश्यक है।

भाषा पर तुलसीदास का जबर्दस्त अधिकार था। 'विनय पत्रिका' की भाषा ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप है। वह अत्यंत ही प्रौढ़, प्रांजल, सुव्यवस्थित और अर्थगौरव संपन्न है। उसका शब्द भंडार अत्यंत ही समृद्ध है। यद्यपि आद्योपांत भाषा का एक ही स्थिर रूप नहीं है, फिर भी देववाणी की मनोरम छटा मानो दैवी प्रवृत्तियों के जगाने का ही काम करती है। स्तुतिपरक पदों में संस्कृत शब्दावली का साम्राज्य भव्यता के लिए अनिवार्य रूप से छा गया है। कुछ शब्दों में विभक्तियाँ संस्कृत की मिलेंगी– विशेषतः संबोधन में एकवचन की धातुओं में– प्रथम द्वितीय पुरुष में भवहु, पाहि, विष्णो गायन्ति, जयति आदि। गोस्वामी जी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे फिर भी वे संस्कृत व्याकरण के अधीन अपनी भाषा को नहीं होने देते। विनयपत्रिका में तद्भव शब्दों का प्रयोग प्रचुर रूप में हुआ है। इसके साथ ही अन्य बोलियों से भी शब्द ग्रहण किये गए हैं। जैसे– बागत, पनवारी, दिहल आदि। यद्यपि तुलसी विशुद्धतावादी थे, तथापि भाषा शैली के संबंध में उनका यह विचार अक्षुण्ण नहीं रहा, फलतः विदेशी (अरबी, फारसी) शब्दों का भी बहुलांश में प्रयोग हुआ है। 'विनयपत्रिका' में आगत विदेशी शब्दों की सूची इस प्रकार है– खास, खीन, अलायक, लायक, निवाज, जहान, दरबार, सहरु, साहिब, खलल, उसीता, लबारऔर गरीब आदि। वस्तुतःतुलसी ने सभी स्रोतों से उपयुक्त शब्दावली ग्रहण की है। व्यंजना की प्रभविष्णुता के लिए मुहावरों एवं कहावतों का भी सटीक प्रयोग किया है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं– 'मिले न मथत बारि घृत बिनु छीर, सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो, दूध के जरयौ पियत फूँकि– फूँकि मह्यौ हौं' तथा इसी प्रकार मृग तृष्णा आदि के रूपकों से पूरित प्रयोग भी मिलते हैं। इस प्रकार कवि की वाग्धारा कहीं भी अवरूद्ध नहीं होती। इच्छानुसार तुलसीदास ने दीर्घसमासा, मध्य समासा और असमासा पदावली का समुचित विन्यास किया है। इस प्रकार कवि की भाषा भावानुकूल एवं अत्यंत ही संगीतात्मक एवं प्रभावोत्पादक है।

शैली: डॉ. माताप्रसाद गुप्त के मत में 'गोस्वामीजी की अनुपम शैली का सौंदर्य, उसकी सहजता, सुबोधता, सरलता, निर्बाधता, अलंकारप्रियता, रमणीयता, लालित्य और उसके प्रवाह में है।'

'विनय पत्रिका' तुलसी के कवि जीवन के विस्तृत काल खंड से सम्बद्ध है। अतएव उसके गीतों में भिन्न भिन्न समूहों की शैलियों का आधान हुआ है।'विनयपत्रिका' मुख्यतः गेय पद शैली में लिखी गयी है। इसके अंतर्गत बीस रागों की सुनियोजना की गई है।

विनय पत्रिका की पद शैली में मुख्यतः तत्सम प्रधान साहित्यिक, तद्भव प्रधान साहित्यिक और तद्भव प्रधान बोल– चाल की शैली का प्रतिपादन किया गया है। प्रथम शैली पत्रिका के स्तोत्रात्मक पदों में प्रधान रूप से पायी जाती है।(छंद– 40, 52, 53, 93/3, 6)

द्वितीय प्रकार की शैली का प्रयोग विनयपत्रिका में सर्वाधिक हुआ है। ब्रज और अवधी की मूल प्रकृति के साथ संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग कवि ने अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है। उन्होंने आत्मग्लानि से पूर्ण भावों की अभिव्यक्ति में मुख्यतः तद्भव प्रधान शैली को अपनाया है। एक उदाहरण पर्याप्त है–

'कौन जतन बिनती करिये।

निज आचरन, बिचारि हारि हिय, मानि जानि डरिये।।'

(186, 118, -------, 163 आदि)

इसी प्रकार तृतीय पद शैली का भी 'विनय पत्रिका' में समुचित प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तुलसी की भाषा– शैली भावानुकूल एवं सुष्ठु तथा सर्वगुणसम्पन्न है।

'विनयपत्रिका' के आद्योपांत अध्ययन से यह सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गीतिकाव्य की दृष्टि से वह हिंदी ही नहीं, हिन्दीतर क्षेत्र में भी अन्यतम है। इस काव्य में कवि के अंतरतम से जो वाणी फूटी है, उसने कलयुगी पीड़ा से कराहते हुए मानव समाज को संगीतात्मक आत्मनिवेदन और अपनी दैन्य की पराकाष्ठा का जल– प्रबोध देकर शांत कर दिया है।

तुलसी ने इन आत्मनिवेदनात्मक गीतों की रचना समाज के लोगों को संन्यासी बनाने के लिए नहीं की थी अपितु संन्यासी और भक्त का आचरण करते हुए गृहस्थ जीवन को उन्नत बनाना ही उनके भक्त्यात्मक गीतों का जीवन संदेश था। वह सहज ही भक्ति का ब्रह्मसूत्र है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत– डॉ. वचनदेव कुमार, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली
2. कबीर ग्रंथावली: सं. – डॉ.श्याम सुंदर दास, नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी
3. विद्यापति की पदावली – सं.रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भंडार, पटना
4. हिंदी गीतिकाव्य: उद्भव और विकास – डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'
5. विनय पत्रिका – तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
6. रामचरितमानस–तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
7. तुलसीदास– माताप्रसाद गुप्त, हिंदीपरिषद प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयाग

❖

प्रोफेसर हिंदी विभाग एवं
डीन अंतरराष्ट्रीय संबंध
दिल्ली विश्वविद्यालय मो. 9868907919

भूख की महागाथा के रूप में 'कफन' की सार्थकता

डॉ. मनीष

स्पष्ट है कि बुधिया वह स्त्री है जिसने अपनी मेहनत के बल पर अक्सर भूखे रहने वाले बाप-बेटे को पिछले एक साल से भूखा नहीं रहने दिया था। वह इस परिवार की व्यवस्था को, पिछले एक साल से अभाव में ही सही, सुचारू रूप से चला रही थी। इसी बुधिया के दम पर वे दोनों और अधिक आलसी हो गए थे और समाज में अकड़ने लगे थे। परिवार की इतनी महत्त्वपूर्ण महिला को इतनी आसानी से मरने देना समझ से परे है। वह भी केवल एक दिन की भूख मिटाने के लिए, एक ही आलू के अधिक हिस्से को खाने की आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण! क्या भूख इतना अमानवीय बना देता है कि व्यक्ति यह भी भूल जाए कि बुधिया को बचा लेने से सालों-साल तक भूख उनके पास फटक भी नहीं सकता। जी हाँ, इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद भूख से उपजी अमानवीयता की इसी गहनता को संप्रेषित करना चाहते थे। प्रेमचंद यह दिखाना चाहते थे कि भूख से बिलबिलाता हुआ इंसान दरअसल इंसान रह ही नहीं जाता, चाहे वह किसी भी आधुनिक अथवा पारंपरिक अस्मिता से संबंध रखता हो। अब यहां ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा उठाए गए प्रश्न का सामना करना आवश्यक है। वह पूछते हैं

प्रेमचंद की अंतिम कहानी 'कफन' अपने छोटे से कलेवर में ही जाति-व्यवस्था के ढकोसले को तार-तार कर देती है। यह कहानी जिस परिवेश से निकली है उसके समाज होने पर ही प्रश्न-चिन्ह लगा देती है। सामान्य शब्दों में मनुष्यों के उस समूह को समाज कहते हैं जिनमें गहरे स्तर पर पारस्परिकता मौजूद हो। इसी बुनियादी शर्त को पूरा न करने के कारण 'कफन' का मानव-समूह समाज की कोटि में ही नहीं आता। अपने समाज की सांस्कृतिक श्रेष्ठता का दंभ भरने वाले भारतीय समाज को यह कहानी आईना दिखाती है।

'कफन' कहानी की मूल संवेदना क्या है? इस कहानी का निहितार्थ क्या है? यह कहानी क्यों लिखी गई? इन प्रश्नों पर विचार किए बिना न तो 'कफन' की सार्थकता समझी जा सकती है और न ही उसके महत्व का उल्लेख संभव है। यह कहानी गरीबी का भयानक मंजर सामने रखती है, साथ ही भूख की वह दर्दनाक तस्वीर प्रस्तुत करती है जिसके कारण कोई भी मनुष्य घीसू-माधव बन सकता है। घीसू-माधव का अमानवीय व्यवहार उनके जीवन-परिस्थितियों की स्वाभाविक परिणति है। लगातार, सालों-साल के भूखे इंसान से इंसानियत की उम्मीद रखने वाला सभ्य समाज वस्तुतः अपनी हैवानियत का परिचय दे रहा होता है। घीसू-माधव के जीवन के परिदृश्य को जानने के बाद उनसे मानवीय व्यवहार की मांग करने वाले व्यक्ति से अधिक अमानवीय कोई और हो ही नहीं सकता। महानगरों के सड़क किनारे कूड़े के ढेर से खाने योग्य भोज्य-पदार्थ को चुनकर खाते हुए बच्चे, बुजुर्गों, विक्षिप्त स्त्री-पुरुष का नजारा आम है। किसी भी समाज के लिए इससे अधिक अमानवीय अवस्था की कल्पना असंभव है कि एक ही कचड़े के ढेर से पशु व मानव दोनों अपने भोजन पाने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हों। ऐसे में घीसू-माधव का कारनामा इससे अधिक अमानवीय क्योंकर है?

घीसू बीस साल पहले की ठाकुर की बारात याद करता है जिसमें उसने अंतिम बार तृप्त होकर भरपेट भोजन किया था। घीसू कहता हैद्

"वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला।"1

इससे पहले ही कहानी का कथावाचक अपनी ओर से जोड़ता हैद् 'वह उसके जीवन में, एक याद रखने लायक बात थी और आज भी उसकी याद ताजा थी।' घीसू एक बार ही सही, अपने जीवन में स्वादिष्ट भोजन का आनंद ले चुका है, लेकिन माधव के लिए तो स्वादिष्ट भोजन अब तक अबूझ पहेली की तरह है। अब तक उसके जीवन में यह अवसर एक बार भी नहीं आया है। स्वादिष्ट भोजन तो छोड़ ही दें, दोनों अक्सर भूखे रहते हैं। कथावाचक प्रारम्भ में ही कहता हैद्

"घर में मुट्ठी भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार में बेच आता... विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई संपत्ति नहीं। फटे-चिथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे।"2

कोई व्यक्ति भूख से निजात पाने के लिए चोरी करे, समझ में आता

है। एक बाप अपने बेटे पर तथा बेटा अपने बाप पर एक आलू का अधिक हिस्सा खा जाने के लिए शक करे, यह भी संभव है। किन्तु आलू खाने के लिए एक पति अपनी पत्नी को प्रसव-पीड़ा में तड़पने और अंततः मर जाने के लिए छोड़ दे! यह समझ से परे है उसमें भी माधव की पत्नी बुधिया, कोई आम भारतीय गृहिणी नहीं थी जिसपर प्रायः यह आरोप लगा दिया जाता है कि वह केवल घर की देखभाल करती है। बुधिया केवल घर की देखभाल ही नहीं करती बल्किय उस घर को, गुरबत में ही सही, केवल अपने परिश्रम के दम पर चलाती भी है। कथावाचक बुधिया के बारे में अपनी राय व्यक्त करता हैदृ

"माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जबसे वह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर भर आटे का इन्तजाम कर लेती थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जबसे वह आयी, यह दोनों और भी आलसी और आराम-तलब हो गए थे, बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे।"

स्पष्ट है कि बुधिया वह स्त्री है जिसने अपनी मेहनत के बल पर अक्सर भूखे रहने वाले बाप-बेटे को पिछले एक साल से भूखा नहीं रहने दिया था। वह इस परिवार की व्यवस्था को, पिछले एक साल से अभाव में ही सही, सुचारू रूप से चला रही थी। इसी बुधिया के दम पर वे दोनों और अधिक आलसी हो गए थे और समाज में अकड़ने लगे थे। परिवार की इतनी महत्त्वपूर्ण महिला को इतनी आसानी से मरने देना समझ से परे है। वह भी केवल एक दिन की भूख मिटाने के लिए, एक ही आलू के अधिक हिस्से को खाने की आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण! क्या भूख इतना अमानवीय बना देता है कि व्यक्ति यह भी भूल जाए कि बुधिया को बचा लेने से सालों-साल तक भूख उनके पास फटक भी नहीं सकता। जी हाँ, इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद भूख से उपजी अमानवीयता की इसी गहनता को संप्रेषित करना चाहते थे। प्रेमचंद यह दिखाना चाहते थे कि भूख से बिलबिलाता हुआ इंसान दरअसल इंसान रह ही नहीं जाता, चाहे वह किसी भी आधुनिक अथवा पारंपरिक अस्मिता से संबंध रखता हो। अब यहां ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा उठाए गए प्रश्न का सामना करना आवश्यक है। वह पूछते हैं किदृ

"चमारों का कुनबा' कहने की जरूरत प्रेमचंदजैसे युगीन कथाकार को क्यों पड़ी? सिर्फ यह भी कह सकते थे कि घीसू-माधव का कुनबा था। लेकिन प्रेमचंद 'चमार' जाति-वाचक संज्ञा जोड़ते हैं। तो जरूर उन्हें इसकी जरूरत महसूस हुई होगी।"4

हाँ, प्रेमचंद को निश्चित तौर पर इसकी जरूरत महसूस हुई होगी। यह जरूरत आज भी वैसे ही बनी हुई है। भारत की सामजिक-आर्थिक व्यवस्था की आपसी बुनावट ही इस तरह की है कि सामाजिक अनुक्रम प्रायः आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता का भी नियमन करती है। स्वतंत्रता के बाद इस स्थिति में कुछ बदलाव अवश्य आया है, किन्तु 1936 ई० के भारतीय समाज का स्वरूप यही था। 'कफन' में जिस भयावाह गरीबी व भुखमरी का चित्रण है ऐसी जिन्दगी प्रायः तथाकथित निचली जाति के लोग ही जीते हैं। वीर भारत तलवार ने भी अपने आलेख 'सभ्यता के खिलाफ विद्रोह की कहानी' में यही बात कही है। दलितों को छोड़कर किसी और ने जीवन की इस भयावहता का अनुभव नहीं किया है। अगर प्रेमचंद ने किसी भी गैर दलित जाति का उल्लेख यहां किया होता तो यह कहानी अस्वाभाविक ही नहीं पूर्णतया कृत्रिम हो जाती।

ओमप्रकाश वाल्मीकि एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं वह आरोप लगाते हैं कि 'घीसू-माधव की इस स्थिति के लिए जिम्मेवार सामाजिक व्यवस्था की ओर प्रेमचंद उल्लेख तो छोड़िए संकेत तक नहीं करते।' प्रेमचंद पर लगाया गया यह आरोप सरासर बेबुनियाद है। प्रेमचंद को समाज में व्याप्त गरीबी ही नहीं विभिन्न सामाजिक आर्थिक असमानता का भी कारण मालूम था। वह अपने उपन्यासों और कहानियों में हमेशा इन कारणों की पहचान करते रहते थे। उदाहरण के लिए 'रंगभूमि', 'गोदान' आदि उपन्यास एवं 'सवा सेर गेहूँ' कहानी को देखा जा सकता है। इसमें प्रेमचंद पहले तो गरीबी, बेरोजगारी, जातिगत असमानता आदि समस्याओं का चित्रण करते हैं। बाद में इन समस्याओं के कारण के तौर पर धार्मिक-आर्थिक शोषण तंत्र का भी भांडाफोड़ करते हैं। कफन कहानी में भी प्रेमचंद घीसू-माधव की दुर्दशा के लिए जिम्मेवार कारणों की पड़ताल करते हैं। सबसे पहला कारण, घीसू-माधव की चारित्रिक दुर्बलता है जिसे आलोचकों ने 'कामचोर-दर्शन' कहा है। 'गोदान' का होरी अपने पूरे परिवार के साथ मिलकर जीतोड़ मेहनत करता है। फलस्वरूप फटेहाली में ही सही होरी सपरिवार अपना जीवन-यापन तो कर ही लेता है। होरी की त्रासदी का कारण उसकी तथा कथित महत्वाकांक्षा 'गाय' एवं पूरी व्यवस्था है, वह स्वयं नहीं। इस शोषण मूलक व्यवस्था को 'कफन' में कथावाचक स्वयं उपस्थित होकर चिन्हित करता हैदृ

"जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत, उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलता से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्नथे,वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था,---"

इस पूरे प्रसंग को पढ़ जाइए। प्रेमचंद घीसू-माधव की आलसी प्रवृत्ति, भाग्यवादी दृष्टिकोण, कर्म से पलायन आदि के लिए किसे दोषी करार दे रहे हैं? इस शोषण-मूलक व्यवस्था को ही न! यह शोषणकारी व्यवस्था ही घीसू-माधव जैसे चरित्रों को जन्म देती है। यहां प्रेमचंद घीसू-माधव के साथ खड़े हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि को भले ही सुनाई न दे, प्रेमचंद तो चीख-चीख कर कह रहे हैं कि जब तक यह शोषक व्यवस्था कायम है, घीसू-माधव लगातार जन्म लेते रहेंगे।

व्यवस्था का चरित्रोद्‌घाटन के सन्दर्भ में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है। कफन के लिए जुटाए गए पैसे को घीसू-माधव शराब-कबाब में उड़ा देता है। सतही तौर पर देखने से लगता है कि वे दोनों भूख से निजात पाने के लिए ऐसा करते हैं। किन्तु वह ऐसा करके प्रतीकात्मक रूप से हिन्दू समाज के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा निर्मित शोषणकारी कर्मकांडों, कुप्रथाओं एवं रीति-रिवाजों की धज्जियां उड़ा रहे थे। उनमें अपनी अस्मिता का, अपने स्वत्व का बोध भले न हो, किन्तु वे यह तो समझते ही हैं किदृ

"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिये।"6

इतना ही नहीं वे दोनों धर्म के ठेकेदार कर्मकांडी ब्राह्मणों से भी प्रश्न करते हैंदृ

"दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बामनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं?

बड़े आदमियों के पास धन है, चाहे फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है?"7

यह हिन्दू धर्म द्वारा बनाए गए विधि-निषेध का उल्लंघन है। घीसू और माधव समाज व धर्म के आपसी गठबंधन द्वारा खींची गई लक्ष्मण-रेखा का अतिक्रमण करते हैं सचेत होकर या अनजान में ही। 'गोदान' का होरी तथा 'सवा सेर गेहूँ' का शंकर कुरमी इन्हीं धार्मिक प्रतीकोंदृस्वर्ग एवं नरक के डर से अपना जीवन होम कर लेते हैं। वह किसान से मजदूर बन जाते हैं, मजदूर से बंधुआ मजदूर और एक दिन बिना कोई विरोध किए मर जाते हैं। होरी और शंकर कुरमी इस शोषणकारी व्यवस्था की चक्की में खुद तो पिसते ही हैं, अपने संतान को भी पिसने के लिए जीवित छोड़ जाते हैं। इसी स्वर्ग-नरक के हिन्दू-मिथक को घीसू-माधव तार-तार कर देता है, कफन के पैसे से शराब व कबाब खाकर। वे दोनों इतना तो जान ही गए हैं कि 'गोदान' करने से या 'ब्राह्मण का कर्ज इसी जन्म में चुका कर मरने से' या फिर मृतक को 'कफन' के साथ श्मशान ले जाने से कोई स्वर्ग नहीं जाता। हिन्दू मिथकों की जानकारी रखने वाला व्यक्ति यह जानता है कि मिथकों के अनुसार मरणोपरांत बैकुंठ जाना, स्वर्ग जाने की अपेक्षा अधिक पुण्य का प्रतिफल है! घीसू निम्नलिखित वक्तव्य के माध्यम से हिन्दू व्यवस्था की जड़ में दही डाल रहा थादृ

"हां बेचारी, बैकुंठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुंठ में जायेगी, तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं?"

व्यवस्था के प्रति विद्रोह का यह प्रेमचंद का अपना ढंग है। 'वह बाबा साहब अंबेडकर की मान्यताओं को मानते हैं या नहीं? गांधी से प्रभावित हैं। वह गांधी के पक्ष से दलित समस्या को देखते थे, अंबेडकर के पक्ष से नहीं।' इन बातों में सच्चाई के आसार हैं, किन्तु प्रेमचंद यह जानते थे कि शोषणकारी व्यवस्था का विद्रोह कोई शोषित ही करेगा। शोषक अपने हितों को अनदेखा करते हुए इस व्यवस्था का विद्रोह कर ही नहीं सकता। इसीलिए प्रेमचंद घीसू-माधव की जातिदृ 'चमार' की घोषणा करते हैं। अस्पृश्य जातियां ही हजारों वर्षों से हिन्दू समाज-व्यवस्था की चक्की में पिसती रही है। प्रेमचंद इसी अस्पृश्य जाति से इस हिन्दू समाज-व्यवस्था के विद्रोह की उम्मीद रखते थे। उनके इसी उम्मीद का नाम घीसू-माधव है और घीसू-माधव के विद्रोह का दस्तावेज है 'कफन'।

एक बात और, 'कफन' कहानी को बुधिया की परिस्थिति को ध्यान में रखकर, उसकी दृष्टि-बिन्दु से पढ़ने पर बिलकुल दूसरी तस्वीर नजर आती है। बुधिया को जितनी आसानी से दोनों बाप-बेटे मरने देते हैं, वह असह्य पीड़ा देती है। एक पल के लिए इस घटना पर यकीन करने का मन नहीं करता, किन्तु दूसरे ही पल अपनी पत्नी की गाढ़ी कमाई को शराब में उड़ाते हुए देख कर विरोध करने पर, पति द्वारा पत्नी को पीटे जाने की घटनाओं को देखकर कफन की इस घटना की विश्वसनीयता और अधिक बढ़ जाती है। भारतीय समाज का ढाँचा कमोबेश इसी तरह का है। एक स्त्री के जीवन और मृत्यु दोनों का इतना ही मूल्य है कि वह पुरुष की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके! भारतीय समाज इतनी ही आसानी से एक स्त्री को मरने देता है और मरने के बाद इतना ही उदासीन बना रहता है। कफन कहानी बहुत ही सहजता से भारतीय समाज में एक आम स्त्री की वस्तुस्थिति का चित्रण करती चलती है। बुधिया के विशेष प्रसंग में घीसू-माधव की उदासीनता, अमानवीयता पितृसत्तात्मक भारतीय समाज की तस्वीर प्रस्तुत करती है। घीसू-माधव की अमानवीयता के इस पक्ष की न तो उपेक्षा की जा सकती है और न ही सफाई दी जा सकती है।

कफन कहानी गरीबी व भूख से संबंधित है। इस गरीबी के लिए व्यक्ति स्वयं जितना जिम्मेवार है उससे अधिक जिम्मेवार यह शोषणकारी व्यवस्था है। जब तक यह व्यवस्था कायम है तब तक कफन कहानी की सार्थकता व महत्व निर्विवाद है। इसके अलावा स्त्री के प्रति पुरुषों का स्वाभाविक अमानवीय व्यवहार भी रेखांकित करने योग्य है। यह कहानी व्यवस्था के प्रति विद्रोह का प्रेमचंद के अपने ढंग का प्रतिपादन करती है। कफन की आवश्यकता बुधिया के मृत शरीर से अधिक हिन्दू समाज-व्यवस्था के कर्मकांडीय ढकोसलों को है। घीसू-माधव अपने तरीके से इस शोषणकारी समाज-व्यवस्था को कफन देने की शुरुआत कर चुके हैं।

संदर्भः

1. 'कफन', प्रेमचंद, 'भारतीय श्रेष्ठ कहानियाँ', संपादक- मार्कंडेय, लोकभारती प्रकाशन, 2012, पृष्ठ-435
2. वही., पृष्ठ-433
3. वही., पृष्ठ-434
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'प्रेमचंद की कहानी 'कफन': एक पुनर्मूल्यांकन', पक्षधर पत्रिका, पृष्ठ-88
5. 'कफन', प्रेमचंद, 'भारतीय श्रेष्ठ कहानियाँ', संपादक- मार्कंडेय, लोकभारती प्रकाशन, 2012, पृष्ठ- 434-435
6. वही., पृष्ठ 437
7. वही., पृष्ठ 438
8. वही., पृष्ठ 439

❖

संप्रतिः असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग,
हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
368, कनिष्क अपार्टमेंट, सी एंड डी ब्लॉक शालीमार बाग 110088
मो. 9013002325 ईमेलः mkmanishjnu@gmail.com

समुद्र से व्यक्तित्व के धनी: सुब्रमण्यम भारती

डॉ. प्रताप राव कदम

सुब्रमण्यम भारती के मित्र श्रीनिवासाचारी की बेटी यदुगिरी ने भारती जी के साथ अपने, अपने पिता के संस्मरणों को "भारती संस्मरण" पुस्तक में समेटा है। यदुगिरी भारती जी की मानस कन्या व शिष्यवत थी, बकलम यदुगिरी- वह अपनी छोटी बहन और पिता के साथ समुद्रतट पर सैर कर रही थी। प्रातः काल, शीतल बयार और रमणीय वातावरण। ऐसे में प्रभात राग में, मधुर आवाज में एक गीत सुनाई दिया। वे तीनों आवाज का पीछा करते प्रभात राग छेड़ने वाले गायक तक पहुंचे, उन्होंने देखा, एक कटे पेड़ के ठूंठ पर भारती हाथ जोड़े बैठे हुए है, बाल भास्कर को निहारते, भाव-विभोर उसकी इस तरह से स्तुति कर रहे थे कि सुनने की चाह बढ़ती जाती, दिल द्रवित होता जाता। पर यह कोई उल्लेखनीय घटना नहीं थी, घटना तो तब घटी जब पता चला कि भारती पहली शाम से समुद्र तट पर आए थे, उनसे पूछा कि रातभर अपने घर में सब परेशान नहीं हुए होंगे? तो भारती बड़ी सादगी से बोले- मैं तो प्रकृति प्रदेश में था, अपने कल्पित प्रदेश में उड़ रहा था, आनंद के सागर में गोते लगा रहा था।

देश केवल एक नक्शा भर नहीं होता, देशवासियों के बगैर देश साकार नहीं होता। उसके नदी पहाड़, पठार, झरने, खेत, लोग-बाग, रीति-रिवाज सब मिलकर उस नक्शे में जीवन भरते हैं। कलाकार रचनाकार लेखक कवि की प्रकृतिदत्त प्रवृतियां इकाई से आगे जाकर समष्टि से जुड़ती है, उसकी ओर प्रवृत होती है तभी उसमें सार्व-भौमिकता आती है। इसी मानवतावादी परंपरा की नींव रखने वाले, तमिल कवि सुब्रमण्यम भारती में आजादी और स्वाधिकार के प्रति गहरी ललक थी। तमिल साहित्य बहुत समृद्ध है उसमें जनवाद के प्रणेता सुब्रमण्यम भारती ही माने जाते हैं, उन्होंने जन-साधारण के लिए कला को उपादेय बनाया। भारती ने ही बताया- राष्ट्रनिर्माण और आत्मनिर्माण में कोई अंतविरोध नहीं है बल्कि साहित्य की जीवंत परंपरा में गतिशीलता का गुण अनिवार्य है। एकांगी सोच, संकीर्ण प्रयोजन से न स्वयं का ही हित होता है, न समाज या देश का, इसे जनसामान्य से जोड़ना, साधना का काम है, यही साधना लक्ष्य तय करती है, तब व्यक्ति नहीं समष्टि मुखर हो उठती है, देश समाज झांकते उसमें से। इसी समष्टि के स्वर कवि सुब्रमण्यम भारती के कविता के प्राण है- बानगी देखें -

एक- बुद्धि को शक्ति दो
बोली को मिठास दो
आवश्यकतानुसार हर वस्तु दो
और सत्य को विजयी बनाओ।

दो - सब एक जाति, एक वर्ग के ही है, सभी भारतीय है।
सब एक इकाई है, सभी के एक ही सिद्धात है।
सभी और हर कोई इस देश का राजा है।

तीन- हमें गर्व है अपने देश भारत पर।
हम मशीनरी बनाएंगे और अच्छे कागज भी।
विद्यालय, महाविद्यालय ही नहीं
उद्योगों का निर्माण भी करेंगे।
हम विनाश की राह नहीं अपनाएंगे
सच्चाई से बंधे रहकर महान कार्य करेंगे
हम अपने देश भारत पर गर्व करेंगे।

सुब्रमण्यम भारती का जन्म 11 दिसंबर 1882 को हुआ, जन्म के कुछ वर्ष बाद ही मां का हाथ सिर से उठ गया। पिता चिन्नस्वामी को जिस तरह से पुत्र की देखभाल करनी चाहिए, वह नहीं हो पायी। पिता राज कवि होने के कारण राज-दरबार में ही लगे रहते थे और जैसा लग

रहा था, पिता ने 1889 में दूसरा विवाह कर लिया। अभाव से सुब्रमण्यम की दोस्ती चोली दामन की थी। नितांत एकाकीपन व्यक्तित्व विकास से अंजान। अनगढ़ वे जीवन के पथरीले मार्ग पर अपने ढंग से रास्ता तय करते रहे। मां के आंचल से वंचित उन्होंने प्रकृति के आंचल का सहारा लिया, प्रकृति के सौन्दर्य में, पक्षियों की उड़ान में, आकाश कि ओर भुजा पसारे पेड़ों में अपना ठोर ढूंढ लिया–

वायु तेरा अभिनंदन है
मकरंद रस को लिये मनमोहक गंध के साथ तू आ।
पत्तों और जलतड़ागो को स्पर्श करते हुए हमें प्राण रस में सराबोर कर दे
वायु तेरा अभिनंदन है।
तेरे प्रचंड वेग से हमारी प्राणाग्निस्थित होकर जलती रहे,
क्षीण होकर तू उसे बुझा न दें।
पैशाचिक रूप से तू उसे मिटा न दे।
सू-लय के साथ तू अनंत काल तक धीरे-धीरे बहती रह।
हम तेरा गायन करते हैं।
तेरे मंगल की हम कामना करते हैं।

चींटी को देख कितनी छोटी है। उसमें हाथ पैर-मुंह-पेट सभी आओ जाओ मानो ना बोल कर रखे गए हैं, किसने रखा था महाशक्ति ने, यह सब चीजें कार्य निर्वाह करते हैं।

चींटी भोजन करती है, विश्राम करती है, विवाह रचती है,
शिशुओं को जन्म देती है, कभी दौड़ती है तो कभी कुछ
खोजती है, लड़ती है और देश रक्षण भी करती है
इन सब का आधार वायु ही है।
माता महाशक्ति इसी वायु को लेकर प्राणक्रीड़ा करती है।
इस वायु का गीत हम गा रहे है।
ज्ञान में वह धीर बनी रहती है।
हृदय में वह स्पंदन है
वह प्राण मे प्राण है तो शरीर में शक्ति
बाह्य जगत में इसकी गति से अनभिज्ञ कौन है?
अभिज्ञ कौन है?

सुब्रमण्यम भारती के मित्र श्रीनिवासाचारी की बेटी यदुगिरी ने भारती जी के साथ अपने, अपने पिता के संस्मरणों को "भारती संस्मरण" पुस्तक में समेटा है। यदुगिरी भारती जी की मानस कन्या व शिष्यवत थी, बकलम यदुगिरी- वह अपनी छोटी बहन और पिता के साथ समुद्रतट पर सैर कर रही थी। प्रातः काल, शीतल बयार और रमणीय वातावरण। ऐसे में प्रभात राग में, मधुर आवाज में एक गीत सुनाई दिया। वे तीनों आवाज का पीछा करते प्रभात राग छेड़ने वाले गायक तक पहुंचे, उन्होंने देखा, एक कटे पेड़ के ठूंठ पर भारती हाथ जोड़े बैठे हुए है, बाल भास्कर को निहारते, भाव-विभोर उसकी इस तरह से स्तुति कर रहे थे कि सुनने की चाह बढ़ती जाती, दिल द्रवित होता जाता। पर यह कोई उल्लेखनीय घटना नहीं थी, घटना तो तब घटी जब पता चला कि भारती पहली शाम से समुद्र तट पर आए थे, उनसे पूछा कि "रातभर अपने घर में सब परेशान नहीं हुए होंगे? तो भारती बड़ी सादगी से बोले- मैं तो प्रकृति प्रदेश में था, अपने कल्पित प्रदेश में उड़ रहा था, आनंद के सागर में गोते लगा रहा था। भारती को कहां इसकी चिंता। यदुगिरी लिखती है- आमतौर पर लोग समुद्र किनारे टहलने या बैठने सुबह या शाम जाया करते है पर भारती अलग ही मिजाज के, कभी तपती दोपहरी में वहां चले जाते, कभी शाम को जाकर बैठ जाते तो कभी रात हो जाती, रात में वे वहीं रुक जाते। अपनी सोच अपनी कल्पना को विस्तार देने के अलावा अपनी दारूण स्थिति, निर्धनता को भुलाने में भी समुद्र उनकी मदद करता, वे गीत बनाकर उसे राग में बांधकर, उसी में प्रसन्न रहने की कोशिश करते, समुद्र उसमें उनकी मदद करता। समुद्र जैसा ही व्यक्तित्व था सुब्रमण्यम भारती का, तभी तो वह कह सके-

जीसस को क्रास पर चढ़ा कर मारा
श्रीकृष्ण की जहरीले बाण से हुई
श्रीराम नदी में गिर कर अदृश्य हुए
पर मैं इस दुनिया में सदा जीवित रहूँगा
तुम ये देखोगे।

यह घटना भी उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष (समुद्र जैसे विशाल हृदय) को दर्शाती है- पत्नी चेल्लमा खाना बनाने की तैयारी में, चूल्हे पर भात पकाने का पानी (अदहन) रख दिया था, चूल्हे की लकड़ियों को थोड़ा सा खड़खड़ा भी दिया था ताकि अदहन ठीक से गरम हो। चेल्लमा चावल में से कंकर अलग कर रही थी, आज की तरह साफ-सुथरा बिना हुआ अनाज, दालों का चलन नही था, चूल्हा भी मिट्टी का बना होता था। चावल बीनते बीच में किसी काम से चेल्लमा, चावल का सुपड़ा एक तरफ रख, घर में चली गयी, जब लौट कर आई तो देखा सूपड़े में चावल कम है, एक बड़ा हिस्सा चावल का नहीं है। जमीन पर चावल बिखरा पड़ा है और बहुत सारी चिड़िया चोंच में उन्हे

भर फुदक रही है। सुबह ही दूधवाले ने दूध के बिल का तकादा लगाया था और दूध बंद करने की धमकी दी थी, चेल्लमा बच्चों को लेकर चिंतित थी, रोने-धोने को हो आई। भारती से उनके व्यवहार के बारे में पूछा, भारती एक संतुष्ट फकीर सा बोले- ''देखो ये पक्षी कितने प्रसन्न है, लगता है नाच-गा रहे हों। हम मनुष्य ऐसे क्यों नहीं रह पाते। चेल्लमा चुप लगा गयी, उदास हो गयी, किसी तरह खाना पकाकर बाहर आयी तो देखा भारती जी एक नयी कविता गा रहे हैं और बेटी शकुंतला उसे दोहराते हुए नाच रही है। वह कविता भारती जी ने पक्षियों को आजादी से फुदकते हुए भोज करने और आनंदित हो कलरव करने पर ही लिखी थी, चेल्लमा असहज थी, उसे इंगित कर भारतीजी ने कहा- ''आज तुम्हें यह सब ठीक नहीं लग रहा है, यह कविता मामूली लग रही है पर आने वाली पीढ़ी इसे हाथों-हाथ लेगी, गाएगी गुनगुनागी'' और ऐसा ही हुआ, हो रहा है।

समुद्र की लहरें जिस तरह से किनारों की चट्टानों पर अपने संताप को पछीटती है, वैसे ही वे भी, उन्हें अंग्रेजी शासन का गहरा संताप था, और जिस समय ''वंदे मातरम'' कहना राजद्रोह माना जाता था, उस समय उन्होंने तमिल में ''वंदे मातरम'' का झण्डा बुलंद किया, निर्दयी अंग्रेज शासन से वैसे ही वे टकराये जैसे लहरें टकराती है बार-बार, फिर-फिर दूने वैग से। देश की स्वतंत्रता की 50 वीं वर्षगांठ पर तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी जी की इच्छा थी कि आजादी के तरानों को एक जगह पुस्तक रूप में संकलित किया जावे, उनकी इच्छा को ''आजादी की अग्निशिखाएं'' पुस्तक में मूर्त रूप दिया ख्यात लेखक आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र ने। उसी ''आजादी की अग्निशिखाएं'' में सुब्रमण्यम भारती का तमिल में 'बन्दे मातरम' गीत और उसका हिंदी तर्जुमा दस्तावेज की शक्ल में मौजूद है-

वन्दे मातरम्
वन्दे मातरम् एन्बोम् -एंगळ
मानिल तायै वणंगुदुमेन्बोम्। (वन्दे)

1 जाति मतंगले पारोम्-उयर्
जन्ममिद्देशत्तिल् एय्दिन रायिन्
वेदियरायिनुम् ओन्ने-अन्नु
वेरूक्कुलत्तिन रायिनुम् ओन्ने। (वन्दे)

2 ईन परैयर्गलेनुम्-अवर्
एम्मुडन् वाष् न्दिंगिरूप्पवरनो
शीनत्तराय विड्डुवारो-पिर
देशत्तार् पोल् पल तींगिषै प्पारो। (वन्दे)

3 आयिरमुण्डिगु जाति-एनिल
अन्नियर वन्दु पुगल एन्न नीति-ओर्
तायिन् वयिट्रिल पिरन्दोर-तम्मुल
शण्डै शेय्दालुम् सहादर रन्नो? (वन्दे)

4 ओन्नु पट्टाल उण्डु वाष् वु-नम्मिल
ओटु मैं नींगिल् अनैवर्कु ताष् वु
नन्निदु तेर्न्दिडल वेण्डुम्-इन्द
ज्ञानम् वंदाल पिन्नमक्केदु वेण्डुम्। (वन्दे)

5 एप्पदम् वाय्त्तिडुमेनुम्-नम्मिल
यावर्क्कुंमन्द निलैप्पोदुवागुम्
मुप्पदु कोटियुम् वाषवोम्-वीषिल्
मुप्पदु कोटि मुषु मैयुम् वीषु वोम्। (वन्दे)

6 पुल्लडिमै तोषिल पेणि-पण्डु
पोयिन नाटकलुक्किनि मनम् नाणि
तोल्लै इगष् च्चिगल तीर-इन्द
तोण्डु निलैमैयै थू वेन्नु तल्लिल। (वन्दे)

यह गीत उन दिनों में रचा गया जब 'वन्दे मातरम्' का उच्चारण भी राजद्रोह माना जाता था।)

इसका हिन्दी तर्जुमा है -

वन्दे मातरम् कहें !"महान् भूमि माता को सिर झुकाएँ कहें।

1 हम जाति या धर्म को महत्व नहीं देंगे। यदि उत्तम जन्म इस देश में प्राप्त कर लिया हो तो फिर ब्राह्मण हो या किसी अन्य कुल का--सब समान है।

2 तुच्छ कोइ नहीं, सब समान है, तो क्या वे हमारे ही साथ यहाँ नहीं रहेंगे ? क्या वे चीनवाले बन जाएँगे ? अन्य देशवालों के समान क्या वे हानि पहुँचाएँगे ?

3 हममें हजार जातियाँ हैं, तो (इस बात को लेकर) अन्यों का दखल देना कहाँ की नीति है? एक माँके पेट से उत्पन्न भाई आपस में लड़ लें तो भी क्या वे (एक दूसरे के) सहोदर नहीं हैं?

4 अगर हम एक होकर रहें तो हमारा (कुशल) जीवन है। यदि हमारी एकता टूट जाय तो हमारा पतन है। यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए। यह ज्ञान यदि हमें हो जाय तो फिर हमें किस बात की कमी रहेगी ?

5 चाहे जो पद प्राप्त हो, वह हम सबके लिए समान रहेगा। (जीएँगे तो) हम तीसों करोड़ लोग (उस समय समग्र भारत, जिसमें पाकिस्तान भी सम्मिलित था- की जनसंख्या तीस करोड़ थी।) जिएँगे। यदि गिरेंगे भी तो हम तीसों करोड़ एक साथ गिर जाएँगे।

6 गुलामी के जीवन को बड़ा मानना और बीते जमाने को लेकर मन-मारे बैठे रहना छोड़कर अपनी कठिनाइयों और दुर्गति को दूर करने के लिए इस गुलास-स्थिति को धत् कहकर ठुकरा दें।

सुब्रमण्यम भारती का जिक्र होता है तो एक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी और कवि बायरन की याद आना स्वाभाविक है, तीनो ने मनुष्यता का झंडा बुलंद करते नये मार्ग, नए मतवाद की नींव रखी, जो जनवादी, नये समाज व्यवस्था के निर्माण के विचारों से लबरेज थी, उन्होंने अपने समय पर न केवल अपने हस्ताक्षर किए बल्कि उसे दिशा भी दी। साहित्य को लोक से जोड़ा, गिरी शिखरों की बात नहीं की बल्कि साधारण आमजन से जुड़े। दु:ख जोड़ता है, इसी के मार्फत तीनों जुड़े। बायरन हालांकि राजकुल (लार्ड कुल) में पैदा हुए, पिता विलासी अमर्यादित थे, ब्याहता पत्नी (धर्मपत्नी) का सबकुछ हड़प कैथराइन गार्डन नामक युवती से विवाह किया, उससे भी नहीं बनी, उसे भी छोड़ दिया। यह कैथराइन गार्डन ही बायरन की जननी थी, परिस्थितियों ने कैथराइन गार्डन को अजीबो-गरीब बना दिया था उसके इस अजीबो-गरीब स्वभाव का शिकार इकलोते बेटे बायरन हुए और जन्म से ही हीनता का शिकार रहे। सुब्रमण्यम भारती की मां बचपन में ही काल-कवलित हो गई, पिता को उनका जितना ध्यान रखना चाहिए, वे रख नहीं पाते, पिता के दूसरे ब्याह के बाद तो जैसे दोनों के बीच परायापन बेहद गहरा गया। माखनलाल चतुर्वेदी का राष्ट्रवाद से ओत-प्रोत निर्भीक लेखन उन्हें सुब्रमण्यम भारती से जोड़ता है। माखनलालजी की तरह ही उन्हें भी एकाधिक बार जेल जाना पड़ा। स्वालंबन, आत्माभिमान, राष्ट्रीयता इस धरातल पर माखनलाल चतुर्वेदी उनके बरक्स खड़े होते हैं। कवि बायरन का जीवनकाल भी सुब्रमण्यम भारती की तरह कम रहा। दोनों का जीवन काल लगभग सैतीस-अड़तीस वर्ष का रहा। भारतीजी के जीवन का अंत 12 सितंबर 1921 को हुआ तो 22 जनवरी 1788 को जन्मे बायरन की मृत्यु 19 अप्रैल 1824 को यूनान में हुई। महत्वपूर्ण जन्म और मृत्यु की तिथियाँ नहीं होती, महत्वपूर्ण उनके बीच जिया गया जीवन होता है। तीनों कवियों ने दासता से मुक्ति के लिए, अपने लेखन से मशाल जलायी। तीनों ने जीवन के प्रत्येक क्षण को उसकी संपूर्ण अर्थवत्ता में ग्रहण किया। बायरन ने कविता के अलावा उल्लेखनीय गद्य लेखन भी किया, यही बात माखनलाल चतुर्वेदी और सुब्रमण्यम भारती पर भी लागू होती है। अपनी मिट्टी की सुगंध, अपनी मिट्टी-आकाश के लिए जद्दोजहद, अपनी मिट्टी का कर्ज चुकाने की हूक तीनों रचनाकारों में थी, तीनों को आप संकीर्णता के दायरे में नहीं बांध सकते। जिस राष्ट्रवाद की पैरवी ये करते हैं, जिसके लिए "डंके" के मानिंद बजते थे, हुंकार भरते थे वहां संकीर्णता के लिए कोई जगह नहीं- वहां सब बराबर है। स्त्री भी मार्गदर्शक पथ प्रदर्शक है, वहां जाति-धर्म के आधार पर बंटवारा नहीं है। इन्ही सब भावों की अभिव्यक्ति सुब्रमण्यम भारती की रचना करती है। सुब्रमण्यम भारती के रचना संसार को चार भागों में बांट कर भी देख सकते है- एक-संस्कृति, दो- प्रकृति, तीन-समाज चार-राष्ट्र। सुब्रमण्यम भारती की संस्कृति केन्द्रित कविताओं में भारतीय संस्कृति, इतिहास, अध्यात्म और भक्ति के स्वर प्रमुखता से सुनाई दिखायी देते है, पौराणिक चरित्रों को केन्द्र में रख कर भी कुछ कविताएं हैं। योग, परलोक वैदिक जीवन से संबंद्ध कविताओं को भी इसी श्रेणी में रख सकते है। प्रकृति को केन्द्र में रख जो कविताएँ हैं उसमें जड़ चेतन सब वस्तुओं को ईश्वरीय माना है। कवि भारती की कवितायें समाज में विषमता का विरोध करती है। जन्म, जाति, प्रदेश, लिंग, भाषा, रंग, संप्रदाय किसी भी प्रकार का भेद उन्हें स्वीकार नहीं। प्रकृति, उसके विभिन्न रूप भारती के मन में दैवी भावना को उद्दीप्त करते है और भारती अपनी मातृभूमि को ही देवी मानकर उसे कविता, गीत में टेरते हैं - "भारतमाता सप्रभातम", "भारतमाता नवरत्न माला", "भारतीदेवी का त्रिदशांग", "भारत माता", "हमारी माता", "वन्देमातरम", "भूलोक कुमार" आदि कर्णप्रिय गीत इसी श्रेणी के हैं। भारती के काव्य में अध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष भी विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करता है। पौराणिक प्रसंग "युधिष्ठिर की द्यूत क्रीडा" पर उनका खंड काव्य "पांचाली शपथम" आधारित है, पुराण पात्रों के माध्यम से भी भारती ने अंग्रेजों के शासन का विरोध किया, उनके अत्याचारों को आम-जन के सामने रखा। महाकवि भारती की रचनाएँ तमिल में है, हालांकि अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है, अपनी व्यापकता, राष्ट्रीयता, विश्व-बन्धुत्व और समाज के अंतिम आदमी को वाणी देने के कारण उन्हें किसी कठघरे में न तो बांधा जा सकता है न किसी क्षेत्र या काल तक सीमित ही किया जा सकता है।

❖

11 शकुन नगर, खण्डवा 450001
मो. 8718057089

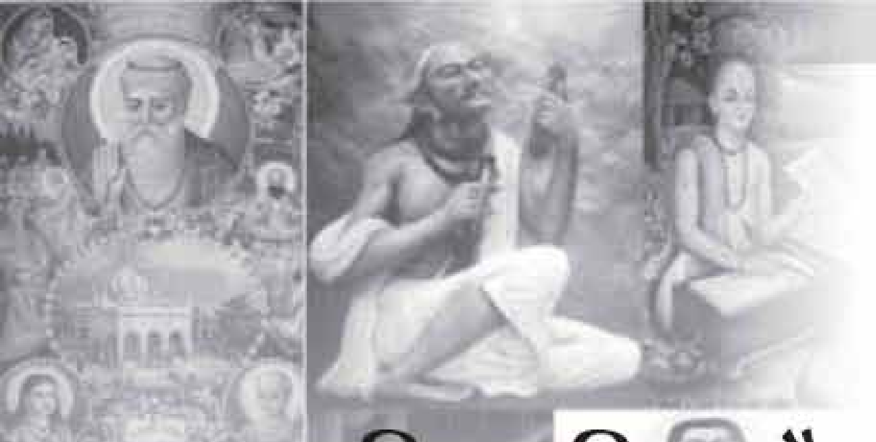

भक्ति साहित्य और यूरोपीय समीक्षक

डॉ. ऋचा मिश्र

बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के के हिंदी साहित्य विषयक योगदान से आज समस्त हिंदी जगत भली प्रकार परिचित है। उनसे प्रेरणा लेकर उनके शिष्य डॉक्टर विनेण्ड कालवार्ट संत साहित्य के अनुशीलन में सतत् संलग्न रहे। लगभग 25 शोध आलेखों में उन्होंने दादू पंथ से संबंधित साहित्य, नामदेव रचनावली, राजस्थानी निर्गुण साहित्य, तथा कबीर और रैदास की पदावली का विश्लेषण किया जो हाइडेलबर्ग, फिलेडेल्फिया, जयपुर तथा जर्मनी में दिए गए उनके व्याख्यानों में उन देशों की हिंदी प्रेमी जनता को संबोधित कर प्रस्तुत किये गये। इसी परंपरा में पोलैंड के वार्सा विश्वविद्यालय की डॉक्टर तातिआना रुत्कोव्स्का का कृतित्व भी श्लाघनीय है। 'मध्यकालीन साहित्य की मूल विशेषताएँ' विषय पर शोध करने वाली डॉक्टर रूत्कोव्स्का ने कबीर एवं तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के कुछ अंशों का पोलिश अनुवाद भी किया।

हिन्दी साहित्य आज विश्व की अमूल्य निधि है। विश्व के लगभग सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों तथा सांस्कृतिक केंद्रों में हिंदी भाषा, साहित्य और प्रमुख रचनाकारों की कृतियों का अध्ययन और चिंतन मनन अनवरत चलता रहता है। विश्व के साथ हिंदी साहित्य का संपर्क, भारत में यूरोपियनों के आवागमन के साथ 1500 से 1600 ईसवी के आसपास प्रारम्भ हुआ। पुर्तगालियों और अंग्रेज व्यापारियों को भारतीय समाज से संपर्क करने के लिए भाषा के अवरोधों को समाप्त करने की आवश्यकता महसूस हुई और इसके लिए उन्होंने अनेक कोश, व्याकरण ग्रंथ आदि लिखे। जॉर्ज हेडली संभवतः प्रथम अंग्रेज थे जिन्होंने 1772 ईस्वी में 'मूर भाषा का व्याकरण' नामक ग्रंथ लंदन से प्रकाशित किया। इसे हिंदी का पहला ऐसा व्याकरण ग्रंथ माना जाता है जिसमें हिन्दुस्तानी की शब्दावली भी दी गई थी। कालांतर में डॉक्टर जॉन गिल क्राइस्ट, मोनियर विलियम्स, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, फ्रेडरिक साइमन ग्राउस, एस एच केलाग जैसे हिंदी प्रेमियों के प्रयासों के परिणाम स्वरूप न केवल हिंदी भाषा, अपितु साहित्य के क्षेत्र भी नए प्रयोगों को बढ़ावा दिया जाने लगा।

भारतीय समाज में लोकप्रिय हिंदी रचनाकारों, विशेषकर भक्त कवियों की वाणियों के अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किए गए। अकेले गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' के तीन अंग्रेजी और एक रूसी अनुवाद सन् 1876 से लेकर 1953 के मध्य प्रकाशित हुए। तुलसीदास के अतिरिक्त कबीर, सूर, रैदास, दादू आदि लोकप्रिय कवियों के काव्य के न केवल अनुवाद हुए अपितु उनकी साहित्यिक विशेषताओं से भी यूरोप की जनता को परिचित कराने की प्रक्रिया धीरे धीरे जोर पकड़ती गई। परिणाम स्वरूप हिंदी भाषा और साहित्य इंग्लैंड के अलावा सोवियत संघ, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि यूरोप के अन्य देशों में भी लोकप्रिय होने लगा तथा गैरासिम लेबेदेव, पावेल याकोव्लेविच पेत्रोव, सेर्गेई ओल्देनबर्ग, अकादमीशियन वारान्निकोव, गार्सासंदि तासी, एल पी तेसीतोरी, मोरिस विन्टरनिट्स जैसे अन्य भारतविदों, भाषा शास्त्रियों और हिन्दी सेवियों के प्रयासों के फलस्वरूप यूरोप के प्रायः सभी महत्वपूर्ण देशों में हिंदी साहित्य के अध्ययन अध्यापन और अनुशीलन की स्वस्थ और सुदृढ़ परंपरा का सूत्रपात हुआ।

लोकप्रियता और भारतीय जनमानस और चेतना में व्याप्ति के कारण हिंदी का भक्ति साहित्य प्रारंभ से ही यूरोपीय भारतविदों, विद्वानों और हिंदी प्रेमियों के बीच अनुसंधान का प्रिय विषय रहा। अनुवादों के अतिरिक्त भक्ति काल के प्रमुख कवियों के साहित्य संबंधी अन्याय विषयों पर प्रारंभिक शोधपरक निबन्ध, आलोचनाएँ तथा तुलनात्मक अनुशीलन जैसे अनेक महत्वपूर्ण प्रयास यूरोपीय विद्वानों द्वारा किये गये। इटली के लुई पियो तेसीतोरी ने 'रामचरितमानस और रामायण

'विषय पर शोध प्रबंध सन् 1911 में प्रकाशित किया, जिसमें बाल्मीकि 'रामायण 'और तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के समान स्थलों की तुलना कर बाल्मीकि 'रामायण' को मानस का प्रमुख स्रोत सिद्ध करने का प्रयास किया। तेसीतोरी से पूर्व इंग्लैंड के जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन 'दि मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदोस्तान 'नामक विशाल आलोचनात्मक ग्रन्थ के रूप में समग्र हिंदी साहित्य और विशेष रूप से भक्ति साहित्य के विविध पक्षों पर सारगर्भित आलोचनाएँ प्रकाशित कर चुकी थे, जिनमें भक्तों के जीवन वृत्त और उनके द्वारा स्थापित मतों की विवेचना की गई। इसके अतिरिक्त 'इंडियन एन्टीक्वेरी' तथा 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के विभिन्न जरनलों में ग्रियर्सन ने प्राय: संपूर्ण मध्यकालीन हिंदी साहित्य की विविध दृष्टियो से आलोचनात्मक टिप्पणियाँ और व्याख्यान प्रस्तुत कर इस काल को अन्य विदेशी जिज्ञासुओं के मध्य चर्चा का विषय बना दिया। परिणामत: बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के (रामकथा 1962) निकल मैक्निकल (दि रिलीजस क्वेस्ट ऑफ इंडिया 1915) आई एन कारपेंटर (थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास 1918) जे एन फर्क्यूहर (प्राइमर ऑफ हिन्दूइज्म 1920) जे ई कारपेंटर (थीज्म इन मिडिवल इन्डिया 1919) तथा रूस के अकादमीशियन वारान्निकोव का मानस का वृहद रूसी अनुवाद (रामचरितमानस ईली रामायण 1948) जैसे महत्वपूर्ण विवेचना परक ग्रंथ अंग्रेजी के अतिरिक्त रूसी, इतालवी और फ्रेंच भाषाओं में भी प्रकाशित किये गये। इसी क्रम में हंगरी के एलेक्जेंडर चोमा दे कोरोश (1831) योजैफ शिमदत (1868) आर्पाद देब्रेजानी (1957) और वेरा गेथी (1971) तथा जर्मनी के मोरिस विन्टरनिट्स और चेकोस्लोवाकिया के व्लादिमिर मिल्टनर (1962) के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इन समस्त महानुभावों के कृतित्व के परिणामस्वरूप हिंदी का भक्तिकालीन साहित्य, भारत के सीमित भवन को लांघकर यूरोप के विशाल भुवन में शनै शनै लोकप्रिय होने लगा तथा 80 के दशक तक आते आते यह एक तरह से भारतीयता का ध्वजवाहक महत्वपूर्ण स्तंभ माना जाने लगा। भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत तथा संचार माध्यमों की वृद्धि ने इस परंपरा को बहुमुखी और सुदृढ़ बनाया तथा आज भी इस क्षेत्र में नित नूतन शोध, अनुवाद और विश्लेषण यूरोपीय विद्वानों द्वारा किए जा रहे हैं।

लंदन विश्वविद्यालय के 'स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज' में संस्कृत एवं हिन्दी के अध्यापन में कार्यरत रहे, डॉ जेन ब्रजेन्स्की ने 'विमेन सेन्ट्स इन गौड़ीय वैष्णविस्म' शीर्षक शोध लेख लिखा जो 'वैष्णवी 'नामक पुस्तक में सन 1996 में प्रकाशित हुआ। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि प्राप्त डॉ ए जे एल्स्टन ने 'उत्तर शंकराचार्य अद्वैत सिद्धान्त' पर विशेष शोध करने के साथ साथ मीराबाई के पदों का अंग्रेजी अनुवाद 1980 में प्रकाशित किया। भक्ति के मूल तत्व को व्याख्यायित करते हुए उन्होंने कहा कि "हिंदू धर्म की मूल वृत्ति अनेकता में एकता खोजना है जो काल और समय की सीमाओं में बद्ध हैं। सभी संप्रदाय अपने अपने तरीके से भिन्न भिन्न स्तरों की सघनता और तत्परता के साथ यही कार्य करते हैं।"1 अपने ग्रंथ की भूमिका में लेखक ने संपूर्ण भारतीय भक्ति परंपरा का मूल्यांकन करते हुए उसमें मीरा के विशिष्ट स्थान को व्याख्यायित किया है। इंग्लैंड की ही एक अन्य विदुषी हाइडी पाउवेल्स ने हरिराम व्यास कृत 'रासपंचाध्यायी का विश्लेषणात्मक अध्ययन' शीर्षक लेख ' स्टडीज इन साउथ एशियन डिवोशनल लिटरेचर' नामक निबंध संग्रह मे प्रकाशित किया जो मनोहर पब्लिकेशन दिल्ली से 1994 में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि हरिराम व्यास के कृतित्व को विवेचित किया है। उनकी स्थापना है कि हरिराम व्यास का भक्तिमार्ग उस युग का परिचायक है जब निर्गुण और सगुण दोनों ही भक्त एक ही मार्ग के अनुयायी स्वीकारे जाते थे। 'दि कोर ऑफ दि बानी ऑफ रैदास 'नामक शोधपरक लेख के रचयिता पीटर फ्रीडलैंडर ने संत रैदास के कुछ चुने हुए छन्दों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि "रैदास की बानी विभिन्न परिवर्तित रूपों मे सुविधानुसार नाथ सिद्धों, दादूपंथियों तथा सिक्खों द्वारा भी अपनायी गई। उनकी साधना को सही रूप में समझने के लिए मौखिक परंपरा जिसमें उनके कृतित्व को जन्म दिया तथा लिखित परम्पराएँ जिसने कृतित्व को सुरक्षित किया के मध्य पारस्परिक संबंधों को पहचानना पड़ेगा। "2

इस प्रकार हम देखते हैं कि यूरोप में हिंदी साहित्य का अनुशीलन, मात्र सूचना परक न होकर गूढ़ विवेचना परक होता चला जाता है तथा 80-90 के दशक तक आते आते इसमें उच्च स्तरीय गवेषणात्मक ग्रंथों तथा विचारोत्तेजक मौलिक स्थापनाओं का भी समावेश होने लगता है। इस उत्साहवर्धक प्रगति का शोध और समीकृत मूल्यांकन करने के लिए यूरोप के अनेक प्रमुख विश्वविद्यालयों में मध्यकालीन साहित्य को केंद्र में रखकर संगोष्ठियाँ भी आयोजित की गई। इनमें अप्रैल 1979 में ल्यूवेन, बेल्जियम की कैथोलिक यूनिवर्सिटी में आयोजित 'मध्यकालीन भक्ति कान्फ्रेंस' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमें पूरे यूरोप के लगभग 35 विद्वानों ने भाग लिया तथा सम्पूर्ण भक्ति साहित्य के अन्यान्य पक्षों पर वार्ताओं और गोष्ठियों का आयोजन किया गया। इसके पूर्व सन् 1954 में भी रूस में 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरियंटललिस्ट' का आयोजन हुआ था, जिसमें विश्व के प्राय: समस्त देशों के विद्वानों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। ऐसे सकारात्मक परिवर्तनों एवम् आयोजनों के सुफल स्वरूप भक्तिकालीन साहित्य एक ओर संपूर्ण यूरोप में लोकप्रिय अनुसंधान का विषय बना तथा दूसरी ओर जर्मनी, डेनमार्क, फिनलैंड, हंगरी, पोलैंड तथा बेल्जियम और स्विट्जरलैंड जैसे देशों में भी शनै शनै अपना स्थान बनाने लगा। इटली

के वेनिस विश्वविद्यालय में हिंदी की अध्यापिका मारियोला आफरीदी ने जायसी कृत 'चित्रलेखा' उपर शोध किया तथा यहीं के एन्जो तुर्बियानी जी ने तुलसीदास कृत 'वैराग्य संदीपनी' तथा 'दोहावली' के समान अर्थों वाले पदों और छंदों की व्याख्या करते हुए उनके भेदक तत्वों को विस्तार से आलोचित किया। सूरदास के कृतित्व एवं वर्णन सौष्ठव की विवेचनापरक उनका आलेख 'अकादेमिया नेजियोन ले डि लिन्सी' नामक संस्था से 1977 में प्रकाशित किया गया। उनके विचारानुसार ''नंददास की भाषा सोलहवीं शताब्दी की प्रचलित साहित्यिक ब्रज भाषा के काफी निकट है तथा उनका शब्द चयन उसे साहित्य का एक श्रेष्ठतम रूप प्रदान करता है।''4 फ्रांस की ही डॉ शार्लौत वादविल हिंदी के यूरोपीय विद्वानों में शीर्ष स्थान पर अवस्थित हैं। उन्होंने 'रामचरितमानस के स्रोत और उनका रचना क्रम' विषय पर महत्वपूर्ण शोध कार्य किया तथा कृष्ण भक्ति संप्रदाय से संबंधित विविध विषयों पर छह निबंध प्रकाशित किए जो 1976-1982 तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। संत साहित्य के अन्तर्गत उनके चार शोध लेख 'कबीर वाणी' (पाण्डिचेरी 1981) 'दि संत ट्रेडीशन इन मिडीवल इंडिया' (बर्कले 1979) 'चोखामेला दि सैण्ट ऑफ महाराष्ट्र' (हाइडेलबर्ग 1981) तथा गुरुग्रंथ में प्राप्त संत वाणी का अनुवाद बहुचर्चित रहे। इसके अतिरिक्त डॉक्टर वादविल ने प्रथम बार यूरोपीय पाठकों को भारतीय साहित्य में प्राप्त 'बारहमासा 'की विशिष्ट प्रेमाख्यान परक शैली से परिचित कराते हुए 'बारहमासा इन इंडियन लिटरेचर 'ग्रंथ का प्रकाशन किया जो 1986 में प्रकाशित हुआ।5

यूरोप के अन्य देशों जैसे सोवियत संघ, पोलैण्ड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया आदि देशों के असंख्य विद्वानों ने 50-60 के दशक से लेकर अद्यतन भक्ति साहित्य के विविध पक्षीय अनुशीलन की दिशा मे सार्थक प्रयास किए। चेकोस्लोवाकिया के श्री ओदोलेन स्मेकल हिन्दी के प्रथम यूरोपीय कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके आठ कविता संग्रह 80 के दशक में प्रकाशित हुए जिसमें उन्होनें भारतीय इतिहास, संस्कृति, भाषा और साहित्य के अन्यान्य पक्षों को यूरोपीय पाठकों के सम्मुख उजागर किया है। भारत में राजदूत के पद पर कार्य करते हुए स्मेकल महोदय ने भारतीयता से अनुप्राणित कविताओं के सौन्दर्य से विदेशी जनमानस को भारत के गौरवपूर्ण इतिहास से परिचित कराने का जैसा स्तुत्य प्रयास किया, वैसा पूर्व में किसी अन्य विदेशी कवि द्वारा नहीं किया गया था। इसी प्रकार प्रसिद्ध रूसी भारतविद वारान्निकोव की गौरवशाली परंपरा का निर्वाह करते हुए श्री अलेक्सांद्र सेंकेविच, येवगेनी पेत्रोविच चेलोशेव, सेरगेई सेरेब्रायने जैसे महानुभावों ने भक्ति साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया। श्री सेरेब्रायने ने जयदेव के' गीत गोविंद' का रूसी अनुवाद 1970 में किया। साथ ही चंडीदास, सूरदास, मीराबाई तथा तुकाराम के गीतों का भी रूसी भाषा में रूपांतरण किया। विद्यापति से संबंधित उनका एक लेख 'भक्ति एण्ड आयरनी इन विद्यापति 'साउथ एशियन डिवोशनल लिटरेचर' नामक जर्नल में 1994 में प्रकाशित हुआ है। उनके मतानुसार ''विद्यापति साहित्यिक अभिव्यक्ति के पुरोधा थे। वे उत्तर भारत के लोक कवियों में प्रथम पंक्ति के हक़दार थे।''6

'विश्व भारती' शांतिनिकेतन से हिंदी में पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त हंगरी के डॉ इमरे बंगा ने हंगेरियन कवि बलाज देरि के सहयोग से अनेक मध्यकालीन कवियों जैसे मीराबाई, रसखान, आनन्दघन आदि की कविताओं का हंगेरियन भाषा में पद्यानुवाद किया। उनका एक महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ' सनेह को मारग' वाणी प्रकाशन द्वारा 1999 में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होनें घनानन्द के साहित्य में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उनका नाम घनानन्द नहीं बल्कि आनन्दघन था। स्वयं उनके शब्दों में'' अपने शोध में मैने नई सामग्री जोड़कर तथा प्राचीन सामग्री का पुनर्मूल्यांकन कर पूर्ववर्ती विद्वानों के शोध को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है।''7

बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के के हिंदी साहित्य विषयक योगदान से आज समस्त हिंदी जगत भली प्रकार परिचित है। उनसे प्रेरणा लेकर उनके शिष्य डॉक्टर विनेण्ड कालवार्ट संत साहित्य के अनुशीलन में सतत् संलग्न रहे। लगभग 25 शोध आलेखों में उन्होंने दादू पंथ से संबंधित साहित्य, नामदेव रचनावली, राजस्थानी निर्गुण साहित्य, तथा कबीर और रैदास की पदावली का विश्लेषण किया जो हाइडेलबर्ग, फिलेडेल्फिया, जयपुर तथा जर्मनी में दिए गए उनके व्याख्यानों में उन देशों की हिंदी प्रेमी जनता को संबोधित कर प्रस्तुत किये गये। इसी परंपरा में पोलैंड के वार्सा विश्वविद्यालय की डॉक्टर तातिआना रुत्कोव्स्का का कृतित्व भी श्लाघनीय है। 'मध्यकालीन साहित्य की मूल विशेषताएँ ' विषय पर शोध करने वाली डॉक्टर रुत्कोव्स्का ने कबीर एवं तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस 'के कुछ अंशों का पोलिश अनुवाद भी किया। स्विट्जरलैण्ड के लाउसेन विश्वविद्यालय में अध्यापिका डॉक्टर माया बर्जर का शोध परक लेख' मीरा का योग ' बेनियन ट्री नामक पुस्तक में सन 2000 में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया कि मीरा को एक विरहिणी भक्त कवयित्री के रूप में चित्रित कर अनेक विद्वानों ने उनके काव्य में प्राप्त योग प्रधान वर्णनों की उपेक्षा की है।8

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अनुशीलन और विश्लेषण की यह परंपरा जो लघु सरिता के रूप में अठारहवीं शताब्दी के अंत में प्रारंभ हुई थी आज एक विशाल नद का रूप ले चुकी है तथा इसमें यूरोप के प्राय: समस्त प्रमुख राष्ट्र अवगाहन कर चुके हैं। डॉक्टर ग्रियर्सन, डॉक्टर वॉदविल, लोठार लुत्से प्रभृति

विद्वानों के सत्प्रयासों के फलस्वरूप यूरोप में मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अनुशीलन की उर्वर भूमि तैयार हुई जो आज भी नित नूतन वृक्षों से पुष्पित पल्लवित हो रही है। सन् 2001 में इंग्लैंड के श्री फिलिप ल्यूटगेन्डार्फ द्वारा किया गया 'सुंदरकांड' का अंग्रेजी अनुवाद इसका ज्वलंत पर प्रमाण है।9 डॉक्टर रूपर्ट स्नेल तथा डॉक्टर मैक्ग्रेगर, गोस्वामी हित हरिवंश तथा भ्रमरगीत की सारगर्भित टीकाएँ प्रस्तुत कर चुके हैं। डॉ. मैक्ग्रेगर ने लन्दन विश्वविद्यालय से ' स्टडी ऑफ अर्ली बृजभाषा प्रोज' विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर पी एच डी.की उपाधि प्राप्त की। इसमें उन्होने प्रारम्भिक बृज भाषा सम्बन्धी गद्य रचनाओं पर दृष्टिपात करते हुए उनका परीक्षण किया। मैक्ग्रेगर की समीक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे एक तटस्थ आलोचक की भांति वस्तु का वाह्य मूल्यांकन नहीं करते, अपितु समाज की निरन्तर गतिमान भावधारा और विचारधारा के बीच विषय का सापेक्ष निरीक्षण कर उससे निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास करते हैं। इसी श्रृंखला में डॉ रूपर्ट स्नेल ने बड़े श्रमपूर्वक गोस्वामी हितहरिवंश द्वारा रचित ' हितचौरासी ' के संस्करणों, टीकाओं तथा पाण्डुलिपियों की खोज तथा संकलन का कार्य किया। इसके अतिरिक्त 'सुदामा चरित ' की पाण्डुलिपियों को खोजने का महत्वपूर्ण कार्य भी इन्होंने श्रमपूर्वक सम्पन्न किया। इंग्लैड के हिन्दी छात्रों के लिए उन्होने एक बृजभाषा रीडर भी तैयार की जिसमें सूर, रसखान, घनानन्द आदि के चुने हुए सौ पदों को संग्रहीत किया। सभी पदों की व्याख्यात्मक टीका शब्दार्थ तथा अनुवाद साथ ही दिए गए हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि, आज यूरोप के लगभग समस्त प्रमुख विश्वविद्यालयों में जहाँ हिंदी शिक्षण की किसी भी स्तर की व्यवस्था है, भक्ति साहित्य का कोई न कोई अंश पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा अवश्य है।

भक्ति साहित्य की यूरोपीय विद्वानों व समीक्षकों के मध्य लोकप्रियता के अनेक सहज कारण हैं। भक्ति साहित्य विशेषत: लोकभाषा साहित्य, जनमानस में लोकप्रिय एवं स्वीकृत है अत: भारतीयता को समझने और परखने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम जन भाषा साहित्य ही हो सकता था। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन साहित्य को विद्वानों ने भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के काल के रूप में भी चिन्हित किया। वे यह मानते हैं कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अवस्थित पुनर्जागरण की प्रक्रिया का प्रश्न एकाकी नहीं विश्व जनीन है। उदाहरणार्थ लोठार लुत्से का मत है कि विश्व युद्ध के बाद धार्मिक चेतना के रूप में जर्मनी में हुए सुधारों को पुनर्जागरण की भावना का अभिव्यक्तिकरण माना जा सकता है, उसी प्रकार जिस प्रकार बौद्ध मत स्वतंत्र रूप में जापान में विकसित हुआ। सोवियत विद्वान चेलीशेव ने यह मत व्यक्त किया है कि ''यह काल प्राचीन अंधविश्वासों की गहन निराशा को भेदते हुए भारत को नवोन्मेषशालिनी ऊर्जा से आप्लावित करता है। सर्वसाधारण को भक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार देते हुए इस काल के भक्तों और कवियों ने जन साधारण में इस प्रकार की सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रांति का बीजारोपण किया जो उचित समय पाकर भारतीयों को संगठित करने तथा उनमें एकता की भावना भरने का विश्वसनीय माध्यम बन गया।'' 10

आधुनिक यूरोपीय समीक्षकों के लिए भक्ति साहित्य के अध्ययन की एक सबल और समृद्ध परंपरा प्रारंभिक यूरोपीय अन्वेषकों के रूप में पहले से ही विद्यमान् थी। उसे प्रस्थान बिंदु मानकर तथा स्वाध्याय द्वारा भी आधुनिक समीक्षकों ने भक्ति साहित्य को जनसाधारण की आरंभिक राष्ट्रीय भावनाओं के जागरण का साक्षी माना, जिसने लोकप्रिय बोलियों में भी साहित्य के विकास को गति दी। इस समस्त विशेषताओं से प्रभावित होकर यूरोप के आधुनिक विद्वानों, शिक्षाविदों और भारतविदों ने रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति के सगुण और निर्गुण दोनों पक्षों से संबंधित अन्यान्य विषयों को विधिवत समीक्षित कर उसे विश्व मंच पर सतत लोकप्रिय बनाए रखने का भगीरथ श्रम जारी रखा है। बुल्गारिया की सोफिया यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर मिलेना तथा व्लादिवोस्तव (सोवियत संघ) की प्रोफेसर ओल्गा गपोनवा इसका अधुनातम उदाहरण हैं। भविष्य में भी यह सार्थक परंपरा प्रवाहमान रहेगी और नई दिशायें ग्रहण करेंगी यह सदाशा रखी जा सकती है।

संदर्भ:

1. ए जे एल्सटन दि डिवोशनल पोयम्स ऑफ मीराबाई, पृष्ठ9
2. पीटर फ्रीडलैण्डर 'दि कोर ऑफ दि बानी ऑफ रैदास' पृष्ठ475
3. मारिओला आफरीदी 'जायसी की चित्रलेखा' दि बेनियन ट्री पृष्ठ86
4. एफ डेलवाए 'रिसर्च इन बृज दि भंवरगीत ऑफ नंददास' पृष्ठ45
5. देखें 'बारहमासा साहित्य के विदेशी अनुवाद' डॉ. ऋचा मिश्र, गगनांचल जनवरी – मार्च 2010
6. एस डी सेरेब्रायने 'भक्ति एण्ड आयरनी इन विद्यापति' पृष्ठ 334
7. इमरै बंगा 'सनेह को मारग' पृष्ठ 161
8. माया बर्गर 'दि बेनियन ट्री' पृष्ठ428
9. फिलिप ल्यूटगेनडार्फ 'सुन्दरकाण्ड' साहित्य अकादमी पत्रिका जून 2001
10. चेलीशेव' हिन्दी साहित्य की मूलभूत धाराएँ', निबन्ध संग्रह

❖

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, श्री वेकटेश्वर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और गुरु गोबिंद सिंह जी का साहित्य

डॉ. शोभा कौर

गुरु गोबिंद सिंह जी की सामाजिक संरचना में 'चंडी चरित्र' की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनका युग सुर, सुरा और सुंदरी के आगोश में अकर्मण्यता की चरम सीमा पर था। ऐसे में उन्होंने भारतीय समाज को जगाने के लिए परम शक्ति के स्त्री रूप की भरपूर प्रशंसा ही तथा शक्ति आराधन के इस तरीके ने असर भी कर दिखाया। गुरु गोबिंद सिंह जी ने सबसे अधिक शक्ति काव्य सृजित किए हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में तीन शक्ति काव्य प्रमुख हैं 'चंडी चरित्र उक्ति विलास', 'चंडी चरित्र द्वितीय' एवं 'चंडी दी वार' इसके अतिरिक्त अकाल उस्तुति, कृष्णावतार, चरित्रोपाख्यान तथा अन्य रचनाओं में भी आद्या शक्ति का वर्णन है। गुरु गोबिंद सिंह जी की सामाजिक संरचना में दलित विमर्श और स्त्री अस्मिता जैसे प्रश्नों का व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक समाधान है। भजन, भोजन और युद्ध जो किसी समाज के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, उनमें सिख गुरुओं ने जाति-पाति से रहित एक स्वस्थ समाज का सूत्रपात कर; उस समाज के सपने को साकार कर दिखाया जो दो ढाई सौ वर्ष बाद माओत्सेतुंग, लेनिन, स्टॅलिन आदि ने खूनी क्रांतियों से हासिल कर स्थापित किया। 'खालसा पंथ' भारत के सर्वहारा वर्ग का समाज था

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और गोबिंद-साहित्य पर बात करते हुए प्रश्न उठता है कि सांस्कृतिक साम्राज्यवाद क्या है? क्या गोबिंद-साहित्य भारतीय इतिहास और संस्कृति में कोई हस्तक्षेप करता है? क्या उनका काव्य सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए सामर्थ्य प्रदान करता है? क्या अपने समय की चुनौतियों से जूझने के लिए उनका साहित्य कोई विकल्प प्रस्तुत करता है? और क्या वह विकल्प 21 वीं सदी के दूसरे दशक में हमारे लिए उपयोगी है? उनके काव्य की क्या विशिष्टता है और क्या युगीन समानता है? उनका काव्य निरंतरता और परिवर्तन की कैसी मिसाल प्रस्तुत करता है?

- आज धार्मिक असहिष्णुता ज्यादा बढ़ रही है। धर्मों और नस्लों के बीच विग्रह, विघटन, दंगे और युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। वर्तमान में विभिन्न संस्कृतियों को परस्पर युद्धरत करने का विध्वंसक दर्शन कैसे उत्पन्न हुआ? गोबिंद साहित्य में धर्म जातीय स्मृतियों का हिस्सा है या मात्र भौतिक सत्य? उनका साहित्य धर्मसत्ता के खिलाफ धर्मयुद्ध कैसे साबित होता है? राजसत्ता के वर्चस्व को सीधे चुनौती देता उनका काव्य धर्मसत्ता के बरक्स क्या विकल्प प्रस्तुत करता है? क्या गोबिंद-साहित्य में धार्मिक समन्वय के कोई सूत्र मिलते है?
- क्या अर्थशास्त्रीय मूल्यों को दरकिनार करके अध्यात्म और धर्म को साधा जा सकता है? कैसे उनका व्यक्तित्व और कृतित्व भारतीत समाज और इतिहास में 'राज्य के भीतर राज्य की संकल्पना' को साकार करता है?
- 'कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा क्या है? और गुरु गोबिंद सिंह भारतीय समाज की संरचना में ऐसे क्या आमूलचूल परिवर्तन कर देते हैं कि आज उनके जाने के लगभग 313 वर्ष बाद भी सिख समाज अपने गुरु के दिखाए पद-चिन्हों पर अडिग एक कल्याणकारी राज्य की जीवंत संकल्पना से युक्त जीवन जी रहा है?
- धर्मसत्तायें अक्सर धर्म के प्राणतत्व-'अध्यात्म' को नष्ट कर देती है। अपने युग की विषम परिसथितियों में गुरु जी ने कैसे भारतीय अध्यात्म के सर्वश्रेष्ठ मूल्यों- तत्त्वमसि और अहम् ब्रह्मास्मि को पुनर्जीवित किया?
- धर्मसत्ताओं ने लम्बे समय तक भारत में दार्शनिक सत्यों को रहस्य के गुंझलके में छिपाए रखा -और ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष जैसे विषयों को शास्त्रार्थ की स्वस्थ परम्परा से तर्क-कुतर्क की जटिल व्यवस्था द्वारा जन साधारण के लिए दूभर बना दिया। ऐसे में भक्ति आन्दोलन के प्रतिष्ठित संत-सिपाही गुरु गोबिंद सिंह जी ने कैसे दार्शनिक सत्यों को जनसुलभ करवाया?

- गुरु गोबिंद सिंह का समय भाषायी वर्चस्व का चरम युग था। समस्त ज्ञान संस्कृत और फारसी में ही मान्यता प्राप्त था। ऐसे में जनक्रांति के अग्रदूत गुरु जी कैसे भाषायी वर्चस्व को चुनौती देते हैं, और भारत की स्थानीय बोलियों को गरिमा प्रदान करते हैं?, क्या यह भी धर्मसत्ता के अस्तित्व को ललकारने जैसा नही है?
- भारतीय ज्ञान की अक्षुण्ण परम्परा संस्कृत का अनमोल खजाना है, जो मध्य युग में अरबी-फारसी में अनुदित होकर लगातार विदेशों में जा रहा था। ऐसे विकट समय में गुरु गोबिंद सिंह जी ने कैसे अखिल भारतीय स्तर के विद्वानों को अपने विद्या-दरबार में प्रश्रय दिया और समस्त प्राचीन ज्ञान का संरक्षण और संवर्द्धन किया। यह जानना आज सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के उपभोक्तावादी समय में क्यों जरूरी है?

इन प्रश्नों की छटपटाहट गोबिंद साहित्य पर निरंतर दस्तक देती है, और वही दस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है। किन्तु इससे पूर्व अपनी नितांत समसामयिक स्थितियों पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालना अनिवार्य है। भारत के ऐतिहासिक सांस्कृतिक विकासक्रम में आज हम सामंतवाद, पूंजीवाद, उपनिवेशवाद के बाद नव औपनिवेशिक स्थित में पहुँच गये हैं। उपनिवेशवादी षड्यंत्रों का प्रचार नव औपनिवेशिक दौर में जमकर हो रहा है। 'अखंड- भारत' जिसकी मूल संकल्पना में अध्यात्म, धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थनीति की सुदृढ़ सभ्यता और संस्कृति निहित थी उसे समय समय पर अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने अनेक प्रकार से हानि पहुँचाने की कोशिश की और भौतिक सम्पदा की लूटपाट में काफी हद तक सफल भी हुए। परन्तु अंग्रेजों द्वारा भारत को उपनिवेश बनाए जाने पर यहाँ के ऐतिहासिक सांस्कृतिक मूल्य-व्यवस्था का जो क्षरण और संक्रमण हुआ ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। विभेद की संस्कृति, विभ्रम, द्वंद्व और अपनी ही सभ्यता और संस्कृति पर अविश्वास जैसी प्रवृतियां उपनिवेशवाद की देन हैं, जिन्हें भारत में 'इंजेक्ट' किया गया, जिससे हम 'ओटो इम्यून' की स्थिति में पहुंच गए और अपनी ही संस्कृति के प्रति हमारा रवैया शत्रुतापूर्ण हो गया। हम ठीक और गलत में विवेक खोकर दिग्भ्रमित होकर आपस में ही लड़ने झगड़ने में उलझ गए।

आज पश्चिमी देश अध्यात्म की गहराइयों की खोज में हमारी संस्कृति को अपनाने को लालायित हैं और हम सब कुछ होते हुए भी दरिद्र बन चुके हैं! ऐसे सांस्कृतिक संक्रमण में गुरु गोबिंद सिंह जी का जीवन और साहित्य हमारे लिए प्रकाश स्तंभ है। गुरु गोबिंद सिंह ने भारतीय संस्कृति का क्षैतिज और रेखीय (Horizantal and Verical) दोनों तरह का विस्तार और विकास किया। 'श्री दसम ग्रन्थ' इस मंथन से निकला अनमोल रत्न है। जिसमें 16 रचनाएं हैं- जैसे जाप, अकाल उस्तुति, विचित्र नाटक, चंडी चरित्र, उक्ति विलास, चंडी चरित्र द्वितीय, चंडी दी वार, ज्ञान प्रबोध, चौबीस अवतार, महँदी मीर, ब्रह्मावतार, रुद्रावतार, स्फुट सवैये, शस्त्रनाममाला, चरित्रोंपाख्यान, जफरनामा तथा हिकायतें। यह सभी रचनाएं बड़े आकार के 1428 प्रश्नों के ग्रंथ रूप में मुद्रित हैं जिनमें क्रमांक 6 की रचना चंडी दी वार पंजाबी भाषा में है और क्रमांक 15 और 16 जफरनामा और हिकायतें फारसी भाषा में हैं। दसम ग्रंथ का अधिकांश भाग हिंदी रचनाओं से युक्त हैं। 'श्री दशम ग्रंथ' में भारतीय समाज, इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन, राजनीति और अर्थशास्त्र के ऐसे मूल्य विद्यमान हैं जिनके कारण इस ग्रंथ का महत्व अक्षुण्ण है।

(I) धर्म, धर्मसत्ता और धर्मयुद्ध शस्त्र-शास्त्र का एकीकरण

भारतीय समाज में धर्म एक विस्तृत अवधारणा थी, जिसमें नैतिक मूल्य, जीवन-दर्शन, राजनीति, अर्थव्यवस्था, विदेश नीति और समस्त सामाजिक संरचना धर्म से ओतप्रोत थी। धर्म और राजनीति का समीकरण हमारे यहाँ अत्यंत प्राचीन है। हमारे यहां राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था और वह निरंकुश न हो जाए इसलिए उसे धर्म पुरोहितों से परामर्श लेना अनिवार्य था। किंतु समयान्तराल में यह समीकरण बुरी तरह से गड़बड़ा गया। गुरु गोबिंद सिंह ने इस समीकरण को अपने तरीके से सुलझाया। उनके साहित्य (ब्रह्मा-अवतार-कथन) में जिन राजाओं का वर्णन किया गया है। उससे स्पष्ट होता है कि-

1. गुरु जी का मकसद उन पौराणिक- ऐतिहासिक राजाओं के कार्यों द्वारा एक तो संसार में दुनियावी राज की नश्वरता को दर्शाया गया है।
2. दूसरा, इन दुनियावी राजाओं में भी उन राजाओं की प्रशंसा मिलती है उन्होंने आम जनता की सुख सुविधाओं का ध्यान रखा।
3. इसके माध्यम से गुरु जी की राजव्यवस्था को भी समझा जा सकता है।

- **धर्म सत्ता के खिलाफ धर्म युद्ध**

विश्व के 57 इस्लामिक देशों में शामिल होने से अगर भारत बच पाया और अपनी अस्मिता बचा पाया है तो तो इसके ऐतिहासिक राजनैतिक कारण जानने बेहद जरूरी हैं। बुल्लेशाह कहते हैं-

'ना कहूँ जब की ना कहूँ तब की
बात कहूँ मैं अब की,
अगर ना होते गुरु गोबिंद सिंह
सुन्नत होती सबकी'

वक्त की हुकूमत को सीधी चुनौती भारतीय इतिहास में दो ही युग पुरुषों ने दी थी- शिवाजी और गुरु गोबिंद सिंह जी। उनमें भी गुरु गोबिंद सिंह का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि तलवार के

साथ-साथ उनकी कलम ने भीऔरंगजेब को उसकी 'करनी' की याद दिलाई, पश्चाताप करने पर मजबूर किया और सही निर्णय का विवेक जागृत किया। यह विश्व के क्रांतिकारी इतिहास में दुर्लभ तथ्य है। क्रांतियों में व्यापक नरसंहार वर्णन तो अक्सर मिल जाता है किंतु सशस्त्र क्रांति के साथ वैचारिक क्रांति के माध्यम से शत्रु को सोचने पर मजबूर करना और सही निर्णय लेने पर सहमत कर पाना सिर्फ गुरु गोबिंद सिंह ही कर सकते थे। किसी की हिम्मत नहीं थी कि औरंगजेब की तरफ ऊँगली भी उठाए और उसे कुछ कह सके परंतु गुरु जी ने उसे उसकी कमियां याद दिलाई और खुले तौर पर युद्ध की चुनौती दी।1

धर्म के ताने-बाने में बुनी उनकी कविता धर्म को धर्माचार्यों के चंगुल से मुक्त कर जीवंत स्मृति का हिस्सा बनाती है-

'जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो'

एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि धर्म और संप्रदाय में क्या अंतर है? 'धर्म' शब्द का सही अर्थ जाने बिना ही इसका निरंतर प्रयोग होता रहा है और अब भी हो रहा है। धर्म शब्द का सामान्य अर्थ है 'जिसे धारण किया जाए- 'धारयती इति धर्म' लेकिन इस शब्द को हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाई शब्दों के साथ जोड़कर प्रयोग किया जाना कितना उचित है, यह तो आप समझ सकते हैं। क्योंकि हिंदू मुस्लिम, सिख, ईसाई संप्रदाय है धर्म नहीं बल्कि सम्प्रदाय है। इन संप्रदायों में धर्म के लक्षण एक समान है। धर्म के 10 लक्षण बताए गए हैं-

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीः विद्या, सत्यम क्रोधो दो दशकं धर्म लक्षणम्।।2
(मनुस्मृति, 6/91)

अर्थात धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धीः, विद्या, सत्य और अक्रोध, धर्म के 10 लक्षण हैं। यह समस्त लक्षण उपरोक्त चारों संप्रदायों में नाम-भेद के साथ स्वीकार्य हैं। तो अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या धर्म से 'निरपेक्ष' हुआ जा सकता है? क्या 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द सही है? अंग्रेजी के सेकुलरिज्म का सही अनुवाद संप्रदाय निरपेक्ष तो माना जा सकता है किंतु धर्मनिरपेक्ष बिल्कुल सही नहीं है।

(II) राज्य के भीतर राज्य-आर्थिक क्रांति

अब प्रश्न उठता है कि क्या अर्थशास्त्रीय मूल्यों को दरकिनार करके अध्यात्म और धर्म को साधा जा सकता है? जिसका उत्तर है-नहीं'। गुरु गोबिंद सिंह जी ने जाति-पाती विहीन खालसा पंथ की सथापना की, जो मुख्यतः सैन्य संगठन था। एक सैन्य संगठन के लिए अस्त्र शस्त्र, घोड़े, हाथी, भंडार-गृह, सैन्य प्रशिक्षण, भोजन आदि की व्यवस्था की। गुरु जी ने अखिल भारतीय स्तर के श्रेष्ठ साहित्यकारों और कलाकारों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया था। इस संरक्षण में धन की पर्याप्त व्यवस्था होती थी। सिख गुरुओं ने कई नगर बसाए, व्यापार को प्रोत्साहित किया, कुएँ और बावड़ियाँ खुदवाई, शस्त्र निर्माण के लिए फैक्ट्रियां लगवाई और इस प्रकार उद्योग धंधों को विकसित किया गुरु गोबिंद सिंह के समय तक सिख समाज काफी उन्नति कर चुका था, इसलिए उसके समानांतर पहाड़ी राजे उनसे ईर्ष्या करते थे तथा वे मुगल शासक औरंगजेब की आँख के कांटा बन चुके थे।3

(III) भारी भुजान को भारी भरोसो: सुदृढ़ सामाजिक संरचना

सभी सिख गुरुओं ने 'कल्याणकारी राज्य की अवधारणा' को साकार किया। उस समय की सामाजिक संरचना की नब्ज को पहचानते हुए, प्रथम गुरु नानकदेव से लेकर दसम गुरु तक सबने भारतीय समाज की आंतरिक और बाहरी संरचना में आमूलचूल परिवर्तन किये। मध्यकाल में जब भारतीय समाज पूर्णरूपेण शक्ति विहीन होकर गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, तो गुरु गोबिद सिंह जी ने ऐसे ही सांस्कृतिक विघटन के घोर संकट काल में भारतीयों को उनकी शक्तियां जगाने एवं कर्मठता का पाठ पढ़ाने के लिए शक्ति का आह्वान किया।

'या कल मै सभ काल किरपान के, भारी भुजान को भारी भरोसो'।

'कोई किसी को राज न दे है।
जो ले है निज बल सों ले है॥'

गुरु गोबिंद सिंह जी की सामाजिक संरचना में 'चंडी चरित्र' की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनका युग सुर, सुरा और सुंदरी के आगोश में अकर्मण्यता की चरम सीमा पर था। ऐसे में उन्होंने भारतीय समाज को जगाने के लिए परम शक्ति के स्त्री रूप की भरपूर प्रशंसा ही तथा शक्ति आराधन के इस तरीके ने असर भी कर दिखाया। गुरु गोबिंद सिंह जी ने सबसे अधिक शक्ति काव्य सृजित किए हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में तीन शक्ति काव्य प्रमुख हैं 'चंडी चरित्र उक्ति विलास', 'चंडी चरित्र द्वितीय' एवं 'चंडी दी वार' इसके अतिरिक्त अकाल उस्तुति, कृष्णावतार, चरित्रोपाख्यान तथा अन्य रचनाओं में भी आद्या शक्ति का वर्णन है। गुरु गोबिंद सिंह जी की सामाजिक संरचना में दलित विमर्श और स्त्री अस्मिता जैसे प्रश्नों का व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक समाधान है। भजन, भोजन और युद्ध जो किसी समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है उनमें सिख गुरुओं ने जाति-पाति से रहित एक स्वस्थ समाज का सूत्रपात कर उस समाज के सपने को साकार कर दिखायाय जो दो ढाई सौ वर्ष बाद माओत्सेतुंग, लेनिन, स्टॅलिन आदि ने खूनी क्रांतियों से हासिल कर स्थापित किया। 'खालसा पंथ' भारत के सर्वहारा वर्ग का समाज था और गुरु गोबिंद सिंह भारत के पहले लोकतांत्रिक समाज के क्रांतिकारी नेता हैं जिनके नेतृत्व में भारतीय समाज ने स्वतंत्रता, समानता और न्यायशील समाज के स्वप्न को सच कर दिखाया।

(IV) दार्शनिक सत्यों की सर्वसुलभ उपलब्धि

अध्यात्म के चरम अनुभव के बाद ही कोई ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष आदि दर्शन के विषय में बता पाने में समर्थ हो सकता

है। 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' और 'श्री दसम ग्रन्थ साहिब' की सम्पूर्ण वाणी 'धुर की बाणी' और 'अनुभव प्रकाश' है। भारतीय परिवेश में दर्शन जीवन जीने की प्रक्रिया है, तर्क विलास नहीं। दर्शन वाद-विवाद का विषय नहीं हो सकता, फिर हैरानी होती है कि भारतीय परम्परा में विभिन्न दार्शनिक विचारों को 'वाद' की संज्ञा से अभिहित क्यों किया गया, जैसे- अद्वैतवाद, मायावाद, आदि। गुरु जी ने अपने समय में व्याप्त विभिन्न दार्शनिक मतभेदों का विरोध किया जो अत्यंत विकृत अवस्था में पहुँच चुके थे और स्वस्थ दार्शनिक सत्यों का उद्घाटन किया।

(V) भाषायी वर्चस्व को चुनौती

गुरु जी ने भारतीय राष्ट्र में भाषा के वर्चस्व को समाप्त कर संस्कृत के सभी श्रेष्ठ ग्रन्थों का जनमानस की भाषा में अनुवाद किया और अखिल भारतीय स्तर के विद्वानों को अपने दरबार में प्रश्रय दे कर उनसे भी यही कार्य करवाया। गुरु गोबिंद सिंह के समकालीन रीति कवि राज दरबारों में पैसों और यश की खातिर अपने आश्रयदाताओं की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा में लगे थे।रीतिकाल के अधिकांश प्रमुख कवि चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपतिमिश्र, और देव औरंगजेब के समकालीन थे किन्तु किसी ने भी औरंगजेब की नीतियों, हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचार और सम्पूर्ण देश में हो रही उथल पुथल का रंचमात्र भी उल्लेख नहीं किया, जबकि गुरु जी दो महत्वपूर्ण रचनाओं : विचित्र नाटक और जफरनामा में न केवल गुरु जी के जीवन से प्रत्यक्ष जुडी घटनाओं का उल्लेख है, अपितु ये समसामयिक राजनैतिक, ऐतिहासिक घटनाओं का जीवंत दस्तावेज है। इतिहासकार गोकुल चंद नारंग अपनी पुस्तक 'ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सिखिजम' में लिखते हैं "जब उन्होंने कलम उठाई, उस वक्त भारतीय साहित्य के भक्ति और श्रृंगार रसपूर्ण साहित्य में तलवार की लहर चलाना आसान काम नहीं था। कविता जैसी नाजुक देवी को बंदूक और तलवार पकड़ा कर लहू की बहती धाराओं में ला खड़ा करना किसी मर्द कभी का ही काम था"4

(VI) विद्या दरबार-अनुवाद के माध्यम से ज्ञान परम्परा का संरक्षण

गुरु गोबिंद सिंह जी 17 वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य की महती विभूति हैं। वे युगीन चेतना के दिशा-निर्देशक एवं विद्या-दरबार के संस्थापक के रूप में सर्वमान्य रहे। उनका विद्या दरबार मध्ययुग में सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र के रूप में उभरकर सामने आता है। वस्तुत: किसी राष्ट्र के निर्माण और सबलता के लिए तीन तत्व परमावश्यक हैं-अपनी पूर्व परम्परा के प्रति गौरव की भावना, दर्शन और साहित्य के माध्यम से जातीय दृष्टिकोण की सबल प्रतिष्ठा और अपने समाज के भीतर मानवतावादी दृष्टि की स्थापना, ऐसी दृष्टि जिससे मानव-मानव में कोई भी विभेद न हो। दसम गुरु ने तीनों ही तत्त्वों को क्रियात्मक रूप दिया है, इसलिए वे सच्चे राष्ट्र-निर्माता हैं।5

उपभोक्ता संस्कृति की भूमंडलीय बहसों में गुरु गोबिंद सिंह जी कभी ना भुलाए जाने वाले चिंतक हैं। भारत अपनी परंपरा और संस्कृति को खोकर ज्यों-ज्यों भूमंडलीय बाजारवाद की ओर लपकेगा, गोबिंद सिंह के विचार और अर्थवाहन साबित होंगे। उन्होंने एक नया इतिहास भी रचा जिसमें से एक नई संस्कृति ने जन्म लिया। उन्होंने अपने समय की नब्ज को पहचानते हुए भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम अतीत पर पड़ी सदियों की धूल झंखाड़ को झाड़ पहुंचकर उसके वास्तविक स्वरूप से रू-ब-रू करवाया। भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषताओं जैसे प्राचीनता, दीर्घजीविता, अनुकूललता, सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, सर्वांगीणता, संचरणशीलता और सर्वव्यापकता के मर्म का उन्होंने गंभीरतापूर्वक मनन किया और अपने समय की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें प्रस्तुत किया।

औपनिवेशिक दौर और नव-औपनिवेशिक दौर की भारतीय स्थितियों में गोबिंद-साहित्य सबसे महत्त्वपूर्ण सबक सिखाता है कि कठिन समय में सदैव अपने सर्वश्रेष्ठ मूल्य-व्यवस्था का पुन: स्मरण अनिवार्य है। हम इतिहास के पन्नों पर देखते हैं कि संपूर्ण राष्ट्रीय स्वधीनता आन्दोलन अपने श्रेष्ठ मूल्यों को न केवल पुन: स्मरण करता है, अपितु राजा राममोहन राय और विवेकानंद उस भूल को सुधारते हैं, जो मैकाले की शिक्षा-पद्धति से शुरू हुई, जब उसने भारतीय शिक्षा-व्यवस्था से धर्म और अध्यात्म को निकाल कर बाहर फेंक दिया था। भूमंडलीकरण के दौर में भी धर्म और अध्यात्म अपर्याप्त और विकृत अवस्था में पहुँच चुके हैं। इसलिए सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से निपटने के लिए भी एक ओर औपनिवेशिक षड्यंत्रों को समझना जरूरी है और दूसरी ओर ऐतिहासिक दृष्टि को दुरुस्त करना भी आज समय की मांग है। यही दोनों कार्य गुरु गोबिंद सिंह का साहित्य मध्य युग में करता है, उसी प्रेरणा की आज पुन:प्रासंगिकता है।

संदर्भ:

1. जफरनामा, छंद 46
2. मनुस्मृति (6.92)
3. सिख-गुरुओं का आर्थिक योगदान, जयराम दास, पृष्ठ 189
4. 'ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सिखिजम' गोकुल चंद नारंग पृष्ठ 159
5. श्री गुरु गोबिंद सिंह जी की शैक्षणिक देन, डॉ अमृत कौर रैना, पृष्ठ 156

आधार ग्रन्थ : श्री दसम ग्रन्थ

❖

एसोसिएट प्रोफेसर, किरोड़ीमल महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

पुष्पिता अवस्थी कृत 'छिन्नमूल' उपन्यास में गिरमिटिया कृषकों की वेदना

अकरम हुसैन

सूरीनाम पहुंचकर भारतीय प्रवासी मजदूरों को शर्तबंदी के तहत डच कोलोनाइजर ले गये थे। शर्तबंदी को अंग्रेज़ी में कांट्रेक्ट कहा जाता है। अनपढ़ होने के कारण प्रवासी मज़दूर इस शब्द को नहीं बोल पाते थे क्योंकि सूरीनाम गए अधिकतर मज़दूर निम्न वर्ग के थे। उस समय निम्न वर्ग शिक्षा ग्रहण बहुत कम करता था। क्योंकि वह अपनी मूलभूत आवश्यकताएं ही पूर्ण नहीं कर पाते थे और सवर्णों के यहां मज़दूरी करके अपनी जीविका चलाते थे। सवर्णों में पंडित और ठाकुर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। जो एग्रीमेंट नहीं बोल पाते थे और गिरमिट कहते थे। जिसके कारण कालान्तर में उनकी पीढ़ियाँ गिरमिटिया कहलाती थीं। लेकिन व्यक्तिगत साक्षात्कार में पुष्पिता अवस्थी ने उनको गिरमिटिया कहने के स्थान पर भारतवंशी कहा जो अधिक उपयुक्त शब्द प्रतीत होता है। क्योंकि अगर उनको गिरमिटिया कहा जायेगा तो मनोवैज्ञानिक तौर पर उन्हें हीन भावना का शिकार होना पड़ेगा और भावी पीढ़ियों को भी इसी आग में जलना पड़ेगा। इन्हीं सब संवेदनाओं से परिपूर्ण पुष्पिता अवस्थी ने उन्हें भारतवंशी कहा। जिससे वह अपने पूर्वजों के देश में भी संवेदना के साथ जुड़े रहे और भारतीय संस्कृति, संस्कार और भाषा के वैश्विक प्रतिनिधि बन सके।

''हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों की गुलामी के दमनचक्र से पीड़ित-प्रताड़ित और जमीदारों के शोषण से तंग आकर बहुत से किसान मजदूर अनजान जगह पर जाने को तैयार हो गए थे। इसके बाद परदेश में गुलामी सहने का... और कष्ट सहने का अलग से दस्तावेज बना''।[1]

पुष्पिता अवस्थी कृत 'छिन्नमूल' उपन्यास का यह उद्धारण ब्रिटिश शासन व्यवस्था और उनके दमनचक्र का साक्षात् प्रमाण प्रस्तुत करता है। भारतीय किसानों और मजदूरों की देश छोड़ने की मजबूरी ने उन्हें अपने वतन से ही जुदा कर दिया। जिसकी पीड़ा का विश्लेषण इस ऐतिहासिक दस्तावेज़ी उपन्यास में मिलता है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि प्रवासी से गिरमिटिया बने भारतवंशियों की दारूण कथा पर आधारित है। क्योंकि जब पूरे विश्व में दास-प्रथा लगभग समाप्ति की ओर थी। खेती-किसानी का व्यवसाय करने के लिए कैरेबियाई देशों के शासकों का ध्यान एशिया की ओर गया तो मुख्य रूप से भारत फेहरिस्त में प्रथम स्थान पर रखा गया था। क्योंकि यहां पर ब्रिटिश शासन का राज था और डच कोलोनाईजर सुविधाजनक अनुबंध प्रस्तावित कर सकते थे। डचों ने तय रणनीति के तहत वैसा ही किया गया। ''सूरीनाम देश में हिन्दुसानी मज़दूर लाने के लिए नीदरलैण्ड के सम्राट वेलम तृतीय और इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया के मध्य सन् 1870 में शर्तनामा बनाया गया।''[2]

सूरीनाम देश नीदरलैंड का उपनिवेश था और भारत में ब्रिटिश शासन का दमनकारी राज्य चल रहा था। डच कोलोनाइजर ने शर्तनामा ब्रिटिश शासन के स्वीकार होने के बाद अरकाठियों (दलालो) की सहायता से उत्तर भारत के अति पिछड़े स्थानों से भर्ती शुरू कर दी। भारतीयों मजदूरों के अरकाठियों द्वारा अनेक प्रलोभन दिए गए। जिसमें उनमें एक प्रमुख षड़यंत्र यह भी था कि सूरीनाम को 'श्रीराम धाम बताया गया था। इसको सुनकर कोई भी आस्थावान व्यक्ति धर्म के नशे में अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देगा। क्योंकि भारतीय आरम्भ से ही देवी-देवताओं को अपना अराध्य मानकर पूजा-पाठ करते रहे हैं। यद्यपि यह अरकाठियों का एक षड़यंत्र था। जिसमें भारतीय उनके चंगुल में फंस गए। अरकाठियों को भी डच कोलोनाइजर ने अनेक प्रलोभन दिए थे। ''अरकाठी कमीशन पर मजदूर लाते थे। उन्हें एक आदमी के लिए पाँच रूपये और औरत के लिए इससे अधिक कमीशन मिलता था।''[3] महिलाओं पर अधिक कमीशन मिलने का कारण भी अलग था। क्योंकि जब पूरे दिन मजदूर मेहनत करेंगे तो रात में उनको मनोरंजन के लिए स्त्री चाहिए। उससे भी अधिक उनकी मंशा भारतीय

मजदूरों की स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की थी। इसलिए अरकाठी अधिक से अधिक स्त्रियों की भर्ती करना चाहते थे। स्त्रियाँ मजूदरी करने भारत में जाति ही कम थी। जिसका डच कोलोनाइजर ने लाभ उठाया जैसे कि उपन्यास में विदित है।''ज़मींदारों को देह की भूख मज़दूरों की पेट की भूख से ज्यादा भयानक थी।''[8]

सूरीनाम पहुंचकर भारतीय प्रवासी मजदूरों को शर्तबंदी के तहत डच कोलोनाइजर ले गये थे। शर्तबंदी को अंग्रेज़ी में कांट्रेक्ट कहा जाता है। अनपढ़ होने के कारण प्रवासी मज़दूर इस शब्द को नहीं बोल पाते थे क्योंकि सूरीनाम गए अधिकतर मज़दूर निम्न वर्ग के थे। निम्न वर्ग शिक्षा ग्रहण बहुत कम करता था। क्योंकि वह अपनी मूलभूत आवश्यकताएं ही पूर्ण नहीं कर पाते थे और सवर्णों के यहां मज़दूरी करके अपनी जीविका चलाते थे। सवर्णों में पंडित और ठाकुर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। जो एग्रीमेंट नहीं बोल पाते थे और गिरमिट कहते थे। जिसके कारण कालान्तर में उनकी पीढ़ियाँ गिरमिटिया कहलाती थीं। लेकिन व्यक्तिगत साक्षात्कार में पुष्पिता अवस्थी ने उनको गिरमिटिया कहने के स्थान पर भारतवंशी कहा जो अधिक उपयुक्त शब्द प्रतीत होता है। क्योंकि अगर उनको गिरमिटिया कहा जायेगा तो मनोवैज्ञानिक तौर पर उन्हें हीन भावना का शिकार होना पड़ेगा और भावी पीढ़ियों को भी इसी आग में जलना पड़ेगा। इन्हीं सब संवेदनाओं से परिपूर्ण पुष्पिता अवस्थी ने उन्हें भारतवंशी कहा। जिससे वह अपने पूर्वजों के देश में भी संवेदना के साथ जुड़े रहे और भारतीय संस्कृति, संस्कार और भाषा के वैश्विक प्रतिनिधि बन सके।

उपनिवेशवाद के कर्ता-धर्ताओं ने सूरीनाम पर भारतीय मज़दूरों को केवल कृषि के लिए बुलाया था। जिससे वह अधिक से अधिक धन अर्जित कर सकें। उपन्यास में रोहित और ललिता के संवाद से जो साफ झलकता है। ''ललिता! यू नो, हम सबके आजा-आजी, माता-पिता खेतिहर किसान मजदूर थे।''[9]रोहित वह भारतवंशी माता-पिता का बेटा है जिसके माता-पिता का जन्म सूरीनाम में ही हुआ है और वह अपने पूर्वजों की खेती को ही सींच रहे हैं। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं। क्योंकि जब उनके दादा-दादी भारत आए थे तो वह शर्तबंदी के तहत खेती करते थे। उनको इसके एवज में केवल खाना और एक दो जोड़ी कपड़े उपलब्ध कराये जाते थे जिनसे वह अपना समय काट रहे थे। और आशावादी दृष्टि से भविष्य की योजना बना रहे थे कि समय का कालचक्र अवश्य पलटेगा और इसी क्रम में सूरीनाम को ही अपनी ज़मीन मान चुके थे।अत्यंत गर्मी में मेहनत एवं लगन से फसल उगाते थे जो कि उपन्यास में निहित है। ''सूरीनाम के मौसम में साला यही खराबी है। घाम इतनी तेज कि देहिया बार दे है।''[10] सूरीनाम देश गर्म देशों की श्रेणी में आता है। जहाँ पर पचास डिग्री से भी अधिक की गर्मी पड़ती है जिससे शरीर का तापमान अधिक होने के कारण माँसपेशियाँ हड्डी छोड़ देती है। उस भूमि पर भी भारतीय किसान मजदूरों ने अपनी सहनशीलता, साहस और शौर्य का परिचय दिया है। दरअसल सूरीनाम में जो मुख्यत: फसलें होती थीं वह धान और गन्ने की ही होती है।भारतीय मज़दूर भी इन फसलों को उगाने में निपुण थे, और उनके साथ पेट की भूख और तन ढ़कने का सवाल भी था। जिसको भारतीय श्रमिकों ने अपने उत्साह से जीत लिया था। ''गन्ना ही यहां की खेती थी। जिसकी पेराई से बनने वाली चीनी को 'व्हाइट गोल्ड' कहा गया। जिसने कोलोनाइजर की तिजोरियां भरीं। दरअसल वह मजदूरों की देह का 'रेड गोल्ड' था। जिसे वह मज़दूरी की आंच में पिघलाते थे।''[11] इन गिरमिटिया श्रमिकों ने अनेक कठिनाईयों का सामना किया जो प्रारम्भ में उनकी लगभग दो पीढ़ियों ने भी भुगता, फिर भी आशा की नई किरण, नए सपनों और नई सोच के साथ परिश्रम करते रहे। धीरे-धीरे गिरमिटिया मजदूरों को वहाँ की नागरिकता से जोड़ा गया, उसके बाद उनके बच्चों को शिक्षा के लिए तैयार किया गया। ''सन् 1919 में क्लोनियल कांग्रेस ऑफ एजूकेशन का गठन हुआ। कुली स्कूल के साथ-साथ पब्लिक स्कूल, रोमन कैथोलिक स्कूल, मारीचेतना चर्च फाउण्डेशन''[12] गिरमिटिया मज़दूरों ने मजबूरी में अपने बच्चों को इन स्कूलों में प्रवेश दिला दिया। सरकार भी चाहती थी कि जब इन भारतीयों ने इस देश को अपना मान ही लिया है तो इनको शिक्षा भी देना चाहिए जिससे सभ्य समाज बन सके। लेकिन इन सब कारणों के साथ भारतीय किसान मजदूरों की पीढ़ियों से एक और षड्यंत्र हुआ। जब गिरमिटिया बच्चों को स्कूल भेजने जाते थे तो उनका नामकरण भी ईसाईयत के हिसाब से कर दिया जाता था और उनकी भारतीयता की पहचान को समाप्त करना चाहते थे। ऐसा अस्पताल में नवजात शिशु के भी साथ होता था। वह नाम में कुछ न कुछ अंग्रेजी जोड़ देती थी और भारतवंशियों की पहचान का संकट खड़ा हो गया था जिसके कारण उन्होंने अपनी संस्थाओं को स्थापित करने का प्रयत्न किय। ''हिन्दुओं ने आर्य दिवाकर और सनातन धर्म संस्थाएं गठित कीं। एक समय के खाने के पैसे बचाकर मंदिर बनाए। अराधना शुरू की। कबीरपंथियों के अपने दल बने। मुस्लिम लोगों ने सूरीनामी इस्लामिक यूनियन के तहत खिलाफत अंजुमन और मस्जिदों की रचना

की। इतनी धार्मिक संस्थाओं के बनने के बावजूद वहाँ के हिन्दू-मुसलमान उस समय भी भारतीय और हिन्दुस्तानी थे और आज भी हैं।'[9] इस तरह की जुझारू और संघर्षशील परिस्थिति में भारतीयों ने अपनी धार्मिक संस्थाएं गठित की। अपनी भावी पीढ़ियों को डच के इस षड्यंत्र से भी बचा लिया। भारतीय मजदूरों ने कृषि कार्य करते हुए अपनी संस्कृति, संस्कार और भाषा को भी बचाने का कार्य किया।

सूरीनाम में जो भी कृषि सुधार के कार्य हुए उनमें भारतीय मज़दूरों का ही खून पसीना लगा था। उनके संघर्ष में जुझारूपन तथा अपनी संस्कृति को बचाने का जुनून था। लेकिन डच हमेशा गिरमिटिया मजदूरों के अथक परिश्रम को अपने नाम से प्रचारित करते थे। जिससे उनकी इमेज प्रजा में अच्छी बनी रहे। ''इस धरती पर हल के साथ जुते रहे हमारे हिन्दुस्तानी पुरखे-और इनके साथ-साथ मॉरीशस, ट्रिनीडाड, गयाना, फीज़ी आदि द्वीपों में भी हमारे पुरखों की तरह इन्डोनेशियन, चायनीज आदि के पुरखों ने भी गुलामों से भी अधिक कठोर और निर्दयी मज़दूरी की लेकिन दुनिया भर में इन प्लांटेशनों के नाम रखे गए। विक्टोरिया प्लांटेशन, डच प्लांटेशनों के नाम रखे गए विक्टोरिया प्लांटेशन, डच प्लांटेशन, ब्रिटिश प्लांटेशन।''[10] इस अंश में रचनाकार ने रोहित के माध्यम से सूरीनामी किसानों का प्रतिरोध दर्ज कराने का प्रयत्न किया है। ऐसी स्थिति कमोबेश सभी उपनिवेश देशों की होती थी। अक्सर होता भी यही है काम अच्छा हुआ तो सरकार का उत्साहवर्धन, खराब हुआ तो मज़दूर जिम्मेदार होते ही हैं।

पराई धरती पर गए गिरमिटिया बनकर मज़दूर जहाँ एक ओर कठिन परिश्रम कर रहे वहीं दूसरी तरफ शिक्षा की अलख जगाने का प्रयत्न भी कर रहे थे तथा अमानवीय कार्यों के लिए अपना प्रतिरोध भी दर्ज करा रहे थे। इससे सिद्ध होता है किसान अनपढ़ अवश्य थे लेकिन समय की मार ने उनके अंदर जागरूकता का प्रचार-प्रसार भी किया था। सरकार से भी वो दो-दो हाथ कर रहे थे और अपनी अस्मिता को बचा भी रहे थे। जिसके फलस्वरूप सूरीनाम जब आज़ाद हुआ तो उन्होंने सूरीनाम की संस्कृति को अपने अनुसार ढालना प्रारम्भ कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि सूरीनाम जैसे छोटे देश में भारतवंशी राष्ट्रपति हैं। जो अपने पुरखों के बताए हुए रास्तों पर चलकर देश चला रहा है और भारत देश को गौरवान्वित कर रहा है। क्योंकि भारतीयता उनके डीएनए में निवास करती है। राष्ट्रपति पद की शपथ लेते समय उन्हांने वेद पुराण पर हाथ रखकर वचन दिया कि वह अपने धर्म और देश से कभी अलग नहीं हो सकते। "भारत भूमि का मानव-धन एक समय में ब्रिटिश, फ्रेंच और डच सत्ताधारियों का धन बना। भारत भूमि के मानव ईख की तरह जल जहाजों पर पैसे के लिए कैरिबियाई देशों में लाए गए। कोल्हू के बैल की तरह लगे रहे। इनकी देह के शंख के भीतर इनकी सांसे भारतीय संस्कृति का ही शंखनाद करती रहीं। मज़दूरी के श्रम में यह भारत की स्मृतियों के ही लोकगीत गाते रहे। इन्होंने मन से न अपना देश छोड़ा न अपनी संस्कृति न अपना धर्म और न ही अपना ईश्वर। और यह उन हिन्दुस्तानी मज़दूरों की आत्मशक्ति का बहुत बड़ा सबूत है कि वे न टूटे और न ही बुझे।"[11]

संदर्भ:

1. पुष्पिता अवस्थी छिन्नमूल उपन्यास, अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद पृष्ठ- 177
2. पुष्पिता अवस्थी (संपादक) सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ- 27।
3. पुष्पिता अवस्थी (संपादक) सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ- 28
4. पुष्पिता अवस्थी छिन्नमूल उपन्यास, अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद पृष्ठ- 44
5. पुष्पिता अवस्थी (संपादक) सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ- 14
6. पुष्पिता अवस्थी छिन्नमूल उपन्यास, अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद पृष्ठ- 19
7. पुष्पिता अवस्थी छिन्नमूल उपन्यास, अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद पृष्ठ- 44
8. पुष्पिता अवस्थी (संपादक) सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ- 34
9. पुष्पिता अवस्थी (संपादक) सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य, साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ- 34, 35
10. पुष्पिता अवस्थी छिन्नमूल उपन्यास, अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद पृष्ठ- 77
11. पुष्पिता अवस्थी, छिन्नमूल उपन्यास, अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद पृष्ठ- 25

❖

मोहल्ला तिगड़ी, न्यूरिया हुसैनपुर
ज़िला पीलीभीत (उत्तरप्रदेश) पिन 262305
मो. 8791633435

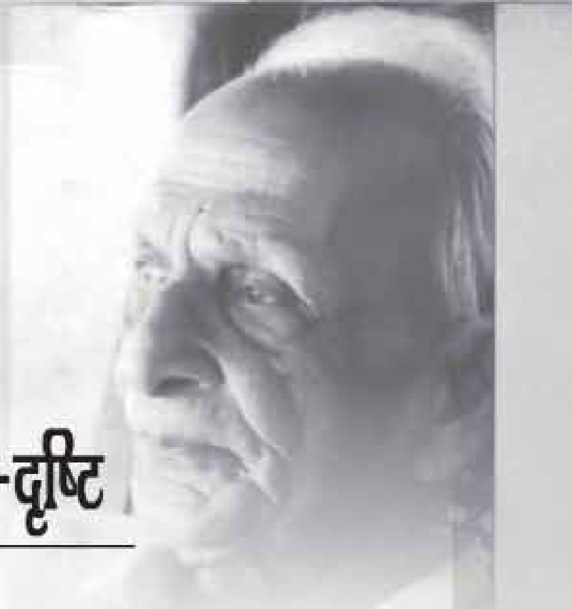

कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि

डॉ. अभिषेक शर्मा

किसी भी राष्ट्र के कवि की लोक-दृष्टि में जहाँ एक ओर समन्वय का भाव रहता है, वहीं दूसरी ओर बहुलता एवं विविधता के दृश्य भी होते हैं। लोकवादी कवि के लिए समाज का कोना-कोना अवलोकनीय और विवेचनीय होता है। समाज के सभी वर्ग और सभी मतावलंबी उसके अपने और प्रिय होते हैं, यहाँ तक कि उसकी चिंतन परिधि में चराचर जगत व्याप्त होता है। लोक की रीति-नीति, आचार-विचार, विधि-विधान, शिक्षा-दीक्षा और तीज-त्योहार उसकी लोक-दृष्टि को एक दृढ़ता प्रदान करते हैं। कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि में 'व्यक्त जगत' ही वास्तविक और सत्य है। 'व्यक्त-जगत' को दार्शनिकों की तरह वे मिथ्या नहीं मानते, अपितु इसे मानवीय कर्मों का प्रसार लोक मानते हैं। प्रसिद्ध कविता 'छोड़ो परम अलौकिक छोड़ो' में वे लिखते हैं कि- "इस दुनिया को सत्य समझ कर, / जी भर इसे जियो। इसकी धड़कन- / इसकी तड़पन- / इसकी विमुखन- / असहनीय हों चाहे जितनी, / इसको परम उदार समझकर / जी भर इसे जियो, / इससे कभी न मुँह मोड़ो, / जोड़ो तो, बस, गहरा नाता इससे जोड़ो, / छोड़ो / परम अलौकिक छोड़ो / लेकिन इसको कभी न छोड़ो,।"

कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में निहित लोकोन्मुखी कार्य-व्यापारों में श्रमजीवी जनता की आशाएं-आकांक्षाएं प्रतिबिंबित होती हैं। सामान्यत: विचारकों का मत है कि लोक 'मौखिक' होता है और संस्कृति 'लिखित' होती है। जबकि यह भी सच है कि यदि 'लोक' का कोई सर्वग्राह्य ढांचा पहले से मौजूद न हो तो किसी भी राष्ट्र को अपनी संस्कृति के निर्माण में अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मेरी दृष्टि में लोक और संस्कृति का संबंध अन्योन्याश्रित है, वैसे ही जैसे परंपरा और आधुनिकता, कला और विज्ञान। कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि पर विचार करते हुए प्रथम दृष्ट्या मैं यह कह सकता हूँ कि 'लोक' के संदर्भ में उनकी दृष्टि तत्वान्वेषी और सहिष्णुतावादी है, जिसमें मानव कल्याण एवं राष्ट्रीय एकता के भाव छिपे हैं। इस संदर्भ में 'पूरा हिंदुस्तान मिलेगा' शीर्षक कविता यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है- "इसी जन्म में, / इस जीवन में, / हमको तुमको मान मिलेगा। / गीतों की खेती करने को/ पूरा हिंदुस्तान मिलेगा।।/ क्लेश जहाँ है / फूल खिलेगा / हमको तुमको ज्ञान मिलेगा। / दीप बुझे हैं / जिन आँखों के / उन आँखों को ज्ञान मिलेगा।/ विद्या की खेती करने को / पूरा हिंदुस्तान मिलेगा।।"1

कवि केदारनाथ अग्रवाल ने यह कविता आजादी के दस वर्षों (सन् 1957 ई.) बाद लिखी। उद्घृत कविता में हम कवि के स्वप्नों का आमजन की आशाओं-आकांक्षाओं से मिलान कर सकते हैं, जो उसकी सर्वसमावेशी 'लोक-दृष्टि' का द्योतक है। संपूर्ण कविता में कवि की पक्षधरता साधारण जनता के हितों के प्रति है, न कि पूंजीपतियों के प्रति। एक तरह से हम यह भी कह सकते हैं कि 'पूरा हिंदुस्तान मिलेगा' शीर्षक कविता कवि की ओर से जनता को सौंपा गया एक आश्वासन-पत्र है जिसमें उसकी उन्नति के सूत्र विद्यमान हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में जन-मन के सपनों को साकार करने की अपार शक्ति है। उनकी लोकाभिरूचि जितनी परिष्कृत है, उतनी ही मर्मस्पर्शी भी। वे पेशे से वकील थे। फलत: उनके स्वभाव में समस्याओं के मूल तक जाना, उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करना और उसमें निहित सत्य को मानव समाज के बीच प्रतिष्ठित करना उनकी दिनचर्या में शामिल था। इसलिए व्यक्त-जगत के प्रति उनकी दृष्टि जितनी पैनी थी, उतनी ही प्रासंगिक भी। कई मायनों में उनका जीवन और लेखन भक्तिकालीन कवियों के सदृश था। उनके लेखन में उनके पेशे की झलक देखी जा सकती है, वैसे ही जैसे - कबीर, रैदास की कविताओं में उनके पेशे से जुड़े अनेक रूपक मौजूद हैं। इस संदर्भ में 'अशोक त्रिपाठी' लिखते हैं कि- "जिंदगी का यथार्थ और यथार्थ की जिंदगी - क्या है - यह उन्होंने कचहरी से ही सीखी। अगर वह वकील न होकर कुछ और होते, तो पता नहीं उनकी कविताओं का यथार्थ इतना प्रामाणिक, धारदार और असरदार होता कि नहीं, कहना मुश्किल है, शायद नहीं होता। रामविलास जी के लिए कविता और वकालत का यह रिश्ता चमत्कार का विषय रहा है। हिंदी साहित्य को यह चमत्कार विरासत में मिला हुआ है। सिद्धों और संत कवियों का साहित्य और उनका पेशा इस चमत्कार को पहले ही संभव कर चुका है। केदारनाथ जी उसी विरासत की अगली कड़ी हैं।" 2

आजीवन न्यायालय से जुड़े रहने के कारण कवि केदारनाथ अग्रवाल का हृदय अभावग्रस्त जनता के प्रति और अधिक दयावान हो गया था। उनके काव्य में मानव जाति के उद्धार के अनेक दृश्य हैं। उनकी लोक चेतना उदात्त मानवीय मूल्यों को जगत में प्रचारित-प्रसारित करने के लिए प्रतिबद्ध है। सर्वहारा वर्ग को न्याय के लिए प्रोत्साहित करते हुए वे लिखते हैं कि- "मैं कलेजा शोषकों का फाड़ता हूँ, / सूदखोरों को, / मिलों के मालिकों को / अर्थ के पैशाचिकों को / भूमि को हड़पे हुए धरणीधरों को, / मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ, / और उनके अपहरण की / दिग्विजयिनी सभ्यता को, / सर्वहारा की नवोदित सभ्यता से जीतता हूँ। / मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ मोरचे पर।" 3

किसी भी राष्ट्र के कवि की लोक-दृष्टि में जहाँ एक ओर समन्वय का भाव रहता है, वहीं दूसरी ओर बहुलता एवं विविधता के दृश्य भी होते हैं। लोकवादी कवि के लिए समाज का कोना-कोना अवलोकनीय और विवेचनीय होता है। समाज के सभी वर्ग और सभी मतावलंबी उसके अपने और प्रिय होते हैं, यहाँ तक कि उसकी चिंतन परिधि में चराचर जगत व्याप्त होता है। लोक की रीति-नीति, आचार-विचार, विधि-विधान, शिक्षा-दीक्षा और तीज-त्योहार उसकी लोक-दृष्टि को एक दृढ़ता प्रदान करते हैं। कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि में 'व्यक्त जगत' ही वास्तविक और सत्य है। 'व्यक्त-जगत' को दार्शनिकों की तरह वे मिथ्या नहीं मानते, अपितु इसे मानवीय कर्मों का प्रसार लोक मानते हैं। प्रसिद्ध कविता 'छोड़ो परम अलौकिक छोड़ो' में वे लिखते हैं कि- "इस दुनिया को सत्य समझ कर, / जी भर इसे जियो / इसकी धड़कन- / इसकी तड़पन- / इसकी विमुखन- / असहनीय हों चाहे जितनी, / इसको परम उदार समझकर / जी भर इसे जियो, / इससे कभी न मुँह मोड़ो, / जोड़ो तो, बस, गहरा नाता इससे जोड़ो, / छोड़ो / परम अलौकिक छोड़ो / लेकिन इसको कभी न छोड़ो, ।" 4

इन काव्य-पंक्तियों में हम व्यक्त-जगत के प्रति कवि की आसक्ति और प्रबल रागात्मकता का भाव देख सकते हैं। काव्य-रचना को कवि केदारनाथ अग्रवाल मानव जीवन का सबसे बड़ा पुरूषार्थ मानते हैं। उनकी दृष्टि में कवि समाज का द्रष्टा ही नहीं, अपितु स्रष्टा भी है। काव्य की रचना प्रक्रिया पर उनके कई वक्तव्य इस बात के प्रमाण हैं। वे मनुष्य के लिए कविता की आवश्यकता को उसके जीवन की आवश्यकता समझते हैं। 'मलय' को लिखे गए एक पत्र में वे कहते हैं कि- "हम सौ फीसदी कवि हैं- प्रगतिशील हैं, प्रतिबद्ध हैं तभी तो प्रेम करें तो सौंदर्य को जमकर सराहते हैं और प्रकृति से मोहित हों तो एक नई सर्वांग सुंदर सृष्टि बना डालते हैं कि लोग देखते रहें-देखते रहें और न अघाएं। जब जन-मजूर-किसान पर लिखें तो वैसे लिखें जैसा पूंजीवादी माहिर कलाकार भी न लिखें।" 5

वस्तुत: कवि केदारनाथ अग्रवाल का सर्वहारा वर्ग के प्रति यही समर्पण भाव उनकी लोक-दृष्टि को एक विश्वसनीय आधार प्रदान करता है। उनकी कविता का मुख्य उद्देश्य मानव मुक्ति एवं स्वावलंबन की चेतना है। उनके साहित्य में संसार की विसंगतियों से लड़ने के अनेक मार्ग परिलक्षित होते हैं। साधारण जनता की विसंगतियों को अपने लेखन का आधार बनाते हुए वे कहते हैं कि- "रच गया मैं / बच गया मैं / बस तुम्हारे वास्ते / काव्य के इस रास्ते / फिर मिला मैं / फिर खिला मैं / बस तुम्हारे वास्ते / प्यार के इस रास्ते।।" 6

कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि को अनश्वरता प्रदान करने में उनके प्रकृति-प्रेम का भी विशेष योगदान है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि प्रकृति का मतलब सिर्फ वनस्पतियाँ ही नहीं होती, अपितु व्यक्त-जगत का प्रत्येक क्षेत्र उसमें समाहित होता है, यहाँ तक कि मनुष्य और मनुष्येतर जीव जगत भी। इस संदर्भ में कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य-वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हुए 'ज्योतिष जोशी' लिखते हैं कि- "केदारनाथ अग्रवाल अपने आरंभिक वर्षों से ही कविता में इस 'लोकधर्मी चेतना' के कायल हो गए थे। प्रकृति को उसकी समग्रता में आँकते हुए केदार ने उस जन को भी करुणा भरी दृष्टि से देखा जो इस दुनिया को सुंदर और जीने लायक बनाने में अपने को ही होम करता जा रहा है। वह सबकी परवाह करता है पर उसे कोई नहीं देखता। केदार का यह जन था किसान और मजदूर।... केदार जन के इन सपनों को आंसुओं में दुलकता देखते हैं तो प्रकृति को, उसके पूरे सौंदर्य में उठाकर उसे एक नए संसार में बदल देते हैं।" 7

नि:सन्देह कवि केदारनाथ अग्रवाल एक नूतन सौंदर्य बोध के कवि हैं, जिसके मूल में चराचर जगत की गतिविधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। अपनी 'हम' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं कि- "हम लेखक हैं, / कथाकार हैं, / हम जीवन के भाष्यकार हैं, / हम कवि हैं जनवादी। / चंद, सूर, तुलसी, कबीर के, संतो के, हरि चंद्रवीर के / हम वंशज बड़भागी। /... हम स्रष्टा हैं / श्रम-शासन के, / मुद मंगल के, उत्पादन के, / हम द्रष्य हितवादी। / भूत, भविष्य, वर्तमान के / समता के शाश्वत विधान के, / हम हैं मानववादी। / हम कवि हैं जनवादी।।"8

उन्होंने अपनी प्रमुख काव्य-कृति 'लोक और आलोक' में लोक-संबंधी अनेक महत्वपूर्ण बातें कही हैं, जो उनकी लोक-दृष्टि पर प्रकाश डालती हैं। उनके इसी संग्रह को आधार बनाकर प्रसिद्ध आलोचक 'डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी' ने लिखा है कि- "केदार की कविता में भारतीय किसान का संपूर्ण परिवेश स्थापित है- खेत, खलिहान, हल, बैल, साग, चना, सरसों, मटर सब। बांदा और बुंदेलखंड का संपूर्ण लोकजीवन अपनी प्रकृति और वैभव के साथ उनकी कविताओं में मिलेगा।"9

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक में गहरी रुचि थी। लोक की समस्त गतिविधियों को उन्होंने अपनी कविता में सजीवता के साथ अंकित किया है। 'लोक' शब्द उनकी कविता में एक विचार के रूप में प्रयुक्त होता है। लोक के प्रति उनकी दृष्टि जितनी स्नेहिल हैं, उतनी ही आलोचनात्मक भी। इस संदर्भ में यहाँ एक काव्यांश उल्लेखनीय है- "एक जोते / और बोए, ताक कर फसलें उगाए, / दूसरा अधरात में काटे उन्हें अपनी बनाए, / मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ। / एक रोटी / के लिए तड़पे सदा अधपेट खाए, / दूसरे घी-दूध-शक्कर का मजा भरपेट पाए, / मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ।...एक विद्या / के लिए व्याकुल रहे, पुस्तक न पाए, / दूसरी विद्या पढ़े, छल-छंद से सोना कमाए, / मैं इसे विधि का नहीं, अभिशाप जग का जानता हूँ। / मैं नया इंसान हूँ अभिशाप को खंडित करूंगा। / शाप के प्रतिपालकों को न्याय से दंडित करूंगा।।" 10

कवि केदारनाथ अग्रवाल की इसी संकल्पशक्ति की प्रशंसा करते हुए प्रसिद्ध आलोचक 'डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी' जी लिखते हैं कि- "केदारनाथ अग्रवाल प्रकृति और मनुष्य को श्रम संस्कृति की दृष्टि और विचारधारा से चित्रित करते हैं। उनके यहाँ प्रकृति और मनुष्य का तादात्म्य है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता ने नई प्रकृति, नया समुद्र, नये धन-जन, नया नारी सौंदर्य गढ़ा है। वे श्रम संस्कृति के सौंदर्य निर्माता कवि हैं। उन्होंने प्रगतिशील कविता - हिंदी कविता को कालजयी गरिमा दी है।"11

कवि केदारनाथ अग्रवाल की लोक-दृष्टि की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उसकी 'अजेयता' है। उनकी कविताओं में चित्रित विजय के विविध दृश्य संघर्षशील जनता को 'निर्भयता' प्रदान करते हैं। उनका कवि-हृदय शत्रु और मृत्यु से लेश मात्र भी भयभीत नहीं होता। वे अपनी प्रिय जनता को 'अभयदान' देने वाले कृपालु कवि हैं। उनकी लेखनी संसार में व्याप्त अत्याचार, अनाचार और विसंगतियों को समूल से नष्ट करने के लिए आतुर है। वे भारतवर्ष की जनता को सदैव अजर, अमर और अपराजित मानते हैं। 'जनता' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा हैं कि- "अत्याचारों के होने से, / लोहू के बहने चुसने से, / बोटी-बोटी नुच जाने से, / किसी देश या किसी राष्ट्र की / कभी नहीं जनता मरती है! / ...सब देशों में सब राष्ट्रों में / शासक ही शासक मरते हैं / शोषक ही शोषक मरते हैं / किसी देश या किसी राष्ट्र की / कभी नहीं जनता मरती है। / जनता सत्यों की भार्या है / जागृत जीवन की जननी है।" 12

लोकवादी कवि की इसी क्रांतिधर्मिता से प्रभावित होकर 'रोहिताश्व' लिखते हैं कि- " केदारनाथ अग्रवाल गहरी जीवन आस्थाओं और अस्तित्वसंघर्षी तथा सौंदर्य बोध के सक्रिय कवि रहे हैं। यह उनकी गर्वोक्ति नहीं है... ।" 13

भारतवर्ष की अभावग्रस्त जनता की कारूणिक स्थिति को सुधारने के लिए, मनुष्यत्व में आस्था बनाए रखने के लिए कवि केदारनाथ अग्रवाल अपनी कविताओं के माध्यम से अनवरत् एक बेहतर दुनिया के निर्माण का स्वप्न बुनते हुए दिखाई देते हैं। उनके इस 'कवि स्वप्न' को हम 'टूटें न तार तने जीवन-सितार के' नामक कविता में भी स्पष्ट रूप से देख सकते हैं- "टूटें न तार तने जीवन-सितार के / ऐसा बजाओ इन्हें प्रतिभा की ताल से, / किरनों से, कुंकुम से, सेंदुर-गुलाल से, / लज्जित हो युग का अंधेरा निहार के। / टूटें न तार तने जीवन-सितार के / ऐसा बजाओ इन्हें सौरभ के श्वास से, / आशा की भाषा में, यौवन के हास से, / छाया बसंत रहे उपवन में प्यार के।" 14

निश्चय ही कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में ऐसे कई काव्योद्धरण मौजूद हैं जो उनकी सूक्ष्म और मार्मिक लोक-दृष्टि से पाठकों को रू-ब-रू कराते हैं।

संदर्भ:

1. त्रिपाठी अशोक (सं.) : केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएं, पहला संस्करण : 2010 (राजकमल पेपरबैक्स में), तीसरी आवृत्ति : 2013, पृ. सं. 70, प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1. बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, मूल्य : 50 रूपए (अजिल्द)।
2. वही, पृ. सं. - 13 ।
3. वही, पृ. सं. - 57 ।
4. वही, पृ. सं. - 141 ।
5. मंडलोई, लीलाधर (सं) : नया ज्ञानोदय, साहित्य वार्षिकी, जनवरी 2015 पृ. सं. -300, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं.- 3/13, नई दिल्ली - 110003, मूल्य: 100 रूपए ।
6. आग्नेय (सं): सदानीरा, वर्ष- 1, अंक- 1, मार्च-अप्रैल-मई, 2013, पृ. सं. 12, संपादकीय संपर्क : बी-207, चिनार वुडलैण्ड, कोलार रोड, भोपाल - 462016, मूल्य : 50 रूपए ।
7. प्रकाश, स्वयं - शर्मा, राजेंद्र (सं.) : प्रगतिशील वसुधा 92-93, वर्ष- 8, संख्या - 4, जुलाई-दिसंबर : 2012, पृ. सं. 12, संपादकीय संपर्क : स्वयं प्रकाश, 3/33, ग्रीन सिटी, ई-8, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मूल्य - 75 रूपए ।
8. त्रिपाठी, अशोक (सं) : केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएं, पहला संस्करण -2010, (राजकमल पेपरबैक्स में), तीसरी आवृत्ति : 2013, पृ. सं. 88-89, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1. बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, मूल्य : 50 रूपए (अजिल्द)।
9. तिवारी, विश्वनाथप्रसाद : समकालीन हिंदी कविता, पहला संशोधित और परिवर्धित लोकभारती संस्करण - 2010, पुनर्मुद्रित संस्करण - 2014, पृ. सं. 15, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 211001, मूल्य : 150 रूपए (अजिल्द)।
10. त्रिपाठी, अशोक (सं) : केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएं, पहला संस्करण -2010, (राजकमल पेपरबैक्स में), तीसरी आवृत्ति : 2013, पृ. सं. 63-64, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1. बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, मूल्य : 50 रूपए (अजिल्द)।
11. वही, पुस्तक के कवर पेज के पृष्ठ भाग से उद्धृत संदर्भ ।
12. वही, पृ. सं. - 26 ।
13. रोहिताश्व : काव्य सृजन और शिल्प विधान, प्रथम संस्करण : 2006, पृ. सं. 53, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महातमा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 211001, मूल्य : 140 रूपए (अजिल्द)।
14. त्रिपाठी, अशोक (सं) : केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएं, पहला संस्करण -2010, (राजकमल पेपरबैक्स में), तीसरी आवृत्ति : 2013, पृ. सं. 45, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1. बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, मूल्य : 50 रूपए (अजिल्द)।

❖

वरि. सहा. आचार्य, हिंदी विभाग, रेवेंशा विश्वविद्यालय
कटक, ओड़िशा - 753003 मो. 08847857125
(व्हाट्सऐप) 07064321757 ईमेल abhisheksharmalba@gmail.com

वैश्विक समस्याओं का हल: पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दर्शन

डॉ. सूर्य प्रकाश पाण्डेय

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपने प्रत्येक सांस के साथ गौरवशाली राष्ट्र भारत की सभ्यता, संस्कृत, समाज और राजनीति को न सिर्फ अपने जीवन में ढ़ाला अपितु मनुष्य और मानवता की बेहतरी के लिए निरंतर अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए श्रेष्ठ राष्ट्र के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। माँ भारती के सच्चे सपूत पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारत की सनातन संस्कृति को युगानुकूल एवं व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानवदर्शन जैसी एक श्रेष्ठ विचार सरणि रूपी अनुपम भेंट दी। एकात्म मानवदर्शन उनके चितन की एक ऐसी मौलिक ष्टि है जो भारतीय इतिहास परंपरा, समाज, राजनीति एवं भारतीय अर्थनीति है सर्वसमावेशी धरातल पर स्थित है यहां आप सबका ध्यान दिलाना चाहूंगा कि दुनिया में कुछ लोग सिर्फ समाज का हित करने और उसको परिवर्तित करने हेतु जन्म लेते हैं और इस हवन में अपना सर्वस्व आहूत कर इस दुनिया का छोड़ जाते हैं, ऐसे ही नाम की श्रृंखला में सबसे ऊपर श्रद्धेय पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का नाम भारत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है।

भारत महापुरुषों की धरती रही है, और पृथा पुत्रों की इसी महनीय परम्परा में माँ भारती के सच्चे सपूत, वैभवशाली राष्ट्र के स्वप्न को साकारित करने हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन न्योंछावर करने वाले युग पुरुषों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का नाम बहुत ही आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद के पुरोधा पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी सरलता, सहजता, त्याग, गंभीरता रुपी आचरण युक्त महापुरुष थे। 20वीं शताब्दी में भारत भूमि पर अवतरित एक साधारण से मानव ने अपने कर्मो के बल पर महामानव होने का गौरव प्राप्त किया तथा जिसने एकात्म मानव दर्शन तथा अंत्योदय रूपी महनीय दर्शन द्वारा न सिर्फ भारत को वरन् विश्व पटल पर अपनी एक अलग छाप छोड़ी। तत्कालीन परिदृश्य में विश्व एवं भारत अनेक समस्याओं यथा गरीबी, दासता, बेरोजगारी, भूखमरी, अशिक्षा, कुपोषण, प्राकृतिक संकट, मूल्यों के क्षरण, आपसी लड़ाई, राष्ट्रीयता का संकट आदि से छटपटाहट की अवस्था में था। वैश्विक मानवता अपने मार्ग दर्शन हेतु मार्गदर्शक तलाश रही थी ऐसे में महात्मा गांधी के पश्चात पंडित जी का उदय भारतीय धरातल पर सूर्य के प्रकाश के समान हुआ। पंडित जी द्वारा प्रदत्त विचार इन समस्याओं के आलोक में विकसित हुए जिनको न सिर्फ उन्होंने सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया बल्कि व्यावहारिक धरातल पर इनका निश्चित क्रियान्वयन करने का प्रयास किया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक श्रेष्ठ विचारक, दार्शनिक, एक चितनशील महामानव होने के साथ ही भारतीय संस्कृति के संपूर्णतम शाश्वत अभिव्यक्ति थे। उनका यह मानना था कि संस्कृति ही हमारे राष्ट्र की आत्मा है। राजनीति में भी संस्कृति के प्रबल पक्षधर थे इसलिए उन्हें राजनीति में संस्कृति का दूत कहा जाता है और संस्कृति विहीन संविधान से देश संभव नहीं है। राष्ट्रवाद की प्रखर भावना का प्रश्न उनका लक्ष्य था इसलिए जाति विहीन राष्ट्र, भेदभाव विहीन राष्ट्र का स्वप्न उन्होंने देखा। वे यह मानते थे कि राष्ट्रीयता के बोध के साथ ही जातीयता स्वयमेव में समाप्त हो जाएगी। एकात्म मानवदर्शन के दृष्टा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चिंतक, प्रचारक एवं संगठनकर्ता, जनसंघ के संस्थापक और राजनैतिक वैचारिकी में सांस्कृतिक मूल्यों के अधिष्ठाता पंडित दीनदयाल जी बनना इतना आसान नहीं है। वर्तमान वैश्विक समस्याओं के संदर्भ में विचार करने पर निम्न भाव अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है –

'कस्तूरी कुंडलि बसे
मृग ढूढहिं बनमाहि
ऐसे घटि-घटि राम है
मनवा जानत नाहि'

अर्थात् मानव जीवन के साथ सम्पूर्ण सृष्टि के विकास क्रम की यात्रा करने के पश्चात् यह सिद्ध हो रहा है कि यद्यपि मानव जाति ने इस

सृष्टि में अपने भौतिक सम्पन्नता यथा मंगलयान से गगनयान की यात्रा का तानाबाना बुनकर इसे व्यवहारिक धरातल तक पहुँचने में सफलता पायी है किंतु मनुष्य 21वीं सदी के चुनौतियों के मध्य एक ऐसे रास्ते पर खड़ा है जहाँ विकास तो हुआ है परन्तु शायद यह भी तय करने की आवश्यकता आ पड़ी है कि विकास की कीमत विनाश तो कम से कम नहीं होना चाहिए। भौतिक विकास रूपी मानव की आकांक्षा तथा इसके पीछे अंधी दौड़ का होड़ वर्तमान समय में जिस प्रकार अपने चरम पर है यह कहना गलत नहीं होगा कि इस विकास यात्रा के शतरंज में मनुष्य अपने विनाश का भी रास्ता स्वयं तैयार करता जा रहा है। अब यहाँ विचारणीय एवं महत्वपूर्ण प्रश्न जो सीधे मानव जीवन से जुड़ा है उठता है कि मानव विकास पथ पर अग्रसर है या विनाश के पथ पर अग्रसर है। इसी प्रश्न का समाधान आज समूचे विश्व के मानवता के सम्मुख समूची मानव प्रजाति के सम्मुख खड़ा हुआ है ये प्रश्न है–

मानव का वास्तविक विकास स्वरूप क्या है?

मानव के सृजन की सृष्टि का प्रयोजन क्या है?

मानव अपनी बौद्धिक शक्ति का सदुपयोग कैसे करे?

अन्ततः मानव इस पृथ्वी पर मानवता का पुण्य कैसे खिलाए एवं स्वर्ग की परिकल्पना को मूर्त रूप में इस धरा पर कैसे साकारित करे।

वर्तमान में वैश्विक चुनौतियों के हल के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्याय की महनीय वैचारिकी इसके सामाजिक समस्याओं राजनीतिक समस्याओं, सांस्कृतिक समस्याओं, आर्थिक समस्याओं एवं समाज में नैतिकता को जीवन के आधार के रूप में प्रतिशिठत करने हेतु प्रत्युत्तर के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

एकात्म मानववाद मनुष्य के सम्पूर्ण मानव बनने की प्रक्रिया का संप्रत्यय है। जैसे व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व, विश्व से ब्रम्हाण्ड एक सर्पिलाकार स्वरूप में स्थापित हो सकता है उसी प्रकार मानव विकास क्रम में तन, मन बुद्धि एवं आते द्वार के स्वरूप को करके सृष्टि के सृजन के उद्देश्य को सार्थक कर सकता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानवदर्शन का आदर्श था "शुभ कर्मों से धीरे-धीरे, नर बनता नारायण।" प्रकृति के स्वरूप का सूक्ष्मावलोकन करने के पश्चात् मानव पर विकास के प्रभाव को समझने पर यहाँ प्लेटो का कथन "मानव जीवन अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर है।" अतः मानवीय सामाजिक चेतना की उत्तरोत्तर मानव के चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है। मानवीय सामाजिक चेतना का समूचा ताना-बाना जयशंकर प्रसाद की इस कृति में समाहित है कि–

"किन्तु पहुँचना उस मंजिल तक, जिसके आगे राह न हो।"

निःसन्देह जब हम उपर्युक्त सामाजिक चेतना का सापेक्ष अध्ययन पंडित दीन दयाल जी के एकात्म मानववाद से करते हैं तब यह परिलक्षित होता है कि पंडित जी ने मानवीय सामाजिक चेतना के यथार्थ स्वरूप में सामाजिकता, राजनैतिकता, आध्यात्मिकता का समावेश करते हुए समूचे विश्व का सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन के लक्ष्य को एकात्म मानववाद के मोती में पिरो दिया है। अब जब हम एकात्म मानववाद के संप्रत्यय का सूक्ष्म अनुशीलन करते हैं तो यह सर्वविदित होता है कि एकात्म मानववाद का संप्रत्यय मनुष्य होने के उत्तर को संतुष्ट करता है जैसे एकात्म मानववाद से सम्बन्धित सिद्धांत रहे हैं। सबने सिर्फ 'क्या' और 'कैसे' को ही खोजने का प्रयास किया है परन्तु पं. दीन दयाल जी ऐसे अनूठे व्यक्तित्व हुए जिन्होंने 'क्या' और 'कैसे' को तो ढूँढ निकाला ही साथ में दुनिया के अद्वितीय प्रश्न मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? को 'क्योंकि' की कसौटी पर रखने का प्रयास किया है।

निःसन्देह दर्शन जगत का सबसे बड़ा यह यक्ष प्रश्न 'क्यों' ही है और पंडित दीनदयाल ने मानव जीवन के इस यक्ष प्रश्न की चुनौती को स्वीकार करते हुए उसके समाधान के रूप में ही मानव एकात्मवाद के संप्रत्यय को प्रस्तुत किया है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपने प्रत्येक सांस के साथ गौरवशाली राष्ट्र भारत की सभ्यता, संस्कृत, समाज और राजनीति को न सिर्फ अपने जीवन में ढ़ाला अपितु मनुष्य और मानवता की बेहतरी के लिए निरंतर अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए श्रेष्ठ राष्ट्र के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया। माँ भारती के सच्चे सपूत पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारत की सनातन संस्कृति को युगानुकूल एवं व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानवदर्शन जैसी एक श्रेष्ठ विचार सरणि रूपी अनुपम भेंट दी। एकात्म मानवदर्शन उनके चिंतन की एक ऐसी मौलिक ष्टि है जो भारतीय इतिहास परंपरा, समाज, राजनीति एवं भारतीय अर्थनीति है सर्वसमावेशी धरातल पर स्थित है यहां आप सबका ध्यान दिलाना चाहूंगा कि दुनिया में कुछ लोग सिर्फ समाज का हित करने और उसको परिवर्तित करने हेतु जन्म लेते हैं और इस हवन में अपना सर्वस्व आहूत कर इस दुनिया का छोड़ जाते हैं, ऐसे ही नाम की श्रृंखला में सबसे ऊपर श्रद्धेय पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का नाम भारत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। पंडित जी द्वारा स्थापित एकात्म मानववाद के अनुसार मनुष्य केवल शरीर नहीं है बल्कि शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय जिस प्रकार मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा यह चारों स्वस्थ्य और समुचित रूप से काम करते हैं तभी मनुष्य को परमसुख और परम वैभव की प्राप्ति हो सकती है उसी प्रकार समाज और संस्कृति के विभिन्न अंग पारस्परिक समन्वय के साथ और स्वस्थ रूप से काम करते हैं तभी श्रेष्ठ समाज और अनूठी संस्कृति का विकास संभव होता है जिसमें मनुष्य का, साथ ही मनुष्य अन्य प्राणियों से तथा इस प्रकृति से एक महत्वपूर्ण एवं सार्थक संबंध स्थापित हो सके समस्त व्यक्तियों से मिलकर बनती है

इसलिए उसमें भी इन तत्वों का किसी न किसी रूप में झलक मिलना चाहिए। इस प्रकार समस्त राष्ट्र संस्कृति और चेतना का समुच्चय है यह समस्त चराचर जगत में एक ही मानवता की भावना के दर्शन की अवधारणा अनुस्यूत है। हमारे शास्त्रों में 'यत् पिण्डे, तत् ब्रह्मंडे' रूपी विराट दर्शन पहले से ही विद्यमान है अर्थात जहां पिंड है, वहीं ब्रह्मंड है। भारतीय चिंतन और संस्कृति में जिस तरह से सृष्टि और समष्टि को एक समग्र रूप में देखने की परंपरा रही है उसी के अनुकूल अथवा प्रेरित होकर पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने एकात्म मानववाद के द्वारा मानव समाज प्रकृति एवं उसके संबंधों को समग्र रूप से देखने का एक श्रेष्ठ प्रयास किया है इस में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और फिर मानवता और चराचर सृष्टि का चिंतन किया गया है। पाश्चात्य परंपरा में किसी भी चीज को टुकड़ों में देखने का एक प्रचलन रहा है यह विशेषज्ञ की दृष्टि से उत्तम हो सकती है परंतु मानव जीवन में व्यवहारिक दृष्टि से इसे उचित कहना शायद उचित नहीं होगा पश्चिम के आधुनिक विचारों की एक मुख्य समस्या रही है कि वह अपने चिंतन के केंद्र में जीवन और समाज के संबंध में अलग अलग दृष्टि से देख कर के विचार करते हैं फिर उन्हें आपस मे तादात्म्य के आधार पर जोड़ने की कोशिश करते हैं परंतु भारत की श्रेष्ठ चिंतन परंपरा में निहित एकता को खोजने और स्थापित करने का प्रयास निरंतर किया जाता रहा है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने स्वतंत्रता के बाद अथवा उसके पहले से जिस तरह से तत्कालीन भारतीय वस्तु स्थिति में पूंजीवाद और समाजवाद जैसे पश्चिम से आयातित विचारों को उन्नति या सबसे बड़ा आधार साबित करने की एक प्रतिस्पर्धी परिस्थिति उत्पन्न हु थी उस परिस्थितियों के आलोक में एवं उनके प्रत्युत्तर के रूप में पंडित जी ने अपनी पुस्तक 'एकात्म मानववाद' में साम्यवाद और पूंजीवाद का विश्लेषण करते हुए दोनों को भारतीय समाज और संस्कृति के लिए उनके संभावित खतरों और उनसे उपजी प्रतिकूल परिस्थितियों से भारत के विचार को भारत के समाज को अवगत कराया। एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत की आजादी पश्चिमी अवधारणा जैसे व्यक्तिवाद, लोकतंत्र, साम्यवाद और पूंजीवाद पर निर्भर होकर सार्थक नहीं हो सकती है इन सभी पश्चिमी अवधारणाओं ने एक मात्र भौतिक समृद्धि को विकास का आधार माना परंतु वास्तव में भौतिक समृद्धि के शिखर पर पहुंचने के बावजूद पश्चिम का समाज खुशहाल नहीं हो सका क्योंकि पश्चिम के विचार के द्वारा मनुष्य पर समग्रता से विचार नहीं किया गया उनकी दृष्टि के केंद्र में मानव कभी भी पूर्णता केंद्र में नहीं रहा। पूंजीवाद मानव को आ्थक इका मानता है और व्यक्ति की स्वतंत्रता का उदाहरण देकर मुक्त अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में को कोर कसर नहीं छोड़ा और व्यक्ति को भोक्ता से अधिक कुछ नहीं समझा, वहीं साम्यवाद में समानता के आधार पर व्यक्ति को मात्र एक कार्मिक इकाई माना और समाज के विकास को द्वन्द्वात्मक शक्तियों का परिणाम मानकर मनुष्य को नियंता होने की क्षमता से ही वंचित कर देना श्रेयस्कर समझा। पूंजीवाद और साम्यवाद पश्चिम के दोनों विचारों ने ही मनुष्य के व्यक्तित्व को उसकी क्षमता को सीमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया। यह कहना अप्रासंगिक एवं अनुचित नहीं होगा पंडित दीनदयाल जी ने पश्चिम में दोनों विचारों अर्थात पूंजीवाद और साम्यवाद की कमियों की ओर रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट कहा कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विनाश के द्वारा संतुलित और उचित विकास संभव नहीं है यहां विनाश से आशय सीमा से भी हम कर सकते हैं कि पंडित जी ने यह कहा कि जब खुशी व्यक्तित्व का पूर्णता किसी राष्ट्र के विकास में या उसकी उस व्यक्ति के विकास का जो सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है यदि यह हम तक नहीं पहुंचता है तो शायद हम यह कहने में गौरव नहीं महसूस कर सकते कि मानव की प्रगति संभव है उन्होंने कहा कि मानव की प्रक्रिया अर्थ, शरीर, मन बुद्धि और आत्मा इन चारों की प्रगति है। इस प्रकार एकात्म मानववाद भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट विचारधारा एक विशिष्ट दर्शन होने के साथ-साथ समाजोपयोगी, राष्ट्र उपयोगी जन उपयोगी एक ऐसा विचार है जो ना सिर्फ भारतवर्ष के कुछ लोगों को अपितु भारत की श्रेष्ठ जनमानस के भाव को ध्यान में रखकर के जनआकांक्षा, जन योग्यता के अनुरूप विकास का एक ऐसा मॉडल है ह्रदय की अनंत गहराइयों से द्वार खोलता है। पंडित जी यह कहते थे कि ब्रिटिश गुलामी से मुक्ति हम इसलिए चाहते थे कि वे न केवल हमारी स्वाधीनता में बाधक थे बल्कि वे अपने रीति-रिवाजों से हमारे समाज हमारे जीवन शैली हमारी संस्कृति को भी बड़े स्तर पर प्रभावित करती होगी हमारे मन मस्तिष्क पर जो छाप छोड़ जाती उसे बदलने के लिए क वर्ष और आने वाली पीढ़ियों के मन मस्तिष्क पर उस दासता का जो एक कलंक था उसको मिटाने में जो अथक परिश्रम की आवश्यकता पड़ती इतना आसान नहीं थी इसलिए जीवन शैली के लिए क उपाय सुझाए जाएंगे आजादी की सार्थकता तभी संभव है जब हम उसे आत्मानुभूति करें और आत्मा के लिए देश की संस्कृति और स्वभाव के अनुकूल प्रणालियों का निर्माण होना चाहिए। दीनदयाल जी के अनुसार भारत के विकास की दशा दिशा के आधार पर आजादी के 74 वर्ष के अंतर्गत भारत के विकास और निर्माण की प्रक्रिया हमने देखा है हमने तय किया है उसमें पंडित जी के विचारों की झलक देखने को मिल रही है और उनके द्वारा दिखाए गए वैचारिक अनुष्ठान के रूप में एकात्म मानववाद आज मनुष्य के विकास से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र में आज मार्ग दर्शक सिद्धांत बन करके उभरा हैं और आज के समाज में आज की दुनिया में उपस्थिति समाज में जितने भी समस्याएं हैं उन समस्याओं के रूप में प्रयोग के रूप में पंडित जी द्वारा दिखाया रास्ता एकात्म मानववाद के रूप में प्रतिष्ठित है।

किसी महापुरूष ने भारत की महत्ता दर्शाते हुए बिल्कुल ठीक ही कहा है।

"विश्व का हर देश जब,
दिग्भ्रमित हो लड़खड़ाया सत्य की पहचान करने,
इस धरा के पास आया भूमि यह, हर दलित को पुचकारती,
हर पतित को उद्धारती,
धन्य देश महान।"

ऐसा हमारा धन्य महान देश भारत है। यह इसका स्वभाव है और आज की दुनिया को भारत की आवश्यकता है। दीनदयाल ऐसे विलक्षण क्रान्तिकारी हैं, जो झोपड़ियों से महलों तक समस्त मानव-जाति को साथ-साथ लेकर चलते हैं। पंडित जी द्वारा दिखाया गया एकात्म मानवदर्शन रूपी महनीय वैचारिकी समूची दुनिया के लिए शांति, सफलता, स्वतंत्रता, एकता और मानव जाति के विकास के लिए आवश्यक हो गयी।

भारतीय परम्परा 'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत:' के आधार बनाकर 'अयं निज: परोवेति गणना लघुचेतसाम' को चरितार्थ करने का प्रयास करते हुए समूचे विश्व में विश्व धर्मगुरु के रूप में प्रतिष्ठित रहा है परन्तु शनै: शनै: वैज्ञानिक विकास में 'सादा जीवन उच्च विचार' को पछाड़ते हुए भौतिकतावाद की छाप छोड़ी तो कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि मानव जीवन क्या सिर्फ भौतिक उपलब्धि के लिए बना है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए पंडित जी ने अपने एकात्म मानव दर्शन में सिद्ध कर दिया है कि मात्र भौतिक उपलब्धि प्राप्त करना मानव जीवन का लक्ष्य नहीं है अगर वास्तव में भारत को महाशक्ति के रूप में विश्व में स्थापित होना है तब भौतिक उपलब्धियों के साथ सामाजिक समरसता राजनीतिक दृढ़ इच्छाशक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए मानव जीवन के वास्तविक लक्ष्य एकात्म मानवदर्शन के लक्ष्य को प्राप्त करके ही वास्तविक महाशक्ति के सपने को साकार किया जाता है। मानवता लगभग नैतिक पतन और नैतिक शून्यतावाद की ओर बढ़ रही है आज के पागलपन युग में लोग शक्ति और सुख-सुविधाएं प्राप्त करना चाहते है, तब दीनदयाल जी के भौतिक सिद्धांतों की महत्ता और भी बढ़ जाती है जिसमें वे तकनीकी ज्ञान और आत्मदृढ़ता के बदले सनातन सत्य, आत्म त्याग और सच्चाई की पवित्रता पर ज्यादा बल देते हैं। दीनदयाल जी का अन्त्योदय रूपी आर्थिक विचार बेरोजगारी, सम्पत्ति का असमान वितरण, मानवाधिकार का उल्लंघन, आतंकवाद, और गरीबी जैसी समस्याओं को सुलझाने में एक सशक्त विकल्प के रूप में सामने आता है। समुची दुनिया एक विकल्प की खोज में है और एकात्म मानवदर्शन एक श्रेष्ठ विकल्प के रूप में सामने आता है। एकात्म मानवदर्शन की प्रासंगिकता सनातन है। पंडित जी का राजनीतिक दर्शन बहुत सारे अर्थों को रखते हुए धार्मिक शुद्धता से राजनीतिक औचित्य तक का मार्ग प्रशस्त करता है। पंडित जी राजनीति जैसे कठिन कार्यों में नैतिक मूल्यों को खोजते है और उसका उपयोग करते हैं। वास्तव में वे भारतीय परंपरा के एक कर्मयोगी थे, उनका नैतिक और राजनीतिक विचार स्वाभाविक रूप से धार्मिक और नीतिशास्त्र सम्बन्धी विश्वासों में था। जिस दुनिया में हम रहे है वह अमानवीय और भ्रष्ट हो चुकी है और तब ऐसे विचारों का अध्ययन करना और समझना नितांत ही आवश्यक है। पंडित जी द्वारा दिया गया एकात्म मानव दर्शन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज भी समान रूप से उपयोगी बना हुआ है किसी भी समस्या के निराकरण हेतु यदि हम हल तलाशनें निकलेगें तो यह महान विचार प्रत्येक मोड़ पर हमें खड़ा मिलेगा जिसकी मदद से हम किसी भी समस्याएं से उभर सकते है।

भारत ही नहीं वरन् पूरे विश्व क्षितिज पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसे महापुरूष का नाम है जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के बाद सर्वाधिक आदर एवं सम्मान के साथ देखे जाते हैं। पैगम्बर साहब हो या गुरूनानक देव, गौतम बुद्ध हो या महावीर स्वामी, गैया चराने वाले ब्रज के गोपाल कृष्ण हो या वनवास झेलने वाले भगवान राम, कैलाश पर्वत पर समाधिस्थ भोले शंकर हो या माता-पिता की सेवा में प्राण न्योछावर करने वाले श्रवण कुमार हो चाहे सत्य के प्रतिबिम्ब राजा हरिश्चन्द्र हो, अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी हों, इन सबका जीवन अत्यन्त सादगी भरा और वैराग्यपूर्ण रहा है, पंडित दीनदयाल उपाध्याय भी इन्हीं महापुरूषों से प्रेरित रहे हैं। पंडित जी का भारत के जन को यह संदेश था कि संपूर्ण विश्व का इतिहास उन व्यक्तियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है जो अपने आत्म विश्वास, साहस तथा दृढ़ता की शक्ति से नेतृत्व के बलबूते ऊँचाई पर पहुँचे है, विश्व के सारे महान धर्म मानव जाति की समानता, भाई चारे और सहिष्णुता का संदेश देते हैं, आजादी से लेकर आज तक दीनदयाल जी की एवं उनके विचारों की प्रासंगिकता महती रूप में बनी हुई है। वर्तमान समय में मनुष्य का स्वार्थ प्रबल हो गया है, नैतिक मूल्यों का पतन जारी है, आंतकवाद, नरसंहार, हिंसा रूपी वैश्विक समस्याएं हमारे सम्मुख मौजूद है जिससे समूचा विश्व छटपटा रहा है और दीनदयाल जी के विचार इन समस्याओं के समाधान हेतु सक्षम हैं। आशारूपी भाव और प्रेम के बल पर ही मानव जीवन का विकास संभव है। भारत को एकात्म मानवदर्शन तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जैसे महान विचारों का वाहक बनाने वाले मानवता के इस पुजारी के विषय में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'न भूतो न भविष्यति' अर्थात न ऐसा कोई हुआ है, न होगा।

संदर्भ:

1. एकात्म मानव दर्शन - विवेचन, सिद्धांत एवं तत्वमीमांसा- दीनदयाल उपाध्याय
2. राष्ट्र जीवन की दिशा - दीनदयाल उपाध्याय, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन - मा. स. गोलवलकर, दत्तोपन्त ठेंगड़ी, जागृति प्रकाशन, नोएड़ा

❖

सहायक प्रोफेसर
दर्शन एवं संस्कृति विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

राष्ट्र गौरव और कृषक करूणा के कवि- मैथिलीशरण गुप्त

डॉ. संजीव दुबे

महावीर प्रसाद द्विवेदी को मैथलीशरण गुप्त ने अपना काव्य मार्गदर्शक माना था। उनकी काव्य रचना में महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा को आलोचकों ने बखूबी चिन्हित किया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्ति शास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की थी एवं सरस्वती पत्रिका के माध्यम से तत्कालीन हिन्दी साहित्य चेतना का नेतृत्व किया था। 'संपत्ती शास्त्र' की भूमिका का आरंभ तत्कालीन भारत की दरिद्रता के कारुणिक उल्लेख से होता है। देश की दरिद्रता का बड़ा कारण वे किसानों की उपेक्षा को मानते हैं। 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' पुस्तक में रामविलास शर्मा ने 'देश की बात' शीर्षक से सरस्वती में प्रकाशित द्विवेदी जी की टिप्पणी उद्धत की है, जिसमें द्विवेदी जी सुधारवादियों की देश भक्ति की संकीर्णता को रेखांकित करते हुए देश भक्ति का मतलब किसानों की सेवा सिद्ध करते हैं। विचारणीय है कि हिन्दी नव जागरण में महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रदेय का मूल्यांकन करनेवाली इस पुस्तक में मैथिलीशरण गुप्त की चर्चा से जैसे बचने की कोशिश की गयी है।

मैथिलीशरण गुप्त का काव्य जीवन लगभग छः दशकों में विस्तृत है। इन छः दशकों के काव्य जीवन में भाषा एवं शिल्पगत परिवर्तनों के साथ विचारों की समवेशिकता हमें देखने को मिलती है। वे हठधर्मी कवि नहीं थे। वे एक ऐतिहासिक दायित्व और भूमिका का निर्वहन करने के लिए काव्य के क्षेत्र में उतरे थे।विचारणीय है कि वह ऐतिहासिक दायित्व क्या था ? वह कौन सी भूमिका उन्होंने स्वीकार की थी ? उनके अवदान का ऐतिहासिक महत्त्व है।उनकी काव्य रचना का तात्कालिक उद्देश्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। रचनाकार की ऐतिहासिक भूमिका और तात्कालिक उद्देश्य को नजरअंदाज करनेवाली आलोचना दृष्टि को कवि की काव्य सृष्टि में अनेक न्यूनताएँ दिख सकती हैं। उन न्यूनताओं को कवि की हेठी नहीं माननी चाहिए, बल्कि उसके अंतर्विरोधों को समझने की कोशिश करनी चाहिए। गुप्त जी अपने काव्य जीवन की प्रस्तावना व्यक्त करते हुए अपनी अक्षय कीर्ति की आधार कृति 'भारत भारती' में लिखते हैं "सिर्फ मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें निहित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए"।

सर सैयद अहमद के अनुरोध पर अल्ताफ हुसैन हाली नें 'मुसद्दस' लिखा था।राजा रामपाल सिंह के 'मुसद्दस' के ढंग की एक कविता पुस्तक हिन्दुओं के लिए लिखने के अनुरोध पर 'भारत-भारती' (1912) की रचना करते हुए गुप्त जी भूमिका में अपने दायित्व का उल्लेख करते हैं "संसार में ऐसा काम नहीं जो सचमुच उद्योग से सिद्ध न हो सके। परन्तु उद्योग के लिए उत्साह क!!ी आवश्यकता है। बिना उत्साह के उद्योग नहीं हो सकता। इसी उत्साह को, इसी मानसिक वेग को उत्तेजित करने के लिए कविता उत्तम साधन हैं।" इस प्रकार कविता उनके लिए एक साधन है, साध्य नहीं है। 'भारत-भारती' की रचना गुलाम भारत को जगाने का एक साधन थी, जिसके माध्यम से वे सिर्फ अतीत का गौरव गान करने के लिए ही काव्य क्षेत्र में नहीं उतरे थे, अपितु वर्तमान की सामजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दुरवस्था की कड़ी आलोचना करना उनके काव्य का प्रमुख हेतु था। जो रचनाकार अपने वर्तमान की आलोचना का साहस करता है, वही भविष्य के लिए हमें सन्देश भी दे सकता है।

उनकी रचनाओं से गुजरते हुए सहज ही अनुभूति होती है कि जैसे वेगौरवशाली भारतीय संस्कृति का महाकाव्यात्मक इतिहास प्रस्तुत कर रहे हैं।अपनी काव्य चेतना के सहारे उन्होंने अतीत के साथ एक संवाद स्थापित किया है। अतीत के साथ उनका यह संवाद एकतरफा नहीं, दो तरफा है, जिसे समझने की जरूरत है। उनके युग बोध में प्राचीनता और नवीनता का अद्‌भुत सामंजस्य है। उनकी कविता में देश के गौरव, अतीत की महिमा, ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा, अंग्रेजी दासता की दीनता, स्वातंत्र्य आन्दोलन, किसानों की दयनीय दशा, जातिवाद का दंश, क्षेत्रीयतावाद, हरिजन समस्या, पाश्चात्य प्रभाव, समाज सुधार, नारी उद्धार, राज भक्ति आदि के जो संदर्भ आते हैं, वे एक बड़े कवि के विजन को दर्शाते हैं। ध्यान देने योग्य है कि उनकी कविताई नवजागरण की

चेतना से अनुप्राणित थी। भारतीय नवजागरण की चेतना से अनुप्राणित कविता में उसके अन्तर्विरोधों की पहचान मुश्किल नहीं है।भारत में नवजागरण की दो धाराएं स्पष्ट थीं। मैथिलीशरण गुप्त भारत के विस्मृत अतीत के पुण्य स्मरण से हतदर्प भारतीयों में नव उत्साह का संचार करना चाहते थे। भारतीय जनों में आत्मविश्वास भरना और यह विश्वास दिलाना तात्कालिक आवश्यकता थी कि वे 'सपेरों और मदारियों के देश' के प्रतिनिधि नहीं हैं। उन्होंने स्पष्ट लक्षित किया था कि ब्रिटिश शिक्षा भारतीयों को अपने अतीत, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन और आध्यात्म के प्रति सुनियोजित तरीके से घृणा करना सिखा रही हैय

"होती नहीं उससे हमें निज धर्म में अनुरक्ति है,
होने न देती पूर्वजों पर वह हमारी भक्ति है।
उसमें विदेशी मान का भी मोहपूर्ण महत्व है,
फल अंत में उसका वही दासत्व है, दासत्व है" ।।149।।

वह भारतीयों को यकीन दिलाने में लगी थी कि ब्रिटिश राज्य उनके उद्धार के हेतु है। अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर रहे युवकों में आ रहे परिवर्तनों को भारतेंदु युगीन कवियों ने ही लक्ष्य नहीं किया था अपितु प्रेमचंद सदृश कथाकार ने अनेक कहानियों में इसके प्रभावों-विकृतियों का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। 'भारत भारती' के अतीत खंड में मैथली शरण गुप्त महत्वपूर्ण सवाल उठाते हैं

"जो पूर्व में हमको अशिक्षित या असभ्य बता रहे-
वे लोग या तो अज्ञ हैं या पक्षपात जता रहे।
यदि हम अशिक्षित थे, कहें तो, सभ्य वे कैसे हुए ?
वे आप ऐसे भी नहीं थे, आज हम जैसे हुए" ।।189।।

भारत-भारती के अतीत खंड के शीर्षकों और पाद टिप्पणियों पर गौर करने मात्र से एक कवि की बेचौनी, श्रम और अध्ययन का गहन एहसास होता है। परम आस्तिक वैष्णव कवि जब भारत की अवनति के कारणों की पड़ताल शुरू करता है, तो सबसे पहले महाभारत को कारण मानता है। बंधु-बांधवों में पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष की सोचनीय स्थिति के परिणामस्वरूप भव्य भारत मरघट बन जाता है। उल्लेखनीय है कि महाभारत काल से लेकर ब्रिटिश पराधीनता तक के भारतीय इतिहास के जाज्वल्यमान नक्षत्रों के महती प्रदेयों की चर्चा करना वे नहीं भूलते। इस क्रम में महात्मा बुद्ध, विक्रमादित्य की ही प्रशंसा नहीं करते अपितु अकबर सदृश मुगल शासक की नीतियों की प्रशंसा भी करते हैं। मुगलों के पतन का कारण औरंगजेब की धर्मान्धता को मानते हुए वे लिखते हैं।

"यदि पूर्वजों की नीति को औरंगजेब न भूलता-
होती यवन राज्यत्व पर विधि की न यों प्रतिकूलता" ।4

भारत भारती के वर्तमान खण्ड में मैथिलीशरण गुप्त ने ब्रिटिश शासन के दौरान दुर्भिक्ष, कृषि और कृषक तथा शिक्षा की अवस्था का जैसा चित्र खींचा है, वह न सिर्फ उनके समकालीनों में दुर्लभ है अपितु परवर्ती कवियों में भी विरल है। ब्रिटिश शासन की कठोर नीतियों की परवाह न करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने अंग्रेजी शिक्षा की न्यूनताओं को बड़े साहस के साथ रेखांकित किया है

"दासत्व के परिणाम वाली आज है शिक्षा यहाँ,
है मुख्य दो ही जीविकाएं भृत्यता-भिक्षा यहाँ!
या तो कहीं बनकर मुहर्रिर पेट का पालन करो,
या मिल सके तो भीख मांगो, अन्यथा भूखों मरो" ।।146।।

महावीर प्रसाद द्विवेदी को मैथलीशरण गुप्त ने अपना काव्य मार्गदर्शक माना था। उनकी काव्य रचना में महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा को आलोचकों ने बखूबी चिन्हित किया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्ति शास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की थी एवं सरस्वती पत्रिका के माध्यम से तत्कालीन हिन्दी साहित्य चेतना का नेतृत्व किया था। 'संपत्ति शास्त्र' की भूमिका का आरंभ तत्कालीन भारत की दरिद्रता के कारुणिक उल्लेख से होता है। देश की दरिद्रता का बड़ा कारण वे किसानों की उपेक्षा को मानते हैं। 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' पुस्तक में रामविलास शर्मा ने 'देश की बात' शीर्षक से सरस्वती में प्रकाशित द्विवेदी जी की टिप्पणी उद्धृत की है, जिसमें द्विवेदी जी सुधारवादियों की देश भक्ति की संकीर्णता को रेखांकित करते हुए देश भक्ति का मतलब किसानों की सेवा सिद्ध करते हैं। विचारणीय है कि हिन्दी नव जागरण में महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रदेय का मूल्यांकन करनेवाली इस पुस्तक में मैथिलीशरण गुप्त की चर्चा से जैसे बचने की कोशिश की गयी है। पुस्तक का उपसंहार करते हुए रामविलास शर्मा जी सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को महावीर प्रसाद द्विवेदी का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित करने के अनेक पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हुए अंत में लिखते हैं। "सच्चा शिष्य वह है जो गुरु का अनुसरण करे, न कि वह जो अनुकरण करे। निराला महावीर प्रसाद द्विवेदी के सच्चे शिष्य और उत्तराधिकारी थे।"6 भारत जैसे कृषि प्रधान देश में विदेशी शासन ने सबसे ज्यादा कहर किसानों पर ही ढाया था। अंग्रेजों ने अपने शासन को राजनीतिक रूप से सुदृढ़ करने के लिए भारतीयों के बीच सांप्रदायिक भेद-भाव को बढ़ावा दिया तो आर्थिक शोषण को सुनिश्चित करने के लिए भारतीय कृषि और उद्योग-धंधों की कमर तोड़ दी तथा परंपरागत कृषि व्यवस्था को बदल दिया। भारत के नवजात उद्योग धंधों को जड़ से उखाड़ फेकने के लिए भारत में निर्मित सूती और रेशमी कपड़ों के अपने देश में आयात पर रोक लगाई पर ब्रिटेन में बने माल से भारतीय बाजारों को पाट दिया।परिणामतः उद्योगों से जुड़े करोड़ों कारीगर,दस्तकार और मजदूर न सिर्फ अपने काम-धंधों से हाथ धो बैठे अपितु किसानी पर दबाव दुगुना हो गया। 1793 के 'इस्तमरारी बंदोबस्त कानून' और 1818 के 'रैयतवारी प्रथा कानून' के कारण परंपरागत ग्राम व्यवस्था और कृषि राजस्व वसूली की पुरानी प्रणाली बदल गई। नई प्रणाली में किसान भूमि का किरायेदार बन गया। ऊंचा किराया (लगान) न दे पाने की स्थिति में वह अपनी पैतृक जमीनों से हाथ धोने लगा।'संपत्ति शास्त्र' में द्विवेदी जी ने ब्रिटिश काल के कृषि कानूनों के कारण किसानों की दयनीय स्थिति की सम्यक

आलोचना की है। द्विवेदी जी कर और लगान तथा खेत के किराये में अंतर स्पष्ट करते हुए 'संपत्ति शास्त्र' में लिखते हैं। "पुराने जमाने में, हिन्दुस्तान में, जमीन पर राजा का स्वामित्व न था। हर आदमी अपनी-अपनी जमीन का मालिक था। राजा उससे सिर्फ उसकी जमीन की पैदावार का छठा हिस्सा ले लिया करता था। बस राजा का इतना ही हक था। वह एक प्रकार का कर था, जमीन का लगान नहीं।... अब जमीन की मालिक गवर्नमेंट बन गयी है । वह जमीन का लगान लेती है और लोगों को लाचार होकर देना पड़ता है।... यों कहिए कि लगान नहीं यह एक प्रकार का किराया है" ।7 मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना में किसान जीवन की चिंता अनेक अवसरों पर व्यक्त हुई है। देश की अधिसंख्य आबादी की कृषि पर निर्भरता और किसान से लगान वसूल करने की निर्दयता के चलते लाखों लोग भुखमरी के शिकार हो रहे थे।

"सौ में पचासी जन यहाँ निर्वाह कृषि पर कर रहे,
पाकर करोड़ों अर्ध भोजन सर्द आहें भर रहे।
जब पेट की ही पड़ रही फिर और की क्या बात है
'होती नहीं है भक्ति भूखे' उक्ति यह विख्यात है । ।30।।"

ब्रिटिश काल में भारतीय किसानों की बदहाल स्थिति का चित्रण 'भारत भारती' में यथा स्थान किया गया है। किसानों की दयनीय स्थिति और गिरमिटिया मजदूर बन कर दूर देश (फिजी) जाने की त्रासदी का मार्मिक चित्रण उन्होंने 'किसान' (1916) नामक काव्य में किया है। आत्मकथात्मक शैली में एक किसान की करुण जीवन गाथा सहृदय वाचकों में हाहाकार भर देती है

"पहला ही ऋण नहीं चुका है, रहंटी, बीज, खवाई का
कैसे चुके लगा है झगड़ा सबके साथ सवाई का!
खेती में क्या सार रहा अब, कर देकर जो बचता है,
कड़े ब्याज के बड़े पेट में सभी पलों में पचता है!"।।32।।9

गौरतलब है कि कथाकार प्रेमचंद की चर्चित कहानी 'सवा सेर गेहूँ' के प्रकाशनसे काफी पहले गुप्त जी ने किसानों के साथ महाजनी सभ्यता के शोषणों का पर्दाफाश किया था। किसानी की मरजाद से च्युत होकर मजदूर और गिरमिटिया कुली बनने की एक भारतीय किसान की करुण दास्तान भारत में प्रगतिशील आंदोलन की लहर उठने के बहुत पहले मैथिलीशरण गुप्त व्यक्त कर चुके थे। मैथिलीशरण गुप्त जी कई संदर्भों में अपने वक्त से बहुत आगे की सोच रखते थे। महात्मा गांधी के स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का व्यापक आंदोलन छेड़ने के बहुत पहले भारतीय उद्योग-धंधों के उद्धार के लिए स्वदेशी को अपनाने का संकेत 'भारत भारती' में स्थान-स्थान पर मिलता है।वे व्यापार की चिंता की बात करते हैं। अरब, ईरान, तुरान आदि से व्यापार करने वाले भारतीयों के व्यापार के बुरे हश्र की गहन चिंता उनकी कविता में व्यक्त हुई है।

"जो वस्तु देखो मेड इन इंग्लैंड, इटली, जर्मनी,
जापान, फ्रांस, अमेरिका वा अन्य देशों की बनी ।
होकर सजीव मनुष्य हम निर्जीव से हैं हो रहे,
घर में लगाकर आग अपने बेखबर हैं सो रहे । ।82।।"10

भारतेंदु युगीन कविता में हम देशभक्ति और राजभक्ति दोनों की अभिव्यक्ति पाते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि तत्कालीन राजभक्ति की आड़ लेकर देशहित के लिए उद्योग करना आसान था। भारत भारती में राजभक्ति देखनेवालों को समझना चाहिए कि भारत के वर्तमान की जैसी आलोचना गुप्त जी कर रहे थे वह किसी तत्कालीन सत्ता को आईना दिखाने के लिए काफी थी। केवल 'भारत-भारती' में ही नहीं बल्कि 'किसान' में भी उनका नायक ब्रिटिश सरकार के किये उपकार का बदला चुकाने के लिए सेना में भर्ती होना चाहता है। ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा करते हुए भी बार-बार वे पराधीनता के दंश का उल्लेख करना नहीं भूलते

"शासन किसी पर-जाति का चाहे विवेक-विशिष्ट हो,
संभव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो" ।11

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में विकसित हो रही राष्ट्रीय चेतना पर पुनरुत्थानवाद के रंग की चर्चा करते हुए रामविलास शर्मा 'भारत की भाषा समस्या' पुस्तक में लिखते हैं "भारतेंदु बाबू ने आर्य जाति के प्राचीन गौरव के गीत गाए। हाली ने मुसलमानों के बीते वैभव के स्वप्न देखे। फिर भी हाली और भारतेंदु दोनों ने यह अनुभव कर लिया था कि देश की उन्नति हिन्दू-मुसलमानों के मेल से और उनकी मिली जुली राष्ट्रीय चेतना से ही हो सकती है। हाली ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर लिखा था

"तुम अगर चाहते हो मुल्क की खैर, न किसी हमवतन को समझो गैर।
हो मुस्लमान इसमें या हिन्दू बौद्ध मजहब या कि हो ब्रह्मो
सबको मीठी निगाह से देखो समझो आँखों कि पुतलियाँ सब को।
हिन्द में इत्तेफाक होता अगर खाते गैरों की ठोकरें क्यों कर?"12

'मुसद्दसे हाली'में अल्ताफ हुसैन हाली ने मुस्लिम कौम को आईना दिखाने का काम किया है, तो हिन्दू-मुसलमान कौमों में एकता और भाईचारे की वकालत भी की। हाली के लगभग दो दशक बाद मैथिलीशरण गुप्त जी ने न सिर्फ हिन्दुओं के अतीत के गौरव के दृश्य दिखाए, उनकी वर्तमान दुर्दशा के करुण चित्र भी खींचे, साथ ही उबरने की राह भी दिखाई। दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि प्रगतिशील आलोचकों ने उनके प्रदेय की पर्याप्त नोटिस नहीं ली।उन्हें पुनरुत्थानवादी कह कर उपेक्षित किया गया। जैसा कि ऊपर कहा गया है, मैथिलीशरण गुप्त में तत्कालीन जरूरतों के चलते अतीत के गौरव के प्रति मोह भाव था तथा अपने धर्म में असीम आस्था थी। पर वे अपनी काव्य चेतना के आरंभ से अंत तक हिन्दू-मुस्लिम एकता के हिमायती बने रहे। 1927 में जब छायावाद का आन्दोलन पूरे उभार पर था, तब उन्होंने 'भारत-भारती' की ही तर्ज पर 'हिन्दू' नामक काव्य की रचना की। इस काव्य की भूमिका में मैथिली शरण गुप्त ने तत्कालीन छायावादी काव्य की स्वर्गीयता को देश की पार्थिव जरूरतों के अनुपयुक्त माना है। वे लिखते हैं कि "कवित्व इन्द्रधनुष लेकर अपना लक्ष्य भेदन कर सकता है। परन्तु

हम पार्थिव प्राणियों को पार्थिव साधनों का ही सहारा लेना पड़ेगा, और इसके लिए न तो किसी दूसरे पर ईर्ष्या करनी पड़ेगी न अपने ऊपर घृणा।" उनका मानना था कि तत्कालीन कविता सुन्दरम् के विधान में लगी हुई है। सत्य और शिव उससे छूट गया है।मैथिली शरण गुप्त एक दायित्व बोध के साथ कविता के क्षेत्र में उतरे थे और यह दायित्व बोध सत्य और शिव की साधना के लिए उन्हें निरंतर अनुप्राणित करता रहता था। यही कारण है कि 'हिन्दू' काव्य में उन्होंने हिन्दुओं के तमाम अच्छे पक्षों के साथ उनकी तमाम कुरीतियों-विद्रूपताओं को भी बहुत ही मुखर और निन्दात्मक रूप में प्रकट किया है । उनकी दृष्टि में हिन्दू एक व्यापक अर्थ और भाव को प्रकट करनेवाला शब्द है जो इस भारत भूमि की सभी संतानों को अपनी जद में समेट लेता है।वे लिखते हैं

"विजातीय भी, विज्ञ, वदान्य, समझो सजातीय, सम मान्य।
हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, परम पिता की सब संतान।
सभी बन्धु हैं लघु या जेष्ठ, मत से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ।
लिखी नहीं माथे पर जाति, गुण कर्मो से उसकी ज्ञाति" ।14

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू धर्म को मानव धर्म से अभिन्न मानते थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा आयोजित मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी समारोह के अभिभाषण में विद्यानिवास मिश्र ने दद्दा (गुप्त जी) के व्यक्तित्व की विशालता का उल्लेख करते हुए उचित कहा है कि "एक विशाल और व्यापक दृष्टि रखनेवाला व्यक्ति ही राष्ट्रीयता को संभाल सकता है। संकीर्ण हाथों में जब राष्ट्रीयता आती है तो उसकी छीछालेदर होती है। लेकिन एक विराट मनुष्य की परिकल्पना करनेवाला व्यक्ति जब राष्ट्रीयता की बात करता है तब वह राष्ट्र केवल भूगोल और कुछ जातियों का इतिहास नहीं होता।"15 इसी अभिभाषण में राष्ट्रपिता गांधी द्वारा मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि दिये जाने के मंतव्य का विश्लेषण करते हुए विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि "उन्होंने (गांधी जी ने) पहचाना कि अकेले इस व्यक्ति के पास एक ऐसी भाषा है, जो सबकी भाषा होगी। एक ऐसा भाव है जो भारत का भाव है। एक ऐसे भारत का भाव है जो विश्व की व्यथा समझता है, जो मनुष्य मात्र की वेदना से पीड़ित है और उस पीड़ा में भगवान का साक्षात्कार करने का अभ्यासी है। वैष्णव भाव और राष्ट्रव्यापी विशाल मनुष्य, दोनों का योग जिस व्यक्ति में हुआ है, उसी को भारत का राष्ट्रकवि कहा जा सकता है" ।16

मैथिलीशरण गुप्त सच्चे अर्थो में खड़ी बोली हिन्दी में 'भारत भाव' भरने का अतुल्य कार्य कर रहे थे। उनके वृहद् काव्य योगदान का महत्व इस अर्थ में भी है कि उन्होंने पुराणों और महाकाव्यों से जिन प्रसंगों को चुनकर पराधीन देश के कवि का धर्म निभाया, वे आसेतु-हिमालय श्रद्धा स्थान के अधिकारी थे। स्वाधीनता संघर्ष के तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन अपनी काव्य साधना को बनाते हुए उन्होंने जिन ऐतिहासिक चरित्रों का चयन किया वे भी वृहद् भारत भूमि से संबद्ध थे, किसी क्षेत्र विशेष से नहीं। उनके महनीय योगदान को स्मरण करते हुए विष्णुकांत शास्त्री ने गुप्त जी की जन्मशती समारोह के उद्घाटन भाषण का अंत करते हुए उचित ही कहा है कि। "भारत की आत्मा के साथ अविभक्त रूप से जुड़ा हुआ जो सनातन तत्व का उपासक है, वही भारतीय जनता को अपने साथ समेट कर आगे ले जा सकता है और उस परंपरा में एक बहुत ही उज्जवल नक्षत्र के रूप में मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी में आये। उन्होंने हिन्दी को उसका छंद दिया, हिन्दी को उसका मुहावरा दिया और हिन्दी को जन-जन तक पहुंचा दिया"।

संदर्भ:

1. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली,भाग-1, (2008) सं.कृष्णदत्त पालीवाल,भारत भारती, पृष्ठ-318, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, भाग-1, (2008) सं. कृष्णदत्त पालीवाल, भारत भारती, पृष्ठ-407, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
3. वही, पृष्ठ 367
4. वही,पृष्ठ 376
5. वही, पृष्ठ 407
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृष्ठ-392, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली
7. संपत्ति शास्त्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 111, ई-पुस्कालय https%//epustakalay-com/book/28458&sampatti&shastra&by&mahavir&prasad&dwivedi/
8. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, भाग-1, (2008) सं. कृष्णदत्त पालीवाल, भारत भारती, पृष्ठ-387, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
9. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, भाग-2, (2008) सं. कृष्णदत्त पालीवाल, किसान, पृष्ठ-75, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
10. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, भाग-1, (2008) सं. कृष्णदत्त पालीवाल, भारत भारती, पृष्ठ-395, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
11. वही, पृष्ठ-379
12. भारत की भाषा समस्या, (तीसरे संस्करण-2003 की पहली आवृत्ति-2009) रामविलास शर्मा, पृष्ठ 56, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
13. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, भाग-2, (2008) सं. कृष्णदत्त पालीवाल, हिन्दू, पृष्ठ-162, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
14. वही, पृष्ठ-215
15. सम्मलेन पत्रिका, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विशेषांक, भाग 72, संख्या 3-4, आषाढ़-मार्गशीर्ष, शक 1909, दद्दा मैथिलीशरण गुप्त, विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ 09
16. वही, पृष्ठ 12
17. वही, पृष्ठ 20

❖

अधिष्ठाता
भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर
मो. 8140241172 ईमेल Sanjeev.dubey@cug.ac.in

तकनीकी समुन्नयन और हिंदी

कोमल

वही जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्राय: सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों- जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है- में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बडी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन 1999 में ''मशीन ट्रांसलेशन समिट' अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकडे पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकडों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है। अंग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान अनुसंधित्सु भी सक्रिय हैं जो हिंदी को चीनी के ऊपर अर्थात् प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

इक्कीसवीं सदी बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है और स्थलीय व भौगोलिक दूरियाँ अपनी अर्थवत्ता खो रहीं हैं। वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनसघगठन की प्रक्रिया से गुजर रही है। ऐसी स्थिति में विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वत: महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए वरदान-सदृश हैं।

जॉन बार्थविक गिलक्राइस्ट का मत भी है कि-

"भारत के जिस भाग में भी मुझे काम करना पड़ा है कोलकाता से लेकर लाहौर तक, कुमाँऊ के पहाड़ से लेकर नर्मदा नदी तक मैंने उस भाषा का आम व्यवहार देखा है मैं कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक या जावा से लेकर सिंधु तक इस विश्वास से यात्रा करने की हिम्मत कर सकता हूं कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जाएंगे जो हिंदुस्तानी बोल लेते होंगे।"

यह सच है कि कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढ़ती उपस्थिति हिंदी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है।

इस संदर्भ में बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' की यह उक्ति सार्थक प्रतीत होती है -

''हमारी भारत-भारती की शैशवास्था का रूप ब्रह्मी या देव वाणी है, उसकी किशोरावस्था वैदिक भाषा और संस्कृति उसकी यौवनावस्था की सुंदर मनोहर छटा है ।''

हिंदी भाषा में समय के साथ अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। अंग्रेजी तथा देशी विदेशी भाषाओं के प्रभाव से व अन्य भारतीय बोलियों के संपर्क के कारण हिंदी भाषा में निरंतर बदलाव आ रहे है। अरबी फारसी भाषाओं से नुक्ता का चलन हिंदी में काफी बढ़ गया है। अंग्रेजी भाषा के अत्याधिक प्रभाव के कारण हिंदी भाषी लोगों की दैनिक बोलचाल की भाषा में बहुत बदलाव आ गए हैं बोलचाल व संचार में हिंग्लिश (हिंदी में इंग्लिश के संयुक्त प्रयोग से बनी अमानक भाषा) के प्रयोग से देश का कोई वर्ग अछूता नहीं है। परंतु यह भी सत्य है कि पिछले कुछ वर्षो में विश्व स्तर पर हिंदी का आकर्षण बढ़ रहा है जिसका एक प्रमुख कारण हिंदी का इंटरनेट से जुड़ना है

19 अगस्त 2009 को गूगल ने कहा कि –

''हर 5 वर्षों में हिंदी की सामग्री में 94% बढ़ोतरी हो रही है।''

कंप्यूटर में इंटरनेट ने पिछले वर्षों में विश्व में सूचना क्रांति ला दी है। आज कोई भी भाषा कंप्यूटर तथा कंप्यूटर सदृश्य अन्य उपकरणों से दूर रहकर लोगों से जुड़ी नहीं रह सकती। यूनिकोड के पर्दापण के बाद हिंदी की स्थिति तकनीकी क्षेत्र में बहुत तेजी से बदल रही है। आज इंटरनेट पर भी बहुत सरलता से हिंदी भाषा में काम किया जा सकता है। हिंदी कि इंटरनेट पर अच्छी उपस्थिति है। गूगल जैसे सर्च इंजन हिंदी को प्राथमिक भाषा के रूप में पहचानते हैं। इसके साथ ही अन्य भाषा में लिखे शब्दों का भी अनुवाद हिंदी में किया जा सकता है।

महान विद्वान 'एच. टी. कोलब्रुक' का कहना है –

''जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग करते हैं। जो पढ़े लिखे तथा अनपढ़ दोनों की साधारण बोलचाल की भाषा है । जिसको प्रत्येक गांव में थोड़े बहुत लोग अवश्य ही समझ लेते हैं उसी यथार्थ का नाम 'हिंदी' है।''

हिंदी टंकण के लिए विभिन्न प्रकार के की-बोर्ड ले-आऊट विकल्प होना। जैसे – इनस्क्रिप्ट, रेमिंगटन, फोनेटिक आदि हैं और इनमें से इनस्क्रिप्ट की-बोर्ड को ही भारत सरकार द्वारा मानव घोषित किया गया है। भारत सरकार ने हिंदी के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड एनकोडिंग को मान्यता दी है जो अंतरराष्ट्रीय मानक ISO/IEC 10646 हैं। इससे हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर पर अंग्रेजी की तरह सरलता से सभी कार्य किए जा सकते हैं जैसे – वर्ड प्रोसेसिंग डाटा प्रोसेसिंग ईमेल वेबसाइट निर्माण इत्यादि ।

विभिन्न साफ्टवेयरों में प्रयुक्त (नेमक) फॉन्टस का कंपैटिबल न होना तथा विभिन्न प्रकार के की-बोर्ड ले-आउट का प्रयोग हिंदी में तकनीकी कार्य करने में एक गंभीर समस्या उत्पन्न करते हैं। इस कारण यूजर हिंदी की फाइलों का अंग्रेजी की तरह आसानी से एक कंप्यूटर से दूसरे कंप्यूटर पर आदान-प्रदान नहीं कर पाते हैं। हिंदी पाठ को दूसरे सॉफ्टवेयर में जोड़ने मे भी समस्या आती है। पब्लिकेशन के सॉफ्टवेयर में यूनिकोड एनकोडिंग का कंपैटिबल ना होने के कारण नवीनतम वर्जन के पब्लिकेशन सॉफ्टवेयर में भी विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम से डाटा ट्रांसफर में कठिनाई आती है। जैसे द्वारा,द्वितीय, खट्टा, विद्यालय आदि का अलग-अलग फॉन्ट में अलग-अलग प्रदर्शित होना भी हिंदी टंकण में परेशानी पैदा करता है ।

हिंदी टंकण के लिए विभिन्न प्रकार के कीबोर्ड लेआउट विकल्प होना जैसे इनस्क्रिप्ट, रेमिंगटन, फोनेटिक आदि है और इनमें से ''इनस्क्रिप्ट की-बोर्ड ले-आउट'' को ही भारत द्वारा मानक घोषित किया गया है। विभिन्न आपरेटिंग सिस्टम जैसे विंडोज, लाइनेकस आदि में विभिनता के कारण रेमिंगटन की-बोर्ड ले-आउट में किए गए टंकण कार्य को किसी अन्य सॉफ्टवेयर जैसे वेबसाइट निर्माण, डेटाबेस आदि लोड करने में परेशानी का सामना करना पड़ता है ।

भारत सरकार ने हिंदी के साथ साथ सभी भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड रिकॉर्डिग को मान्यता दी है जो अंतरराष्ट्रीय मानक ISO/IEC 10646 हैं। इससे हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर पर अंग्रेजी की तरह सरलता से सभी कार्य किए जा सकते हैं। जैसे वर्ड प्रोसेसिंग, डाटा प्रोसेसिंग, ईमेल, वेबसाइट निर्माण आदि। हिंदी में बनी फाइलों का आसानी से आदान-प्रदान तथा हिंदी की-वर्ड पर गूगल या अन्य सर्च इंजन में कुछ भी सर्च कर सकते हैं ।

वर्तमान में भाषा और तकनीक एक सिक्के के दो पहलू हैं । बिना तकनीक के भाषा कंप्यूटर पर आगे नहीं बढ़ सकती है। इसी प्रकार यदि कंप्यूटर पर किसी भाषा विशेष में कार्य किया जाना है तो भाषा की बारीकियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। आज ऐसा कोई विरला ही होगा जो कंप्यूटर की तकनीक और भाषा में समान रूप से दक्ष हो। हिंदी भाषा के कंप्यूटर पर पूरी तरह से सफल ना होने पर का मूल कारण ही यह है कि जो भाषाविद है वे कंप्यूटर की तकनीक के विशेषज्ञ नहीं है और जो कंप्यूटर तकनीक के विशेषज्ञ हैं वे भाषाविद नहीं है ।

जब फॉन्टस अथवा की-बोर्ड के विकल्प का निर्माण किया जाता है तब यह कमी बहुत खलती है। भाषाविद और कंप्यूटर तकनीकी के ज्ञाता अलग अलग होने के कारण एक-दूसरे की जरूरतों को पूरी तरह से समझ अथवा समझा नहीं पाते हैं। इसका नतीजा यह है कि कंप्यूटर पर भाषा अपने मानक रूप में उपलब्ध ना होकर कुछ कमियों के साथ उपलब्ध हो रही है। भाषा और तकनीक का यह संगम दो प्रकार का मानकीकरण चाहता है। पहला- भाषा और फॉन्ट के स्तर पर और दूसरा की-बोर्ड के स्तर पर। यूनिकोड एनकोडिंग से पूर्व भी कंप्यूटर पर कई प्रकार के फॉन्टस उपलब्ध थे जो एक दूसरे की सहायता नहीं कर पाते थे। कमोवेश यही हाल हिंदी की की-बोर्ड का भी था। यूनिकोड एन्कोडिंग के बाद भी उपलब्ध फांटस में एकरूपता नहीं है। इतना जरूर है कि यूनिकोड समर्थित फॉन्टस एक दूसरे को दर्शाने में समर्थ है किंतु इनके रूप भिन्न-भिन्न है। की-बोर्ड में जहां इनस्क्रिप्ट की-बोर्ड को मानक मान लिया गया है वहीं रेमिंगटन एवं फोनेटिक की-बोर्ड इस मामले में पिछड़ गए हैं। रेमिंगटन की-बोर्ड की दुरूहता जग प्रसिद्ध है तो फोनेटिक की-बोर्ड की विभिन्न शैलियां प्रचलित है। इनमें एकरूपता का नितांत अभाव हैं।

फोनेटिक की-बोर्ड की प्रसिद्धि एवं मांग को देखते हुए यह जरूरी हो गया कि इस दिशा में कोई मानक निर्धारित कर एकरूपता लाई जानी चाहिए जिससे अनिश्चितताओं पर विराम लग सके। इसके लिए अच्छे भाषाविदो और कंप्यूटर 'एक्सपर्ट' का एक साथ कार्य करना आवश्यक है। यदि इनमें तालमेल नहीं होगा तो 'एक्सपर्ट' शब्द में प्रयुक्त 'रेफ' वाला 'र' कभी भी अपने सही स्थान पर नहीं पहुंच पाएगा। भाषा के नियमानुसार यह 'र' 'स' के ऊपर लगना चाहिए क्योंकि 'स' ही स्वरयुक्त एवं पूर्ण है। जैसे कि 'पार्श्व' में 'र' 'व' के ऊपर लगा है। यही कारण है कि यूजर को फॉन्टस भिन्नता एवं की-बोर्ड में एकरूपता ना होने के कारण असमंजस एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

इन कठिनाइयों के अलावा यूनिकोड समर्थित फॉन्टस से संबंधित एक प्रमुख समस्या यह है कि इसमें किए गए कार्य को पीडीएफ में तो कन्वर्ट किया जा सकता है किंतु जब पीडीएफ से वापस वर्ड में कन्वर्ट करने का प्रयास किया जाता है तो फाइल करप्ट हो जाती है और डेटा का नुकसान हो जाता है जबकि अंग्रेजी और नॉन यूनिकोड फॉन्टस का प्रयोग करने पर यह समस्या नहीं आती। इन सभी समस्याओं का हल यही है कि अच्छे भाषाविद कंप्यूटर तकनीक के विशेषज्ञों के साथ मिलकर फॉन्टस एवं साफ्टवेयर तैयार कराएं जिससे इन समस्याओं से निजात पाया जा सके।

हिंदी प्रोद्यौगिकी की भाषा को भी प्रभावित किया है। जैसे 'अवतार' शब्द कंप्यूटर विज्ञान, कृत्रिम बुद्धि और यहां तक कि रोबोटिक्स में भी प्रयोग किया जाता है।

लगभग बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में हिंदी का अंतरराष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। वेब, सिनेमा, संगीत और बाजार के क्षेत्र में हिंदी की मांग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा कि नहीं।

कृष्णस्वामी अय्यर (जस्टिस) का मानना है कि-

''भारतीय भाषाओं के लिए भी कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी हो सकती हैं।''

विश्व के लगभग डेढ़ सौ विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिंदी की अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में 25 से अधिक पत्र पत्रिकाएं लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही है। यू. ए. ई. के एफ एम सहित अनेक देश हिंदी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वाले, जापान के एन एच के वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिंदी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

विद्वान पुरुषोत्तमदास टंडन लिखते भी हैं-

''जीवन के छोटे से छोटे चित्र में हिंदी अपना दायित्व निभाने में समर्थ है''

बहरहाल भाषा का व्याकरणिक ज्ञान, भाषा कौशलों का विकास तथा पाठ्य पुस्तकों का सामान्य अध्यापन भाषा शिक्षण के लिए पर्याप्त नहीं है। भाषा ज्ञान को व्यवहारिक तथा वास्तविक बनाने के लिए शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों को विशेष प्रयास करना अपेक्षित है। यह प्रयास ही समुन्नयन कार्य कहलाता है। अध्यापक पढ़ाते समय विशेष कार्यकलापों का आश्रय लेकर तथा विषय का विस्तृत ज्ञान देकर छात्रों के भाषा अधिकार को समृद्ध बनाता है। शिक्षार्थी स्वयं भाषा की गहराइयों को तथा विषय-वस्तु के गंभीर पक्षों को साहित्य के अध्ययन से समझने का प्रयास करता है तथा शब्दकोश आदि के प्रयोग से अपने ज्ञान को विस्तृत करता है। शिक्षक-शिक्षार्थी को समृद्ध साहित्य को पढ़ने की प्रेरणा देकर विविध साहित्य प्रतियोगिताओं, एकांकी नाटकों के अभिनय तथा संगीत नाटिकाओं के आयोजन व प्रतिभागिता से उनकी साहित्य में रुचि जागृत कर सकता है।

भाषिक एवं साहित्य की योग्यताओं की समृद्धि के लिए संबोधन कार्य से-

1. मौखिक अभिव्यक्ति की दक्षता का विकास होता है।
2. लिखित अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों की दक्षता का विकास होता है।
3. विषय सामग्री के चयन संयोजन तथा प्रस्तुतीकरण की दक्षता विकसित होती है।
4. साहित्यिक सौंदर्य तत्त्वों के बोध एवं सराहना करने की क्षमता में वृद्धि होती है।
5. सृजनात्मकता में वृद्धि होती है।
6. मानवीय गुणों का साहित्य में समावेश तथा रूढियो का खंडन होता है।
7. भाव, विचार, छंद. प्रतीक आदि सभी दृष्टियों से नवीनता।
8. कल्पना सौंदर्य, नाद और ध्वनि सौंदर्य, विचार सौंदर्य, शैली सौंदर्य तथा भाव सौंदर्य में नवीनता।
9. मुक्त रूप से स्वतंत्र कल्पना द्वारा मौलिक अभिव्यक्ति से सृजनात्मक लेखन की रचना करना।

वहीं जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों- जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है- में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त

होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बडी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन 1999 में "मशीन ट्रांसलेशन समिट" अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकडों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है। अंग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान अनुसंधित्सु भी सक्रिय हैं जो हिंदी को चीनी के ऊपर अर्थात् प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन २005 के हवाले से लिखा है कि,

''विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1,02,25,10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90,04,06,614) है।''

यदि यह मान भी लिया जाय कि आँकड़े झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बड़ी भाषाओं में से है। लेकिन वैज्ञानिकता का तकाज़ा यह भी है कि हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें कि अंग्रेजी के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज्यादा देशों में फैले हुए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली सबसे प्रभावशाली भाषा बनी हुई है।

महान विद्वान सर जार्ज ग्रियर्सन का मानना भी है कि –

''समस्त आर्यावर्त्त या ठेठ हिंदुस्तान की राष्ट्र तथा शिष्ट भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी है।''

चूंकि हिंदी का संवेदनात्मक साहित्य उच्चकोटि का होते हुए भी ज्ञान का साहित्य अंग्रेजी के स्तर का नहीं है अत: निकट भविष्य में विश्व व्यवस्था परिचालन की दृष्टि से अंग्रेजी की उपादेयता एवं महत्त्व को कोई खतरा नहीं है। इस मोर्चे पर हिंदी का बडे ही सबल तरीके से उन्नयन करना होगा। उसके पक्ष में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज अंग्रेजी के बाद वह विश्व के सबसे ज्यादा देशों में व्यवहृत होती है।

विलियम कोरी ने 1816 में लिखा भी था कि–

''हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोले जाने वाली भाषा है ।''

यदि हम इन आँकडों पर विश्वास करें तो संख्या बल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिंदी में साहित्य-सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह ८वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान २१वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत-अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्वस्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसके पास पच्चीस लाख से ज्यादा शब्दों की सेना है। उसके पास विश्व की सबसे बड़ी कृषि विषयक शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भो से दूर हो गए हैं उनका त्याग भी कर दिया है।

रचनाकार रामवृक्ष बेनीपुरी लिखते है –

"समाज के हर पथ पर हिन्दी का कारवाँ तेजी से बढ़ता जा रहा है।"

आज हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा हैं।

जहाँ तक देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी की शाब्दी और आर्थी संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार –

"हमारी नागरी लिपि दुनिया की सबसे बड़ी वैज्ञानिक लिपि है ।"

हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है।

चंद्रबली पांडेय लिखते भी है कि–

''विश्व की कोई भी लिपि अपने वर्तमान रूप में नागरी लिपि के समान नहीं।''

हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिंदी भाषा में है बशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर, उपग्रह चैनल हिंदी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं। आज विश्व में सबसे ज्यादा पढे जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढा-लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है।

वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिंदी सात चौनलों के माध्यम से धूम मचाए हुए है। विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिंदी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है।

'राधाचरण गोस्वामी' की ये पंक्ति यहां सार्थक जान पडती हैं कि –

''कामिनि भाल में हिन्दी बिन्दी रूप,

प्रकट अग्रवन में भई ब्रज के निकट अनूप।''

वस्तुतः हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई–मेल, ई–कॉमर्स, ई–बुक, इंटरनेट, एस. एम.एस. एवं वेब जगत में बडी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं।

माइक्रोसाफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्व मन के सुख–दुःख, आशा–आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।

आज जब २१वीं सदी में वैश्वीकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान –प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिंदी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहु सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस भाषा की समृद्धि को लेकर कहा भी है कि –

''हिन्दी भाषा उस समुद्र जलराशि की तरह है जिसमें अनेक नदियाँ मिली हो।''

आज हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में जितने रचनाकार सृजन कर रहे हैं उतने बहुत सारी भाषाओं के बोलने वाले भी नहीं हैं। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही दो सौ से अधिक हिंदी साहित्यकार सक्रिय हैं जिनकी पुस्तकें छप चुकी हैं। यदि अमेरिका से "विश्व हिंदी जगत" तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' हिंदी की दीपशिखा को जलाए हुए हैं तो मॉरीशस से विश्व हिंदी समाचार, सौरभ, वसंत जैसी पत्रिकाएँ हिंदी के सार्वभौम विस्तार को प्रामाणिकता प्रदान कर रही हैं। संयुक्त अरब इमारात से वेब पर प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रिकाएँ अभिव्यक्ति और अनुभूति पिछले ग्यारह से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन पर दिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा भी है कि –

''हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।''

आज जरूरत इस बात की है कि हम विधि, विज्ञान, वाणिज्य तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पाठ उ॰ सामग्री उपलब्ध कराने में तेजी लाएँ। इसके लिए समवेत प्रयास की जरूरत है। यह तभी संभव है जब लोग अपने दायित्वबोध को गहराइयों तक महसूस करें और सुदृढ़ इच्छाशक्ति के साथ संकल्पित हों। आज समय की माँग है कि हम सब मिलकर हिंदी के विकास की यात्रा में शामिल हों ताकि तमाम निकषों एवं प्रतिमानों पर कसे जाने के लिये हिंदी को सही मायने में विश्व भाषा की गरिमा प्रदान कर सकें।

संदर्भ

1.ह्र प्रो. नरेश मिश्र (भाषा और हिंदी भाषा का इतिहास, पृष्ठ. 426)
2. दिनेश प्रसाद सिंह (वैज्ञानिक और तकनीकी हिंदी, अध्याय–2, पृष्ठ संख्या– 46)
3. राहुल खटे (हिंदी और भारतीय भाषाओं में तकनीक का योगदान) 2016 – प्रकाशित लेख
4. बालेंदु शर्मा दधिचि (तकनीकी विकास से समृद्ध होगी हिंदी) पांचजन्य पत्रिका में 2018 में प्रकाशित लेख
5. डॉ. मनीष कुमार मिश्र का लेख
6. रंगराज अयंगर (' वैज्ञानिक विकास में हिंदी' – 2015 में प्रकाशित लेख)
7. डॉ. मनीष कुमार मिश्रह्र का लेख

❖

युवा कवयित्री एवं सामाजिक चिंतक
एम. ए. (उत्तरार्ध) हिंदू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
मो.– 7859926773, पताः सी –५६ वैस्ट ज्योति नगर इनकलेव, लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली –९४ ईमेल komal43857@gmail-com

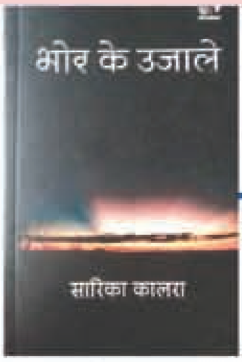

भोर के उजाले

डॉ. विजया सती

सारिका कालरा का पहला कहानी संग्रह है – 'भोर के उजाले'। इस संग्रह में ग्यारह कहानियों के साथ तीन बाल कहानियाँ भी संकलित हैं। ये सभी कहानियां पिछले एक दशक में लिखी गईं।

इन कहानियों में कथाकार ने अपने मन-मस्तिष्क पर पड़ी 'अमिट स्मृतियों' को सजीव किया है. उम्र के विभिन्न पड़ावों पर हुए वे अनुभव यहाँ दर्ज हुए हैं जो बीतते नहीं, कचोटते हैं।

स्त्री जीवन के कई पहलुओं को कहानियां सहज ही छू लेती हैं। या कहें कि इन कहानियों में नारी की आँखों से देखा गया संसार है। ये कहानियाँ महानगरीय जीवन की विषम हलचल और गंवई मन की तरलता का स्पर्श भी करती हैं। बच्चे और बड़े होते बच्चों का मन: संसार भी इन कहानियों में खुलता है। ज्यादातर कहानियाँ छोटी हैं विषय की विविधता लिए हुए। इनमें सेना की पृष्ठभूमि है और बालमन की उलझनें भी। अपने स्व को जाने की कोशिश करती शहरी युवा स्त्रियां दीपाली और अनुमेहा हैं तो गाँव से आकर शहर की चकाचौंध में रहने को संघर्ष करती केसर और बसन्ती भी।

तमाम मुसीबतों के बावजूद जीवन को जी ले जाने का भाव, उसे संवारने, सुधारने, बदलने का भाव इन कहानियों को पढ़ने की खास वजह देता है।

स्त्री जीवन प्रसंगों की अधिकांश कहानियाँ द्वन्द् में जीती सामयिक स्त्री के मन को टटोलती जरूर हैं, लेकिन यह वह मन है जो स्व को पहचान कर स्वयं को बटोर भी ले, संजो ले, व्यवस्थित कर ले। 'नाइटिंगेल – माई लव' कहानी की अनुमेहा का एक संसार पति और बेटी का लंच-बॉक्स, स्कूल बैग, स्कूल बस और सेविका लक्ष्मी रचते हैं और खुशियों के संसार के बावजूद, दिल हल्का करने को एक और संसार बन जाता है इन्टरनेट पर चैट रूम में मोहित की उपस्थिति से। यह दो हिस्सों में बंटी स्त्री की दुनिया की कहानी है एक दुनिया वास्तविक और एक वर्चुअल।

'उसका आसमान' कहानी में दीपाली एक ठेठ भारतीय मध्यवर्गीय परिवार से निकल, बहुत सी बाधाओं को पार कर आत्मनिर्भर बनकर अपनी खुशियों का संसार तलाश लेती है।

'बचा रहेगा सिर्फ एक एहसास' नेत्रहीन नलिनी के जीवन की संवेदनशील कहानी होने के साथ-साथ महानगर, प्रदूषण, जहरीला धुंआ, महत्वाकांक्षा के पीछे भागते लोग, दुःख-ग्लानि-शोक-लोभ-ईर्ष्या-नीचता-असफलता-छल-क्रोध जैसे भावों की कहानी भी है, जहाँ मन की खुशफहमियाँ ज्यादा देर तक नहीं चल पाती।

'कैसी प्रीत लगाई' कहानी महानगर से गाँव की ओर प्रस्थान करती, गाँव की ही तरह सादगी भरी एक अधूरी प्रेम कथा है. गाँव का उत्सव सबका उत्सव है। हंसमुख सुंदर सत्या सारे गाँव की चहेती है। भोली-भाली सत्या ने मन में जिसे चाहा, उसे बिन भुलाए किसी और से ब्याह हो रहा है उसका। सत्या का आंतरिक रुदन कोई नहीं देखता, सब उसके बाहरी आंसू और विदा समय की दुःख की पुकार न सुनकर हैरान होते हैं। उसके निश्छल भाव को लांछित करते हैं। ... आजकल की लड़कियाँ भी ना!

इस कहानी में कथाकार सहसा पहाड़ के खेत-खलिहान और चरित्रों के संवाद में डूब जाती है. उस परिवेश को जीवंत कर देती है जहां अनाज-घास-गोबर-लकड़ी सिरों पर लादते-लादते जिन्दगी बीत जाती है, हल चलाने वाले हाथ न बचे तो खेती कैसे होगी – पलायन के इस दुःख का साझा है।

'आँखों देखे सपने' कहानी हॉस्टल की जिन्दगी में रूम मेट द्वारा सेक्सुअल एब्यूज की कहानी है तो मैं हूँ न पापा' आठ साल के बच्चे अनमोल के अपने फौजी पिता की प्रतीक्षा की कहानी है. उसके संकल्प की कहानी है।

'नफरत' बाल मन के उस विषाद को शब्द देती है जिसके चलते बच्चा घर से भागा। पर पिता की खोज और प्यार ने दोनों के बीच एक नए रिश्ते को जन्म दिया।

पौधे और जीवन कितने समान हैं इसे दर्ज करती है कहानी 'पता बदल गया है'। 'भोर के उजाले' शीर्षक कहानी बुराई के अँधेरे से लड़ने के लिए उन उजालों की बात करती है जो अभी भोर के हैं किन्तु ये ही अपनी चमक अँधेरे पर फैला देंगे। अपने प्रिय शहर को दोबारा जीने की कोशिश आकार लेती है 'चलो.. कि जिन्दगी बुलाती है' कहानी में। यह कहानी एक शहर का रेखाचित्र बनकर, शहर के अन्तरंग के साक्षात्कार में परिणत हो जाती है।

फुटपाथ के बसेरे से त्रस्त केसर की कहानी है बसेरा।

संग्रह के अंत में तीन बाल कहानियां भी हैं – तीसरी बहन के आगमन पर मां की उपेक्षा से जिम्मेदारी महसूस करती सबसे बड़ी बेटी की कहानी, मध्यमवर्गीय परिवार के मयंक और कामवाली के बेटे गोलू की दोस्ती की कहानी जहां कोमल बालमन के दुःख को दादी की सीख परिष्कृत करती है और अंत में दिल्ली दंगों के बीच सहपाठी रजत और अहमद की समझदारी की कहानी जिसमें बच्चे की मानसिकता पर असर करता मीडिया और इसके बीच घर की भूमिका को रेखांकित किया गया है

इन सधी-सुलझी हुई कहानियों में सारिका एक जिम्मेदार कथाकार की तरह हमारे सामने आती हैं. पिछले दस वर्षों में जीवन में तकनीक का हस्तक्षेप अनवरत बढ़ा है. ये कहानियां उसकी गवाह हैं और इनकी भाषा में उसके प्रमाण।

इन कहानियों की सामाजिक सरोकारों से जुड़ी अंतर्वस्तु गहरे प्रभावित करती है।

पुस्तक	–	भोर के उजाले
लेखिक	–	सारिका कालरा
मूल्य	–	180 रुपये
प्रकाशक	–	रश्मि प्रकाशन लखनऊ

22 हीरा नगर हल्दवानी, नैनीताल 263139 उत्तराखंड
मो. 8587093235 ईमेल vijayasatijuly1@gmail.com

शब्दभेदी

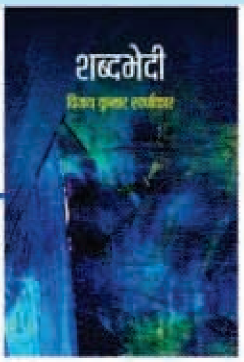

द्विजेन्द्र 'द्विज'

समकालीन गजल के क्षितिज पर एक स्वर्णिम हस्ताक्षर का नाम विजय कुमार स्वर्णकार है। समकालीन जीवन के यथार्थ के तमाम काँटों की वेदना से गुजरते हुए भी, ग़ज़ल के फूलों से पराग चुनकर लाने का उनका हुनर विस्मित करने वाला है।

सफल सम्प्रेषण का मूल तत्व सर्वप्रथम स्वयं से संवाद है। इस शर्त का पालन करते हुए स्वयं से निरंतर खरा-खरा संवाद करते हुए, आवाम से उसकी भाषा में बात करने वाले गजल-गुरु विजय कुमार स्वर्णकार की प्रखर व सफल संप्रेषण क्षमता का दुर्लभ गुण भारतीय ज्ञानपीठ से उनके सद्य प्रकाशित प्रथम गजल संग्रह शब्दभेदी में भरपूर मिलेगा। सत्य की तमाम परतों, पहलुओं व रंगों को बहुत बारीकी से कई आँखों से देखते हुए रची जाने वाली शायरी ही इस संकलन की शायरी की तरह बहुआयामी हो सकती है, एक दम खरे सच की तरह और:

सच की परतें भी हैं, पहलू भी हैं और रंग कई
गौर से देखिये सच और कई आँखों से (पृष्ठ : 87)

कवि ने अपने और समाज के आँसुओं के इन मोतियों को 'आँखों से अलग सीप' में पाल कर, सच्चे-सुच्चे शेरों में ढाला है:

मोतियों-से हैं ये आँसू इन्हें महफूज रखो
इनको आँखों से अलग सीप में पाला जाए (पृष्ठ : 92)

इनकी नई चेतना का स्रोत एक सजग और अनुशासित शाइर का जागृत आत्म/जागरूक विवेक है जो गजल-साहित्य में नवजागरण के संवाहक की सीरत और सूरत लिए हुए है।

शम्अ, परवाना,परिंदे जाल, कफस और सैयाद जैसे पारंपरिक विषयों को एकदम नई शैली में अपने शेरों में ढालने की आधुनिकता और प्रतिभा इनके यहाँ है। इन विषयों पर गजल की लगभग चार सौ वर्षों से चली आ रही परम्परा में कहन और कथ्य का ऐसा अनूठा संगम शायद ही कहीं और मिलता हो:

अंत में बातियों ने वो जौहर किया
सोच में था तमस उनपे क्या वार दे (पृष्ठ : 25)

इन गजलों में तमाम समकालीन विश्वसनीय विषयों और विमर्शों की विविधता का विस्तीर्ण आकाश है। इनके अनंत कैन्वस पर सदी बदल जाने के बावजूद इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती मजदूरिन की विडम्बना उभरती है:

सदी बदल गई फिर भी दिखाई देती है
इलाहाबाद के पथ पर वो तोड़ती पत्थर (पृष्ठ : 20)

लगान की किस्तें भर पाने में असमर्थ स्वाभिमानी किसान की दुखद त्रासदी शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों रूपों में झलकती है:

तकाज़े करने लगीं जब लगान की किस्ते
तो भर के चल दिए खुद्दार जान की किस्ते (पृष्ठ : 106)

प्रत्येक स्थिति में अपने आत्म-सम्मान को अक्षुण्ण रखने का आह्वान उजास देता है, और नयनाभिराम उजाले न देख पाने में अक्षम दृष्टि-सम्पन्न आँखों को नुमाइशी पत्थर कहने का साहस झलकता है:

नजर-नवाज़ उजाले कहाँ उन आँखों में
जड़े हुए हैंजहाँ दो नुमाइशी पत्थर (पृष्ठ : 23)

ये गजलें हमारे क्रूर समय के विरुद्ध जागरण की गजलें हैं। इनमें आत्मसम्मान, आत्मावलोकन और आत्ममंथन के लिए निरन्तर प्रेरित करता हुआ, आत्मबल और आशावाद का सम्बल है।

जीवन की तमाम संभावनाओं के प्रति शाइर की प्रतिबद्धता स्पष्ट है। ये गजलें वादों-विवादों के साँचें में न ढलते हुए वस्तुनिष्ठता के मंत्र को साध कर एक जागृत और स्वतंत्र अस्तित्व के द्वारा कही गई गजलें हैं:

साँचे में न ढलने का हुनर सीख रहा हूँ
कुछ और पिघलने का हुनर सीख रहा हूँ
सृष्टि में हर कोई अनोखा है
किसलिए ढूँढ़िये स्वयं जैसे ? (पृष्ठ : 26)

स्वयं से भिन्न लोगों को उनकी भिन्नता व अनन्यता में स्वीकार करने के इस अस्तित्ववादी मूल मंत्र को जनमानस अगर आत्मसात कर ले तो दुनिया में संकीर्ण मानसिकता का रक्तबीज स्वयं समाप्त हो जाएगा। व्यष्टि से समष्टि तक शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और साम्प्रदायिक सद्भाव का यह संदेश मूल मानवीय संवेदना का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है।

परन्तु अतीत-जीवी कर्णधारों के लिए उनकी यह प्रश्नवाचक चेतावनी भी समीचीन है:

आज ही तय कीजिए कल क्या कहेंगे कौम को
हम अभी आज़ाद हैं या हम कभी आज़ाद थे (पृष्ठ : 110)

भाषाई स्तर पर ये गजलें केवल हिन्दी- उर्दू - अरबी ही नहीं, फ्रेम, मशीन, रिदम, रिवर, बोट, ममेंटो रीटेक, फुटनोट, फुटपाथ, एल्बम और म्यूजियम जैसे अँग्रेजी भाषा के शब्दों को भी उनके मूल स्वरूप में अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती हैं। अतः इन गजलों की भाषा 'वसुधैव कटुम्बकम' के सन्देश की भाषा है।

अतिश्योक्ति नहीं होगी यह कहना कि शिल्प, कहन और अर्थवत्ता के नये प्रतिमान स्थापित करने वाली ये गजलें, गजल-साहित्य जगत को बहुत कुछ नया देंगी। बकौल विजय कुमार स्वर्णकार:

हम अपनी तो नहीं कहते हमारी रोशनी लेकिन
वहाँ मौजूद हो शायद जहाँ तक तुम कभी पहुँचो (पृष्ठ : 20)

पुस्तक	-	शब्दभेदी
लेखक	-	विजय कुमार स्वर्णकार
मूल्य	-	250 रुपये
प्रकाशक	-	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

वरिष्ठ ग़ज़लकार
वार्ड न. 13 लोअर बड़ोल दाड़ी-176057, त.-धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश
मो. 9418465008, ईमेल dwij.ghazal@gmail.com

उषा अग्रवाल

मूमफल्ली टाईमपास

कॉलेज पहुंचने के बस कुछ पहले अचानक उसकी स्कूटी का टायर पंचर हुआ और चलती गाड़ी लहरा कर ,सामने पड़े पत्थर से टकरा कर गिर पड़ी। नैना के सर पर चोट तो ज्यादा नहीं आई पर वह घबरा उठी। आदतन जब उसने अपने बॉयफ्रेंड को मोबाइल पर कॉल किया घंटी बजती रही पर उसने फोन नहीं उठाया। कुछ देर बाद उसका मैसेज आया-'' सॉरी अभी मैं बात नहीं कर सकता, अपने परिवार के साथ हूं तुमसे बाद में बात करूंगा'' ।

नैना की आंखों में आंसू भर आए !भैया को फोन लगाते ही उन्होंने कहा -''तुम चिंता मत करो ,वहीं -कहीं आराम से बैठो मैं जल्दी पहुंचता हूं'' ।

थोड़ी ही देर में भैया मैकेनिक को साथ ले नैना के बताए स्थान पर पहुंच गए। गाड़ी मैकेनिक को सौंप प्यार से नैना को अपनी गाड़ी में बिठा डॉक्टर के पास ले गए।

नैना सोचने लगी- भैया अपने ऑफिस का काम बीच में छोड़ मेरा फोन सुनते ही दौड़े चले आए ,मेरे बॉयफ्रेंड ने तो यह तक नहीं पूछा कि क्या बात है। जबकि उसका फोन कभी भी आए, मुझे कभी भी बुलाए ,मैं हरदम उसके लिए हाजिर रहती हूं ।यहां तक कि घरवालों और अपने यही भैया की उपेक्षा करके ......! आखिर उसके लिए मैं मायने क्या रखती हूं.... ?

तभी सामने से गुजरते हुए एक ठेले वाले ने आवाज लगाई -''मूमफल्ली टाइमपास, टाइमपास मूंगफली.....!''

मासूमियत

''मम्मी, कितने सुंदर रंग-बिरंगे फूल खिले हैं। देखो यह व्हाइट कलर का छोटा- सा फूल !अहा !! इसमें से तो कितनी अच्छी सुगंध आ रही है ! क्या मैं एक फूल तोड़ लूं ?''

सुबह -सुबह स्कूल के लिए तैयार हुई बेटी को नीचे ऑटो तक छोड़ने आते समय वह हमारे मकान मालिक के बगीचे में लगे फूलों को देख तितली की भांति खुश हो रही थी। मैंने उसे समझाते हुए कहा ''नहीं बेटा फुल पेड़ों पर ही अच्छे लगते हैं दूसरों के बगीचे से बिना पूछे कभी फूल नहीं तोड़ने चाहिए।''

मेरे समझाते -समझाते भी पिंकी ने क्यारियों में लगे अनगिनत मोगरे के फूलों में से एक फूल तोड़ ही लिया। केजी में पढ़ने वाली पिंकी फूल की खुशबू से मस्त हो झूम- झूम कर चल रही थी। मैं डर रही थी कि मकान मालिक ने देख लिया तो चिल्लाएँगे। लेकिन उन्होंने अपने कमरे की खिड़की से पिंकी को फूल तोड़ते देख ही लिया था। दरवाजा खोल बाहर आ उन्होंने हमें डांटना शुरू कर दिया, ''फुल क्यों तोड़ा, पता भी है, कितनी मेहनत करने पर यह फूल तैयार होते हैं। मिसेज गर्ग, क्या आप अपने बच्चों को समझाती, सिखाती नहीं हैं ?''

मैं क्या जवाब देती, आंखों में आंसू भर आए थे। 'सॉरी' बोलते हुए मैंने पिंकी को ऑटो में बिठाया तो वे ऑसू छलकने लगे थे। पिंकी ने अपने छोटे- छोटे हाथों से मेरे आँसू पोंछ दिए। मैं लगभग दौड़ते हुए ऊपर अपने फ्लैट की ओर बढ़ गई थी।

पिंकी के आने का समय हो गया था। मैंने बाल्कनी से झांक कर देखा -हट -हट की आवाज के साथ पिंकी अपने हाथ में छोटी - सी लकड़ी लिए कम्पाउण्ड में घुस आई गाय और उसकी बछिया को भगा रही थी। मेन गेट खुला रह गया होगा और दोपहर का समय होने से मिस्टर देशपांडे और उनका परिवार आराम से सो रहा होगा। तभी गाय अंदर घुसकर उनके पौधों को खाने वाली थी। गाय और बछिया को भगाकर गेट बंद कर पिंकी ऊपर आई तो मैंने उससे कहा, ''तुम गाय को भगा रही थीं, वह तुम्हें मार देती तो ?और फिर सुबह अंकल ने तो तुम्हें डांटा था। खा लेने देना था उनके पूरे पौधे.... ।''

''मम्मी ,मैंने एक फूल तोड़ा था तो उन्होंने इतना डांटा। गाय को पूरा पौधा खाते देख देशपांडे अंकल उसे डंडे से खूब मारते। गाय को 'सॉरी' बोलना भी नहीं आता। उसकी बिटिया (बछिया) अपनी मम्मा (गाय) की आँख में आए आँसू भी नहीं पोंछ सकती , इसीलिए मैंने चुपचाप उन दोनों को भगा दिया।''

पिंकी ने मासूमियत से जवाब दिया और मैंने कसकर उसे अपने सीने से लगा लिया।

❖

वरिष्ठ लघुकथाकार
201, साई रीजेंसी, रवि नगर चौक, अमरावती रोड, नागपुर 440033
संपर्क: 9028978535 ईमेल : agrawalusha1212@gmail.com

अशोक वाधवाणी

बिना टिकट

आलोक की पत्नी खुशबू ने तैश में आकर अपने पति से कहा, 'लगता है बचपन में माँ ने सच्चाई की घुट्टी पिलाई होगी या फिर जवानी में ईमानदारी के कीड़े ने काटा होगा। हर समय देश प्रेम का राग आलापते रहते हो। ये वो करना राष्ट्रद्रोह है। ऐसा वैसा करने से राष्ट्र का अपमान होता है। ऐसी प्रामाणिकता के बदले तुम्हें कौनसा पुरस्कार मिला है। सरकारी नौकरी के बावजूद सिर्फ वेतन ही लेना सीखा है। हटो परे, रेल की टिकटें मैं खुद निकालती हूँ।' दरअसल सभी पड़ोसी मिलकर एक शादी में शामिल होने निकट के शहर जा रहे थे, जिनमें बच्चे ज्यादा थे।

डिब्बे में टिकट चेकर को आया देखा तो खुशबू की सिट्टी पिट्टी गुम हो गई। पेट में गुड़गुड़ होने लगा। चेहरे पर पसीने की हल्की हल्की बूँदें जमा होने लगी। सोचने लगी, अब सबके सामने जग हँसाई होगी। जुर्माना भरना पड़ेगा सो अलग। खुद को कोस रही थी कि सिर्फ 60 रुपये बचाने की खातिर, पति को खरी खोटी क्यों सुनाई? चेकर ने बारी बारी से बच्चों और बड़ों को गिना। आश्वस्त होने पर सारी टिकटें आलोक को लौटा दी। खुशबू को समझते देर न लगी कि आदत के अनुसार आलोक ने उसकी नजरें बचाकर बच्चों की टिकटें खरीदी थी। खुशबू ने पति की ओर देखा, वे मुस्कुरा रहे थे। उनसे नजरें मिला न सकी। शर्म के मारे नजरें झुका ली अपनी।

❖

काबलियत

लोक को पढ़ने का शौक था। पढ़ते - पढ़ते लेखन की लत लग गई। माता -पिता और पत्नी खुशबू को भी आलोक का लिखना पसंद नहीं था। उसकी प्रकाशित रचनाओं को घर के सभी सदस्य देखना या पढ़ना जरूरी नहीं समझते थे। एक रविवार छुट्टी के दिन सुबह आलोक अखबार पढ़ने में व्यस्त थे। पास में बैठी खुशबू मोबाइल पर कुछ पढ़ने में व्यस्त थी। थोड़ी देर बाद नम आंखों से आलोक को देखकर कहा, "अभी अभी वाट्सएप्प पर दिल को छू लेने वाली मर्मस्पर्शी, हृदयस्पर्शी लघुकथा पढ़ी है। पति -पत्नी के पवित्र, गहरे, घनिष्ठ रिश्ते पर बड़ी सूझ -बूझ के साथ प्रकाश डाला गया है। लेखक का नाम नहीं है। लेकिन जिन्होंने भी लिखी है, प्रशंसा के पात्र हैं। आप भी पढ़िए।" कहकर खुशबू ने आलोक को मोबाइल थमाया।

आलोक ने जैसे ही पढ़ना शुरू किया उनके चेहरे पर मुस्कुराहट तैरने लगी। पूरी लघुकथा पढ़कर खुशबू को मोबाइल लौटा दिया और अपने कमरे की ओर चल दिए। आलोक का प्रतिक्रिया दिए बिना यूं उठकर जाना, खुशबू को अखरा। कुछ देर पश्चात् आलोक एक फाइल लेकर आए। उसमें उनकी प्रकाशित रचनाओं की कटिंग थी। खुशबू को एक कटिंग दिखाकर कहा, "अभी तुमने जो लघुकथा पढ़ी, वो मैंने लिखी थी, जोकि दो महीने पहले फलां पत्रिका में छपी थी।" खुशबू को आश्चर्यजनक झटका लगा। फाइल की सारी कटिंग उलटने - पलटने और पढ़ने पर विस्मय से उसकी आँखें फटी की फटी रह गई। किसी ने सच ही कहा है, हीरे की सही कीमत सिर्फ जौहरी ही जानता है।

❖

ओम इमिटेशन ज्वेलरी, सुरभि बार के सामने, निकट सिटी बस स्टाप
पो.: गांधी नगर-416111 जि.: कोल्हापुर, महाराष्ट्र
संपर्क 9421216288 ईमेल : ashok.wadhwani57@gmail.com

अशोक भाटी

उत्तम जीवन शैली

जगत् गुरु श्रीकृष्ण कह गए
विधि ने चौसर खेली है
महाभारत एक युद्ध नहीं
ये उत्तम जीवन शैली है

बाल्यकाल में राजमहल का
सबका अपना गौरव था
पांडु पुत्र तो पाँच थे केवल
बड़ा वंश वो कौरव था
गुरु द्रोण सबको दे शिक्षा
सोच रहे परमार्थ हुआ
दंभ था जिसको वो दुर्योधन
निश्छल था वो पार्थ हुआ

फिर भी निश्छलता ने देखो
कितनी दुविधा झेली है
महाभारत एक युद्ध नहीं
ये उत्तम जीवन शैली है

सिर्फ जीभ की इक गलती ने
ये कैसा इतिहास लिखा
कहीं विजय की गौरव गाथा
कहीं पूर्णतम रास लिखा
जिसने जीभ का मोल न समझा
समझा नहीं कटारी को
दुतक्रीड़ा में दाँव लगाया
घर की पावन नारी को
पूरी कथा में करुणा व्यथा
जो नारी ने झेली है
महाभारत एक युद्ध नहीं
ये उत्तम जीवन शैली है

चक्रव्यूह का उलझा चक्कर
ये दुनिया से कहता है
जिसे निकलना नहीं आता है
वो अंदर रहता है
अपूर्ण रहे जो इस जीवन में
उनके टूटे सपने हैं
सबसे ज्यादा वार पीठ पर
करते जो वो सब अपने हैं

इसीलिए रिश्तों की चादर
कहीं-कहीं से मैली है
महाभारत एक युद्ध नहीं
ये उत्तम जीवन शैली है
इसी समर के मध्य कृष्ण ने
जग को गीता ज्ञान दिया
जटिल प्रश्न को सरल बनाने
धर्म निहित विज्ञान दिया
जिसके मन न प्रेम रसायन
वो मन बिल्कुल रीता है
स्नेह-त्याग-कर्तव्य सिखाती
श्रीमद्भगवद्गीता है

धर्म-अधर्म का भेद बताए
पुस्तक एक अकेली है
महाभारत एक युद्ध नहीं
ये उत्तम जीवन शैली है।

वरिष्ठ कवि
46, गोवर्धन नगर, साँवेर रोड़, उज्जैन म.प्र. 456010
संपर्क: 9425091461

नंदा पाण्डेय

नीलकंठ

उसे साँप पालने का बहुत शौक था
उसने एक साँप खरीदा
और
मन ही मन गुनगुनाते हुए
उसे अपने आस्तीन में
छुपा लिया

अब उसकी मुस्कान में
विष ही विष झलकने लगा था
अब ! उसे किसी से कोई भय नहीं लगता था
इसलिए
निडर होकर इधर-उधर घूमने लगी थी
इन दिनों वह बोलती कम और
सोचने ज्यादा लगी थी

उस दिन अचानक
दोपहर के सन्नाटे में
उसे बीन की आवाज सुनाई दी,
फिर देखते ही देखते
प्रेम के सारे नियमों को तोड़कर
साँप ने फौरन अपना रुख बदल लिया और
सरक कर उसके मन के खोह में जा घुसा
फिर छिपकर उसे देखने लगा

शर्म से झुकी उसकी आँखों में
प्रतिहिंसा सी जल उठी
कदम लड़खड़ाने लगे और
होंठ अपने आप भींचते चले गए

क्षण भर को उसकी आँखें आसमान की ओर उठी
फिर उसने
सदियों से बह रहे
कभी न खत्म होने वाले
बूंद-बूंद रिसते हुए आक्रोश को
हमेशा के लिए
अपने गले में जमा कर
नीलकंठ बन गई...... !!

मनरंगना

जिस दिन से
मनरंगना के अखाड़े की
जलती हुई धूनी में
मेरा मन रमने लगा

उसी दिन से
मेरी देह में उगने लगा था
नफरत का कांटा
बिन मौसम बरसने वाले
बादल तो यहाँ
रोज ही बरसा करते थे
फिर भी जाने कैसे सूख गई
प्यार वाली बेलें

मेरे लिए
मनरंगना वह मृगमरीचिका निकला
जिसके कल्प-विकल्प को
सुलझाते-सुलझाते
आज ! मेरा सब-कुछ उलझ कर रह गया
और
मैं अनचाहे ही अपना-आप निगल कर
त्रिशूल तान डाकिनी-शाकिनी बन बैठी हूँ... !

❖

ए. के. पाण्डेय (विशेष सचिव) फ्लैट नंबर 2बी,
सूरज अपार्टमेंट, हरिहर सिंह रोड मोरहाबादी
रांची, झारखंड पिन- 834008
मो. 7903507471, ईमेल- nandapandey002@gmail.com

सुशील 'साहिल' की ग़ज़लें

(1)

अगर बाहर नहीं टूटा तो अंदर टूट जाएगा
नहीं तामीर करना काँच का घर, टूट जाएगा

किसी से इश्क़ होने दीजिए इक बार पत्थर को
गुलों की चोट से भी फिर वो पत्थर टूट जाएगा

ख़सो-ख़ाशाक मिट्टी में मिलाना छोड़ मत देना
सनम का वरना कांधा, पैर या सर टूट जाएगा

ख़ुदा के वास्ते तुम प्यार का शहतीर मत खींचो
बहुत नाज़ुक है मेरे दिल का छप्पर, टूट जाएगा

समुंदर की उठी लहरों में ऐसा ज़ोर होता है
ये तेरी आहनी क्या, कोई लंगर टूट जाएगा

(2)

हुआ नहीं है फ़क़त एक काम मुद्दत से
न आया लब पे तेरे मेरा नाम मुद्दत से

नहीं मिली है दिवाली को ईद की दावत
ख़फ़ा-ख़फ़ा हैं दुआ और सलाम मुद्दत से

वो क्या बताएगा कितनी मिठास है उसमें
जो पी रहा है करेले का जाम मुद्दत से

वो पानी पीके भी दरिया से ज़ात पूछे है
पचा रहे हैं जो खाना हराम मुद्दत से

क्यों पांव रखने को कांधा तलाश करता है
यहीं खड़ा है तेरा इक ग़ुलाम मुद्दत से

जिसे गुज़ार के 'साहिल' फ़ना मैं हो जाऊं
मिली नहीं है वही एक शाम मुद्दत से

(3)

लब से, मासूमों की मुस्कान चुराने वाले
कितने बेदर्द हैं अरमान चुराने वाले

इस तरफ़ राह से चुनते हैं ये बच्चे कचरा
उस तरफ़ बैठे हैं सामान चुराने वाले

ये ख़बर आज ही टकराई कई कानों से
आये हैं शहर में कुछ कान चुराने वाले

चौड़े रस्ते का जो देते हैं भरोसा तुमको
बस वही तो लोग हैं दालान चुराने वाले

मालो-ज़र और मोबाइल के कई चोर मिले
अब कहाँ मिलते हैं दीवान चुराने वाले

आजकल आपको पहचान दिलाने की जगह
आ गए आप की पहचान चुराने वाले

होती दानाई जो, 'साहिल' को न करते वापस
कैसे नादान हैं गुलदान चुराने वाले

मुख्य संपादक 'वनिता'
ई-1101, स्टेलर सिटीहोम्स
सेक्टर: ओमिक्रोन 3, ग्रेटर नोएडा-201310
मो. 9871583877 ईमेल : ruby.mohanty@gmail.com

इंदु बैरेट

सर्दी की पहली धूप

आज सुबह क्षितिज से अपनी प्रज्वलित चमक के साथ तुम उभरी हो,
खुली खिड़की से अंदर झांक रही हो तो कभी आकर सोफे पर पसरी हो।
ये सुनहरा दिन और बिना बादलों के चमकदार आसमान,
जो कर रहा है मुझे मानसिक रूप से उच्च और बलवान।
तुम्हारा ये मुझ से बतियाना, गले लगाना मेरी आत्मा तक को तपा जाती हो
रोशनी तो अलाव की भी होती है,पर तुम्हारी ये तपिश, तुम तो कई अवसादों से मुक्ति दे जाती हो।
हो ना अभी तुम, अभी तो तुम्हारे स्पर्श को मेरे हर अंग में समाना है,
मुझे बाहर चमकती घास के ऊपर जा कल्पना के पालने में सुस्ताना है।
देखने हैं सरदी से सिकुड़े तितली, कीट और जीव जंतु को फैलते हुए,
गुलाब, डहलिया,पेसक्यु और लिलि जैसे अनेक फूलों को विकसित होते हुए।

तुम तो जीवन रेखा सी प्रतीत होती हो, काश, तुम्हें हर क्षण अपने पास रख पाती।
पर प्रकृति का नियम भी तो निभाना है।
अभी आई हो तो ठहरो थोड़ा, पता है संध्या तुम्हें जाना है।
हमें भी तो फिर से रात को ही गले लगाना है।
बस इसी आशा में कि
फिर क्षितिज से अपनी प्रज्वलित चमक के साथ तुम उभरोगी,
खुली खिड़की से अंदर झाँकोगी तो कभी सोफे पर पसरोगी।

प्रवासी मन

ऐ मन चल, अपने देश को जा आते हैं,
फिर से इक बार वतन की माटी को मस्तक पर सजा लाते हैं।
वो मिट्टी की सौंधी खुशबू, वो हवायें
गुलिस्ताँ, फिजा, बहार और सदायें।
वहाँ देश के हर कोने में हर वासी में कितना प्रेम हम पाते हैं।
चल भारत के हर उस क्षण को महसूस कर आते हैं,
ऐ मन चल अपने भारत को जा आते हैं।
फिर से इक बार वतन की माटी को मस्तक पर सजा लाते हैं।
सावन का महीना वो बारिश की मस्ती,
सर्द भरी रातें और तपती हवायें
वहाँ तो लोग हर इक बात में खुशियाँ ढूँढ़ ही लाते हैं,
चल हम भी हर मौसम को फिर से जी आते हैं।
ऐ मन चल, अपने देश को जा आते हैं।
फिर से इक बार वतन की माटी को मस्तक पर सजा लाते हैं।
वो ढाबे, बस अड्डे, स्टेशन, पिक्चर हॉल, दौड़ भाग और हलचल,
वो चाय की टपरी पर सुख, दुख की बातें,
गम हो या खुशी वहाँ तो हर रिश्ता मरते दम तक निभाते हैं।
वो हर इक पल बहुत याद आते हैं।
ऐ मन चल, अपने देश को जा आते हैं।
फिर से इक बार वतन की माटी को मस्तक पर सजा लाते हैं।
होली, दिवाली, बैसाखी, ईद,
नवरात्रि, क्रिसमस हो कैसा भी उत्सव,
सादगी भाईचारे से मिल-जुलकर मनाते हैं।
चल सच्चाई, आस्था विश्वास को जीकर आते हैं
ऐ मन चल, अपने देश को जा आते हैं।
फिर से इक बार वतन की माटी को मस्तक पर सजा लाते हैं।
बरसों से बना कर बाँध जो बैठे हैं सब यहाँ,
आज तोड़ इसे,
कुछ वक्त हम अपनों संग बिता आते हैं,
ऐ मन चल, अपने देश को जा आते हैं।

22, Gainsborough road, Colchester. Co34qn.
United Kingdom, Ph. +44 7478743029
Email : indu.barot@yahoo.in

डॉ. राम प्रवेश रजक की कविताएँ

चेहरा

आते-जाते दिखते
हैं हजार चेहरे
चिंतित चेहरे
शंकित चेहरे
हताश चेहरे
मायूस चेहरे
निराह चेहरे
हँस मुख चेहरे
लक्ष्य हीन चेहरे
दिशा हीन चेहरे
हर फिक्र को
धुँए में उड़ाने के
लिए धरती पर
अवतरित हुए
वयस्क चेहरे
खिलखिलाते, मुस्कुराते
मासूम चेहरे
दिख जाते हैं कुछ ऐसे चेहरे
जो अपने बचपने
चेहरे पर सियासत लेकर
घूमते मजहबी चेहरे।

❖

दावत

खेतों में जल
रहे हैं अनाज
गोदामों में सड़
रही है अनाज
लंबी कतार है
राशनधारियों कि
जनता बिलख रही
है भूख से
एम. एल. ए. साहब
के यहाँ दावत चल रही है।

❖

भरोसा

भरोसा है तो हम
जिन्दा है
अब भी है भरोसा
हवा की तरह
किसान को बारिश
का भरोसा है
माँ को बेटे पर
भरोसा है
कैदी को कोर्ट
पर भरोसा है
मरीज को डॉक्टर
पर भरोसा है
पतझड़ को
बसंत पर भरोसा है
बीज को धरती पर
भरोसा है
एक स्त्री को
अनजाने पुरूष पर
भरोसा है।

❖

अंगूठा

अंगूठे को सहारा है
उंगलियों का
या उंगलियों को सहारा है
अंगूठे का
जीत जाता ये अकेला
बदल देता मानव इतिहास
इसलिए काट दिया गया
खून करके
इसका छोड़ दिया गया
हाथों की उंगलियों के सहारे
खून से सने नोटों की
गिनती करने के लिए
और प्रतीक बन गया
निरक्षरों का
सहारा बन गया अनपढ़ों का
सम्मान दिया विदेशियों ने
बोला अश्वल द बेस्ट।

❖

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय
मो. 9800936139 ईमेल : rajak.ram2010@gmail.com

वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लें

(1)

हँसी फूल जैसी, बदन मरमरी है,
किसी जादूगर की तू जादूगरी है।

है लगता कभी सिन्धु-मंथन से निकली,
है लगता कभी स्वर्ग की तू परी है।

बताती है मुस्कान तेरे लबों की,
तेरे पास ही कृष्ण की बाँसुरी है।

अचानक ये क्या हो गया कि लजाकर,
सकुचने लगी पाँखुरी - पाँखुरी है।

तुम्हारे बिना मानती ही नहीं यह,
करे क्या कोई प्रीति तो बावरी है।

दुआ कीजिए इसको मिल जाये मंजिल,
समुंदर की लहरों पे नन्हीं तरी है।

न जाने कभी फिर मिलें ना मिलें हम,
न शर्माइये यह विदा की घड़ी है।

ये बंजारापन जाने कब तक चलेगा,
मेरे साथ ये कैसी आवारगी है।

(2)

अक्षर-अक्षर, तिनका-तिनका चुनना पड़ता है,
भीतर-भीतर कितना कहना-सुनना पड़ता है।

चिड़िया जैसे नीड़ बनाती है तन्मय होकर,
कविता को भी बहुत डूबकर बुनना पड़ता है।

दुहराना पड़ता है सुख-दुख को हँसकर-रोकर,
यादों में खोकर अतीत को गुनना पड़ता है।

इतनी गुत्थमगुत्था हो जाती हैं कुछ यादें,
जज्बातों को रुई- सरीखा धुनना पड़ता है।

(3)

दरवाजे के पीपल जैसे सब सहते थे बाबूजी,
हमें देखकर पढ़ते-लिखते, खुश दिखते थे बाबूजी।

अम्मा तो कह भी देती थीं, कभी-कभी मन की बातें,
कम खाते थे, गम खाते थे, चुप रहते थे बाबूजी।

पैरों में चप्पलें पुरानी, हर मौसम धोती-कुर्ता,
दुबले तन पर मजबूती से, सब सहते थे बाबूजी।

फीस, किताबें, होली-खिचड़ी, तीज, रजाई, मेला, हाट,
बुनकर के ताने-बाने-सा, सब बुनते थे बाबूजी।

घर भर की सारी जरूरतें गुप-चुप वह पढ़ लेते थे,
अपनी कोई भी अभिलाषा कब कहते थे बाबूजी।

नाती-पोतों की खातिर वह कविता और कहानी थे,
शाम ढले तो अक्सर यादों में बहते थे बाबूजी।

204/11, राजेन्द्र अपार्टमेंट, रोहित नगर
नरिया, वाराणसी 221005
मो. 9415895812

मनोज अबोध के दोहे

(1)

शायद तुमको याद हो, वो मौसम वो शाम।
दोहराती थी जब हवा, साथ हमारा नाम।।

दोहे से दो नैन हैं, सगुण छंद से गाल।
चौपाई जैसे अधर, महाकाव्य से बाल।।

जब जब पहले प्यार की, खोली गई किताब
पृष्ठों में हँसते मिले, सुखे हुए गुलाब।

कविता में जब से खिंची, धन की नई लकीर।
तिल-तिल कर मरता गया, भीतर रोज़ कबीर।

सबको ही लड़ने पड़े, जीवन के संग्राम।
पाण्डव हों, हम-आप हों, या फिर राजा राम।

हमने भी भोगे यहाँ, रिश्तों के तन्दूर।
सिकते-सिकते हो गई, सब कोमलता दूर।

(2)

या तो इसमें तू सजे, या हो खाली फ्रेम
कोई दूजा चेहरा, नहीं चाहता प्रेम।

कदम-कदम हमने रचे, कंकरीट के गाँव।
पेड़ काट कर ढूँढते, अब पेड़ों की छाँव।।

जीवन में हमने जिए, रिश्ते बड़े विचित्र।
जड़ें कुतरते ही मिले, समझा जिनको मित्र।

खुद जिनके किरदार में, भाँति-भाँति के छेद
वे मुझको समझा रहे, भले-बुरे का भेद।

सीढ़ी सा करते रहे, जो हमको उपयोग
ऊँचाई पाकर हमें, भूल गए वे लोग।

ई 1101, स्टेलर एम आई सिटीहोम
सेक्टर ओमिक्रोन 3 ग्रेटर नोएडा-201310
मो. 9319317089 व्हाट्सएप 9910889554
ईमेल manojabodh@gmail.com

आकर्ष बंसल की कविताएँ

कोरोना

कोरोना कोरोना कोरोना,
क्या है ये कोरोना

हमें मिल कर इस महामारी को है भागना
जिसका नाम है कोरोना

मेरी बुआ कहती कोरोना को घर न लाना
बाहर जाते समय मास्क जरूर लगाना

कोरोना कोरोना कोरोना
क्या है ये कोरोना

मेरी मौसी, जिनका नाम है मोना
उन्होंने बोला
हाथ बार-बार धोना

मेरी बहना जो है दादा-दादी की सोना
उन्होंने मुझसे बोला तुम घर पर ही रहना

कोरोना कोरोना कोरोना
क्या है ये कोरोना

नाना जी कहते
ना ना ना ना ना
किसी से हाथ ना मिलाना
हाथ जोड़ कर दूरी बनाये रखना

कोरोना कोरोना कोरोना
क्या है ये कोरोना

मामा कहते नहीं चाहिए चांदनी-सोना
बस दूर भागो यह दुखदायी कोरोना
खुद जियो औरो को भी जीने दो
वरना पड़ेगा यूँही रोना

सभी से मैंने यही जाना
और मेरा भी बस इतना कहना
कोरोना से न हमको डरना
साथ मिलकर हमे इससे हैं लड़ना।

❖

करूँ मैं विनती

करूँ मैं विनती
बोले हम सब हिंदी
जैसे माँ के सर पर
चमकती बिंदी
वैसे विश्व में चमके हिंदी

आदि काल से अनंत तक
बढ़ती जाये हमारी हिंदी
करूँ मैं विनती
बोले हम सब हिंदी

सीखें हम अंग्रेजी
सीखें हम लैटीन
सीखें हम फ्रैंच
सीखें हम जर्मन
क्या है इतना कठिन
सीख नहीं सकते हम अपनी हिंदी?
करूँ मैं विनती
बोले हम सब हिंदी
करो हिम्मत करो प्रयास
क ख ग से अ आ ई
करो सम्मान ये सारे पारस
सुंदर सरल और सरस
करूँ मैं विनती
बोले हम सब हिंदी

❖

आदित्य लोक डी-1/45 सेक्टर-एच
जानकीपुरम, लखनऊ-226021 मो. 9838279900

श्री दिनेश के पटनायक, महानिदेशक, भ.सां.स.प. तथा प्रो. पीसी जोशी, कार्यवाहक कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा दिनांक 12 जुलाई, 2021 को दिल्ली विश्वविद्यालय में 'बंगबंधु पीठ' की स्थापना हेतु माननीय अध्यक्ष, भ.सां.स.प. तथा बांग्लादेश के उच्चायुक्त की उपस्थिति में समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर।

श्री कल्याणजीत दास द्वारा "एक सितार वादन", भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में सबसे प्रतिभाशाली युवा सितार वादकों में से एक, 21 जुलाई 2021 को तबला पर श्री एमोन सरकार के साथ सत्यजीत रे सभागार, रबींद्रनाथ टैगोर केंद्र, I.C.C.R, कोलकाता में प्रस्तुत किया गया।

"CHHANDEY CHHANDEY" पश्चिम बंगाल का एक प्रतिष्ठित सांस्कृतिक संगठन है। इन्होंने 18 अगस्त, 2021 को सत्यजीत रे सभागार, रबींद्रनाथ टैगोर केंद्र, आई.सी.सी.आर, कोलकाता में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

श्री सुदर्शन शेट्टी, क्षेत्रीय अधिकारी, आई.सी.सी.आर. गोवा तथा प्रो. वरुण साहनी, कुलपति, गोवा विश्वविद्यालय 75वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर आई.सी.सी.आर. छात्रों के साथ।

क्षेत्रीय कार्यालय पुणे द्वारा होराईजन श्रृंखला के अंतर्गत कलाविश्व सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन।

आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम

मुख्य अतिथियों द्वारा दिनांक 13 अगस्त 2021 को कमानी ऑडिटोरियम में भारत की आजादी के 75वें वर्ष कार्यक्रम 'आजादी का अमृत महोत्सव' के अवसर पर शुभ दीप प्रज्वलन।

माननीय डॉ. एस. जयशंकर (विदेश मंत्री), श्रीमती मीनाक्षी लेखी (विदेश और संस्कृति राज्य मंत्री), डॉ. राजकुमार रंजन सिंह (शिक्षा और विदेश राज्य मंत्री), डॉ. विनय सहस्रबुद्धे (अध्यक्ष, आई.सी.सी. आर.) और श्री दिनेश के पटनायक (महानिदेशक, आई.सी.सी.आर.) द्वारा कलाकारों का अभिनंदन।

भारत की आजादी के 75वें वर्ष 'आजादी का अमृत महोत्सव' के अवसर पर दिनांक 13 अगस्त 2021 को कमानी ऑडिटोरियम में कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, क्षेत्रीय कार्यालय, बेंगलुरु द्वारा कलाविश्व के अवसर पर दिनांक 01 जुलाई-26 अगस्त तक की गतिविधियाँ

सी एम नरसिम्हा मूर्ति कर्नाटक लोक गीत "रंगवाहिनी" चामराज नगर

मानव बी टी जडे कोलाटा और अन्य लोक कला, हासन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, भोपाल द्वारा आयोजित होराईजन श्रृखंला के अंतर्गत ऑनलाइन प्रस्तुति।

सिडनी स्थित स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र द्वारा "वर्ल्ड टाइगर डे" का आयोजन किया गया। इस अवसर पर भारत में पाए जाने वाले बाघों के छायाचित्रों का प्रकाशन किया गया।

सिडनी स्थित स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र द्वारा "राष्ट्रीय हैंडलूम दिवस" का आयोजन किया गया। इस अवसर पर भारत के प्रसिद्ध हैंडलूम के छायाचित्रों का प्रकाशन किया गया।

भारत के आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर भारत के प्रधान कौंसलावास में ध्वजारोहण का आयोजन किया गया तथा इस अवसर पर न्यू साउथ वेल्स तथा साउथ ऑस्ट्रेलिया के भारतीय मूल निवासियों को कौंसल जनरल श्री मनीष गुप्ता जी ने सम्बोधित किया।

जवाहरलाल नेहरू भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, जकार्ता, इंडोनेशिया में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन।

भारतीय दूतावास, मास्को द्वारा स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम व आतिशबाजी।

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर अमृता शेर-गिल सांस्कृतिक केन्द्र, बुडापेस्ट द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन।

महामहिम, भारतीय उच्चायुक्त श्री पी.एस कर्थीगेन द्वारा प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार श्री सुमित टाप्पो, निदेशक, साईं प्रेमा फाउंडेशन फिजी को सौंपा गया।

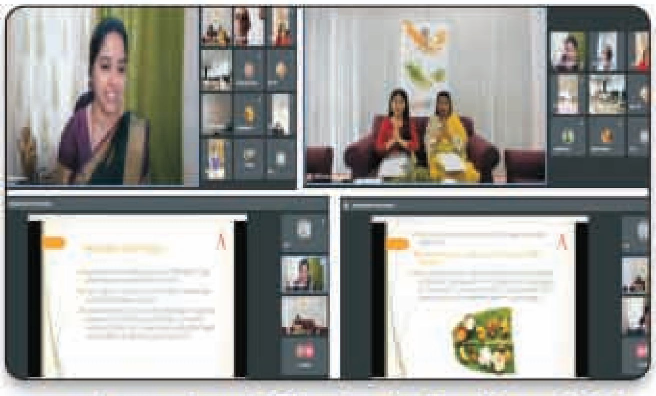

15 जुलाई 2021 को, स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र (एसवीसीसी), हनोई ने वियतनाम के सहयोग से - हनोई के भारत मैत्री संघ ने 'भारतीय भोजन का इतिहास' पर ऑनलाइन वार्ता का आयोजन।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता ....

....

....

....

पत्रिका भिजवाने का पता ....

....

....

....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल	एक वर्ष	₹	500	(भारत)		
वर्ष		US$	100	(विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200	(भारत)		
		US$	250	(विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%			
	पुस्तक विक्रेता		25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. .... दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम ....

पद ....

दिनांक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 43 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78

ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

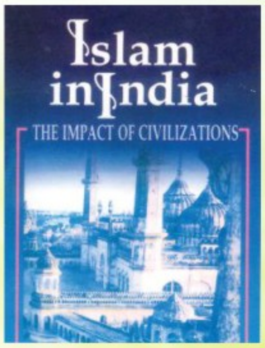

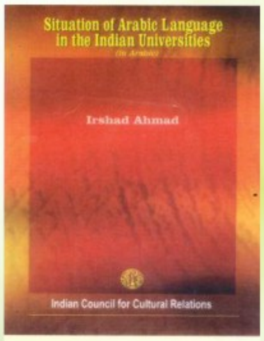

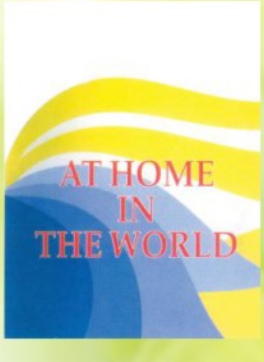

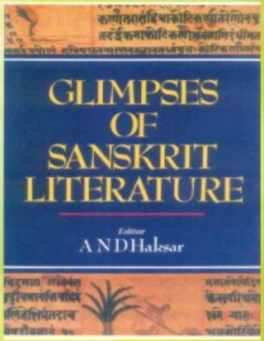

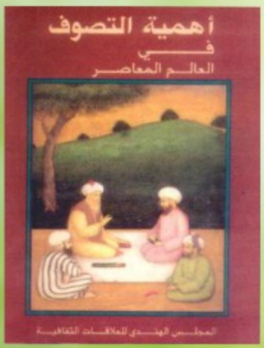

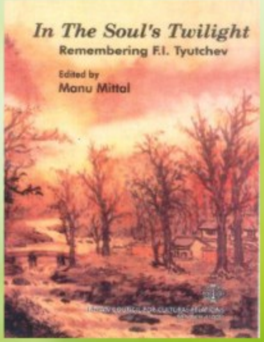

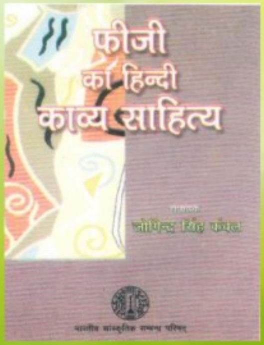

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

फोन : 91-11-23379309, 23379310

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका